यमदीप

नीरजा माधव

ISBN : 81-88060-25-9

मूल्य : दो सौ पचास रुपये

प्रकाशक : **सुनील साहित्य सदन**
3320-21, जटवाड़ा, दरियागंज,
नई दिल्ली–110002 (भारत)

संस्करण : प्रथम, 2002

कलापक्ष : हरिपाल त्यागी

शब्द-संयोजक : कल्याणी कम्प्यूटर सर्विसेज़
दरियागंज, नई दिल्ली–110002

मुद्रक : अजीत प्रिंटर्स
मौजपुर, दिल्ली–110053

YAMDEEP (Novel)
by NEERJA MADHAV Price : Rs. 250.00

Published By : **SUNIL SAHITYA SADAN**
3320-21, Jatwara, Daryaganj,
New Delhi - 110002 (INDIA)
Tel. : (011) 3270715, 3282733

पूज्य श्वसुर स्व. महाराज दीन की
स्मृतियों को समर्पित

उपन्यास के बारे में

एक हँसी अधरों पर—व्यंग्यात्मक अथवा उपेक्षात्मक। महिमामंडन भी किसका? सरोकार बन सकता था, साहित्यकार, कलाकार, धर्माचारी, समाज में स्त्री-विमर्श या फिर शोषण, संघर्ष। पर यह तृतीया प्रकृति का कब से होने लगा सामाजिक सरोकारों से सिर टकराने का व्यापार? कच्छपी सीमा में अपने भाषिक और दैहिक निजीपन को नितांत अकेले महसूस करते और कभी-कभी सिर निकाल तालियां बजाते, ठनगन करते जीवन को जी-भर लेते मुट्ठी-भर लोगों के लिए दर्शन और साहित्य का इतना कीमती समय और शब्द जाया करने की क्या आवश्यकता? आदर्श और प्रेरणा के मध्य का कौन-सा बिंदु इनका पड़ाव होगा?

और इसी बिंदु की खोज में इनके इतिहास और वर्तमान का दीया-बाती प्रदीप्त कर जब पितृसत्ता की दुनिया खंगालने पहुंची तो अंधेरे में मिचमिचाती आंखों को जगह-जगह खुदे गड्ढों को चुपचाप दिखाया इस नन्हीं लौ ने। कहां-कहां ठोकरें खा सकती है मानवी? कहां लड़खड़ाकर चोटिल हो सकते हैं बुजुर्ग पांव और दुख सकती है कोमल-सी कोई नस? सबका साक्षी बना यह निःस्पृह नन्हा दीप। तथाकथित विकास की द्यूत-क्रीड़ा में जीवन-मूल्यों को हारते समय यदि इस साक्षी का बस एक बार स्मरण भी कर लिया जाए तो शायद पथ-च्युत होने से रुक जाएंगे पग। प्रकाश-पर्व की पूर्व-संध्या में दरवाजे के बाहर रात-भर टिमटिमाते उस यमदीपक की भांति जो उपेक्षित होते हुए भी याद दिलाता है अलोकित कल का। नहीं छूटतीं उसके प्रदीप्त होने पर फुलझड़ियां और पटाखे, नहीं होती पूजा-अर्चना या चढ़ते थाल पर भोग, पर काली रात के विरोध में वह टिमटिमाता रहता है चुपचाप, निःशब्द। सूखता रहता है अंतस्रस बूंद-बूंद-बूंद।

मानवी का पूरा का पूरा स्त्री-विमर्श है। अपनी अस्मिता और स्वीकार के लिए एक अंतहीन जिजीविषा लिए। आदर्श भारतीय स्त्रीत्व-गरिमा की राह से एक पग भी लडखड़ाए बिना। पितृसत्ता के सह-अस्तित्व को बिना नकारे, अपने अस्तित्व के लिए पूर्णतया चैतन्य। स्त्री के संघर्षों और जुझारूपन को तथाकथित नारी-मुक्ति आंदोलन की आयातित दृष्टि से नहीं, बल्कि अपने बौद्धिक और तार्किक दृष्टिकोण से जांचती परखती, पर सहानुभूति के स्थान पर स्वानुभूति से तथ्यों तक पहुंचने के बाद ही कोई निर्णय लेती हुई।

'सोना' हमारी समस्या है। पितृसत्ता की निरंकुश लिप्सा का परिणाम है, और जब मानवी नाजबीबी और छैलू की संवेदनाओं के निकष पर अपने पूरे समाज को परखती है तो खोट स्पष्ट हो उठता है। परखने का यह सिलसिला उपन्यास के आरंभ

से ही पाठक के हृदय में भी शुरू हो जाता है।

मानवी तो हर क्षण संग-संग जीती रही है, कदमताल करती चलती रही है मेरे, पल-प्रतिपल। पर महताब गुरुजी के समुदाय के लोग लगभग एक दशक पूर्व से मुझे अपनी ओर खींचते रहे कुछ लिखने के लिए। उस समय आकाशवाणी, वाराणसी, में थी मैं जब एकाएक नवकल्पनात्मक रूपक बनाने के लिए इनके समुदाय के रहन-सहन, विचारों को ध्वन्यंकित करने का विचार मस्तिष्क में कौंधा था।

बहुत प्रयास के बाद उनके गुरुजी से मिल पाई और तभी उनके समुदाय के अन्य सदस्य भी बात करने को तैयार हुए। अपने समुदाय के प्रति उनकी अनुशासनबद्धता और नेता (गुरु) के प्रति निष्ठा और समर्पण देख मन ने चुपचाप नाप-तौल आरभ कर दिया था—समाज में इनका रचनात्मक सहयोग और उपयोग भी तो हो सकता है।

घर के एक दीये को केवल यम से संवाद करने के लिए उठाकर घूर (कूडा करकट) पर रख देना और फिर उधर मुड़कर भी न देखना कि वह कब जलते-जलते बुझा, सत्य से विमुख होना है। उस मां और उसके जीवन-भर के लिए बिछुडने वाले उस बेटे (?) बेटी (?) के हृदय में झांककर कोई देखे। क्या भूल पाए हैं दोनो एक-दूसरे को? अपनी दुनिया में किसी को न झांकने देने वाले क्या निष्ठुर हो पाए है अपने मन की गहराइयों से? नारियल की तरह उलझी जटा-जूट और कठोरपन के नीचे मिली एक तरलता—चुपचाप कांपती, डोलती।

नि:संदेह बहुत कुछ लिखा गया है अब तक और लिखा जाएगा। लाखों लोगो और वैश्विक स्तर पर करोड़ों से ऊपर के लोगों का सत्य है यह। पर यह भी सत्य है कि कभी स्त्री-विमर्श, दलित-विमर्श या सगुणधारा-निर्गुण-धारा या छायावाद, प्रयोगवाद की तरह कोई पृथक साहित्यक-राजनीतिक धारा इनके लिए न तो विकसित हुई, न इसकी आवश्यकता ही महसूस की गई। कारण स्पष्ट है—समाज में संख्या और महत्त्व के आधार पर न्यूनता; साथ ही शोषण और अत्याचार के हर मानवीय आक्रमण से परे हास-परिहास का विषय मात्र होना।

उनसे संवाद या जुड़ाव यानी परिहास के चंद छींटे आंचल में समेटना—इस भय को अंतर के किसी कोने में ढिठाईपूर्वक दवाए मैंने उनकी चर्या, उनकी संवेदनाओ को पकड़ने और पढ़ने का क्रम उसी समय से जारी रखा था। उनके हठ और रहन-सहन का अध्ययन करने के पश्चात् इस निष्कर्ष पर पहुंची कि कुछ आदिवासी जातियों की तरह इन्हें भी विकास के प्रकाश में लाकर समाज की मुख्यधारा से जोडने के लिए कठिन सरकारी और गैर-सरकारी श्रम की आवश्यकता है। इनमें संवेदना है, शारीरिक शक्ति है। आवश्यकता है उसे जगाने की, उसे राष्ट्र के हित मे नियोजित करने की। ऐतिहासिक तथ्यों के अनुसार भी हिंदू और मुस्लिम शासकों द्वारा इनका सुरक्षा जैसे महत्त्वपूर्ण पदों पर नियोजन किया जाता था।

मानवी का सघष भारतीय सस्कृति का सघर्ष है मूल्यो और परपराओं का सघर्ष है। उसका टूटना स्त्री-जाति का टूटना है और स्त्री की टूटन में संस्कृति और मूल्यों के ढह जाने का खतरा है। मूल्यों को बचाए रखना है तो स्त्री को बचाए रखना है उसकी बौद्धिकता, सुकुमारता, ममता और सहनशीलता को पाश्चात्य तथा अभिजात बर्बर पर मीठे आक्रमणों से सुरक्षित रखते हुए। इस आक्रमण को मानवी भली-भांति समझती है। विपरीत दिशा में जाती क्रांतीय धुरी को लौटा लाना चाहती है सही दिशा में। इन्हीं विपरीत लहरों पर अनुभवों के हिचकोले खाती मानवी अपनी मुक्ति के मायने तलाशती है और चश्मा उतारकर नंगी आंखों से यथार्थ को देखती परखती है। स्त्री-पुरुष की परिधि से बाहर निकलकर बाबूजी, छोटे भाई और आनद मे छिपे अपने प्रति स्नेहिल दायित्व-बोध से परिपूर्ण एक पृथक पुरुष-समाज को भी देखती है वह, और तब महसूस करती है कि आखिर नारी मुक्त किससे होना चाहती है? और क्यों? क्या बचपन में उंगली पकड़कर चलना सिखाते या बांहों में झूला झुलाकर उसके खिलखिलाने पर माथे को स्नेह-चुंबनों से भर देने वाले पिता से? या बहन की मर्यादा के प्रतिकूल एक भी उच्छृंखल शब्द उच्चारित करने वाली जीभ को काट लेने की हद तक गुजरने वाले राखी-बंधे हाथों से? या फिर देवत्व की गरिमा से परिपूर्ण, प्रेम का पाथेय लिए जीवन-सहचर से? ये सभी छद्मवेशी तो नहीं हो सकते तो फिर मुक्ति किससे? इनके साथ के अदृश्य अटूट बंधनों से या फिर प्रकृति की अनुपम भेंट ममता से?

नि:संदेह मुक्त होना है नारी को, पर यह मुक्ति अपने अंदर की संकीर्णता, अशिक्षा और अपने शोषण से है। संपूर्ण पुरुष-समाज शोषण के लिए जिम्मेदार नही है। कुछ लोग, कुछ कुत्सित मानसिकता के साथ इस कृत्य से जुड़े हैं। स्त्री को उन्हे चिह्नित करना है और क्रांति का बिगुल बजाना है। मानवी समय-समय पर इस तरह के लोगों को परखती चलती है, चिह्नित करती चलती है। पर इस क्रांति-यात्रा में कहीं भी वह अपने मूल और मूल्यों से कटती नहीं। कुछ को स्त्री का यह स्वरूप परपरावादी लग सकता है तो कुछ को पलायनवादी। शायद नारी-मुक्ति आंदोलन की कुछ झंडाबरदार स्त्रियां भी अपना परचम लिए-दिए आलोचना के जंग में कूद पड़े, पर स्त्रीत्व की गरिमा से खोखले पड़े अंधेरे हृदयों में वे झांककर देखेंगी तो समझ पाएगी कि वहां भी मुक्ति के नाम पर मुट्ठी-भर अंधेरे के सिवा कुछ नहीं बचा है।

इस अंधेरे से बचने और बचाने के लिए 'यमदीप' आपके हाथों में है। घर से घूर तक की असंगतियों को दिखाने और वापसी के लिए मार्ग को मद्धिम आलोक से भरते हुए। सूर्यपुत्र के सत्य को भी दीप दिखाने वाली संस्कृति की ओर लौटना जीवन है। जीवन अबाध है, मृत्यु एक पड़ाव। आइए जीवन की ओर चलें। जीवत सस्कृति से जुड़ें। आस्था के इन दो शब्दों के साथ साभार।

—नीरजा माधव

एक

चैत्र मास की दोपहर ढल रही थी। अंधरा पुल से रेलवे लाइन के किनारे-किनारे चलने वाली कच्ची गली में लकड़ी वाली टाल के पास एक कोने में जमीन पर पडी पगली दर्द के कारण चीख रही थी। उसकी मटमैली सफेद साड़ी पानी और लाल-भूरे रंग के धब्बों से लथपथ थी। पास ही पड़े अल्यूमिनियम के जगह-जगह से पिचके कटोरे में दस-दस, पांच-पांच पैसे के कुछ सिक्के और थोड़ी लाई पड़ी थी। पीड़ा के कारण उसका चेहरा नीला पड़ता जा रहा था। गली के कुछ मनचले लड़के उसकी चीखों में भी एक तरह की उत्तेजना महसूस करते-से घेरकर खड़े हो गए थे।

'ऐसे पागल है और...'

'अरे रजा, बड़े-बड़े वीर पड़े हैं धरती पर।'

'कोई कर गया काम तमाम अंधेरे में।'

'अरे गुरु...उधर देखो, छक्का मौसी।'

और लड़कों का समूह उधर की ओर देखने लगा था।

लगभग चालीस वर्षीया नाजबीबी अपने साथियों के साथ एक विशेष अंदाज मे कमर लचकाती, बीड़ी का काश खींचती चली आ रही थी। आसमानी रंग के कीमती सलवार सूट पर कश्मीरी कढ़ाई में सफेद और गुलाबी रेशम के बेल-बूटे बने थे। हाथों में सफेद रंग के बड़े-बड़े कड़े और कड़ों के बीच में दर्जनों गुलाबी चूड़ियां। कानों में लंबे-लंबे झुमके और समीज के गहरे गले में से झांकती नन्हीं घाटियों पर लटकती मोटी चेन। गोरे रंग की नाजबीबी ने बालों को सिर के ऊपर लपेटकर जूड़े का आकार दे दिया था, और भौहों तथा होंठों को गहरे कृत्रिम रंगो से और अधिक भड़कीला बना लिया था। कंधे से एक तरफ लटकते दुपट्टे को बड़ी बेपरवाही से हवा में नचाते हुए वह अपने साथियों से बातें करती चली आ रही थी। सांवली चमेली और मोटी वाली शबनम तथा अधेड़ मंजू रंग-बिरगी साड़ियों और गहनों में अपने-अपने ढंग से सजी-संवरी, ताली बजा-बजाकर ग्राहक की नकल उतारने में व्यस्त थीं। शायद किसी यजमान के यहां पुत्रोत्सव मनाने में उन्हें नेग भरपूर नहीं मिल पाया था।

उनके पीछे कुरता-पाजामा पहने अधेड़ उम्र का उनका दूसरा साथी अकरम

गले में ढोलक लटकाए चल रहा था, उसकी कलाई में घुंघरू अभी तक बंधे थे।

पगली की चीख सुनकर नाजबीबी के चेहरे पर कौतूहल का भाव जगा था और वह अधजली बीड़ी फेंक तेज कदमों से उधर बढ़ चली थी। लड़कों की भीड़ तितर-बितर होने लगी। कुछ अपने-अपने घर की ओर चल पड़े और कुछ दूर खड़े होकर तमाशा देखने लगे। नाजबीबी के साथ ही चमेली, मंजू और शबनम भी आकर पगली के पास खड़ी हो गईं।

''हाय हाय, बेचारी दरद से तड़फड़ा रही है।'' नाजबीबी झुककर पगली के पास बैठ गई थी।

''गरभ से है शायद।'' चमेली ने पगली के उभरे पेट को ध्यान से निहारते हुए कहा।

''मोरी सासू को दरद हमरे होला हो...'' मंजू ताली पीटकर गाने लगी थी। पीछे खड़े अकरम ने ढोल पर एक थाप दिया था कि नाजबीबी ने एक जोरदार डांट लगाई उन्हें।

''चुप! बिलकुल अंधे हो गए हो क्या छिबरी[1] के औलाद? और देख नहीं रहे हो बेचारी कैसे दर्द छटपटा रही है, और तुमको गाना बजाना सूझ रहा है।...अरे ओ भइया...जरा अपनी अम्मा और चाची को भेजो। बेचारी की मदद कर दें।'' नाजबीबी ने दूर खड़े लड़कों को देखकर विनती की थी। लड़के खिस्स से हँस पड़े।

''क्या खीसनिपोरी कर रहे हो, बाबू। ऐसे ही तुम भी कभी किसी के भीतर से टेपका[2] भये होगे। जाओ जल्दी...'' चमेली ने दोनों हथेलियों को चट् से बजाते हुए लड़कों से कहा।

''हुं, इस पगली के लिए?'' एक लड़के ने हँसकर अपने प्रश्न में ही नकार दिया।

मंजू गाना छोड़ बिफर पड़ी थी—

''इस पगली के लिए तुम्हारी अम्मा बाहर नहीं आ सकती और तुम्हारे ही बाप-दादों ने रात में आकर मुंह काला किया होगा...हाय, हाय, रे! मरदों का जमाना!''

''फालतू बात न बोलो, नहीं तो...'' एक लड़के को शायद हिंजड़े द्वारा इस प्रकार का ताना बरदाश्त नहीं हुआ था और वह किंचित् क्रोधित हो उठा था।

---

1. लिंग रहित हिंजड़ों के लिए प्रयुक्त उनकी सांकेतिक भाषा।
2. नवजात शिशु।

लेकिन इस बार मंजू की ओर से शबनम ने उलटवार किया था—

"तो क्या हम लोगों का बच्चा आ गया इस पागल औरत के पेट में?" कहते हुए उसने अपनी साड़ी के नीचे का कोना पकड़ ऊपर हवा में उड़ा दिया। कुछ लड़के ही-ही करते हुए इधर-उधर देखने लगे थे। परंतु उस लड़के का क्रोध और भड़क उठा था। उसने हाथ में एक पत्थर का टुकड़ा उठाकर तानते हुए कहा—

"मारेंगे तो सारी हिंजड़ई भूल जाएगी। चलो, भागो यहां से..."

"हे, हे, खैरगल्ले, इस पत्थर से अपने बाप का थोबड़ा फोड, अपने रिश्तेदार का थोबड़ा फोड़ जो किसी पागल को भी नहीं छोड़ते। दिन में लकदक कपड़ा झाड़कर निकलेंगे और रात में झाड़ेंगे अपना ये..." मंजू ने अपना अंगूठा चमकाया था।

लड़का आंखें तरेरता वहां से हट गया था।

शबनम दौड़कर सामने वाले घर का दरवाजा खटखटा आई थी। ऊपर बालकनी में से किसी महिला ने झांककर जवाब दिया—

"यहां किसी को बच्चा नहीं हुआ है।"

"अरे, ओ, आपके सामने होने वाला है। एक पुरानी धोती दे दो, मेम साब।"

"अब धोती कहां पड़ी है?" कहते हुए महिला ने उड़ती निगाह सामने गली की जमीन पर छटपटाती पगली और उसको घेरकर खड़े हिंजड़ों पर डाली थी और घर के अंदर चली गई थी।

"दुर रे...लहटिया पड़े तुम्हारी धोती में। अपना होता तब न, पेट पकड़े हाय माई ..हाय बाऊ करती!" शबनम नाराज होकर ताली पीटती वापस नाजबीबी के पास आकर खड़ी हो गई थी।

आस-पास की छतों पर से कुछ महिलाएं तमाशा देख रही थीं, तो कुछ अपनी बेटियों को घर के अंदर रहने की हिदायत दे रही थीं।

"अरे कोई डाक्टर हो यहां तो बुला दो।" नाजबीबी ने पगली की बिगड़ती हालत देख ऊपर बालकनी से झांकती एक महिला को आवाज लगाई।

"हम लोग क्या करें? कौन डाक्टर आएगा इतनी तेज धूप में?" महिला बेचारगी से जवाब दे अंदर चली गई थी। वह इन लोगों से और बात नहीं करना चाह रही थी। पता नहीं कब क्या कह दें ये?

"हाय, हाय रे! इनसान की जात! किसी को कोई रहम नहीं। अरे ओ अकरम...जा, जरा बढ़ जा तो...देख कोई डाक्टर-वाक्टर...लेकिन तेरे मुंह में तो

जुबान ही नहीं...शबनम, जरा तू ही दौड़ के जा। नहीं होगा तो एक नया ब्लेड जरूर लेती आना नाल काटने के लिए।''

''क्या, नाजबीबी, तुम काट पाओगी?''

''अब कोई पूछनहार नहीं इसका तो क्या हम भी छोड़ जाएंगे? अरे हम हिंजड़े हैं, हिंजड़े...इनसान हैं क्या जो मुंह फेर लें। जा जल्दी कर।''

शबनम दौड़ गई थी।

''मंजू, वो गठरी में से दोनों साड़ी निकाल ले आ!'' नाजबीबी अनाड़ी हाथो से पगली का पेट सहला रही थी। पगली को एक जोर की चीख आई थी और वह बेहोश हो गई थी।

''अकरम, जल्दी से साड़ी को खोलकर चारों ओर से आड़ कर दे।''

चमेली और अकरम साड़ी से पगली को आड़ कर खड़े हो गए थे। मजू दूसरी वाली साड़ी ले नाजबीबी के पास झुक गई थी।

शबनम हांफती हुई वापस आई थी।

''कोई नहीं मिला नामुराद! सब अपना-अपना दरवज्जा बंद किए सोए पड़े हैं। हम लोगों को देख हाय-हाय करते हैं कि आ गए हम उनको छेड़ने। छिबरी के खसम! सब, नासपीटे...लो, यह बिलेड, नाजबीबी।'' शबनम ने ब्लेड नाजबीबी की ओर बढ़ा दिया।

''कोहां...कोहां, कोहां...''

एकाएक बच्चे के रोने की आवाज सुनाई दी।

''अरे नाजबीबी, ये देखो...इधर...टेपकी[3] हुई टेपकी...'' मंजू खुशी से चिल्ला पड़ी।

तपती धरती पर बच्ची धूल में पड़ी चिल्ला रही थी। नाजबीबी ने जल्दी से उसका नाल काट, साड़ी को आधा फाड़, उससे बच्ची की धूल-मिट्टी साफ कर अपनी गोद में उठा लिया था। दूसरे हाथ से उसने पगली का माथा छुआ तो वह बिलकुल ठंडा-सा था। गरमी की चिलचिलाती धूप में भी डर के कारण वह सिहर गई थी।

''हाय राम, यह तो शायद गुजर गई।'' उसने जल्दी से चारों ओर निगाह दौड़ाई। एक घर का दरवाजा थोड़ा-सा खुला था और उसमें से दो जोड़ी आंखे झाक रही थीं। वह दौड़ पड़ी उधर की ओर।

''मेमसाब, ये बिटिया हुई है उसको। आप पाल लो। भगवान आपको पुन्न[4]

---

3 नवजात लड़की। (हिजड़ों की सांकेतिक भाषा)

4 पुण्य

देगा।'' उसने आशा-भरी निगाह से गोद में थामी नवजात बच्ची को उनकी ओर बढ़ाया था।

''छिः, पता नहीं किसका बच्चा है...हम क्यों पालें? तुम ही रख लो।'' महिला ने बच्ची को ध्यान से देखते हुए कहा। शायद वह बच्ची के गौरवर्ण और तीखे नाक-नक्श को देखकर उसके अनजान बीज का अनुमान लगा रही थी।

''अरे मेम साब, भगवान हमें वो छगड़ी ही नहीं दिया। कौन-सी छाती पकड़वाऊंगी? आप ले लोगी तो बेचारी को जिंदगी मिल जाएगी।'' नाजबीबी ने पुन. अनुनय की।

''ना बाबा, ना! इन सब पचड़ों में हम नहीं पड़ेंगे। जाकर पुलिस मे दे आओ।'' कहते हुए महिला ने उपेक्षा से दरवाजा बंद कर लिया।

''नाजबीबी, जल्दी करो, भाग चलो! वो टें बोल गई है। पुलिस आएगी तो हम लफड़े में पड़ जाएंगे। चलो...।'' घबराई हुई शबनम फुसफुसाकर कह रही थी।

नाजबीबी की गोद में आधी साड़ी में लिपटी बच्ची आंखें बंद किए सोई थी। शायद जन्म की असह्य पीड़ा से वह शिथिल हो गई थी। नाजबीबी के हृदय मे एक संवेदना की तेज लहर उमड़ी थी। किसके भरोसे छोड़े वह इस बच्ची को? कोई पालने को तैयार नहीं। ऐसे छोड़ देने पर कहीं कुत्ते-कौवे नोचकर नही...नहीं...उसने बच्ची को और सावधानी से थाम लिया।

''इसी बरामदे में टेपकी को लिटाकर चली चलो। जिसको पालना होगा, पालेगा इसको। पुलिस आएगी तो एक हजार लफड़ा करेगी। चलो, नाजबीबी।''

इस बार मंजू की घबराई आवाज आई थी। गली की फर्श पर चिलचिलाती धूप में पगली का निश्चल शरीर पड़ा था। नाज बीबी ने कसकर होंठ दबा लिए थे।

''नहीं, टेपकी को लेते चलते हैं। हम लोग ऊपर का दूध पिलाकर पाल लेंगे।''

नाजबीबी ने अपना निर्णय सुनाया तो शबनम, मंजू, चमेली, सब एक साथ चौंक पड़े थे।

''क्या, पागलपंथी है? बवाल मोल ले रही है। कल कोई कहेगा कि हम किसी आदमी जात का बच्चा चुरा लाए हैं...जबरन हिंजड़ा बनाने के लिए तो! पुलिस परेशान करेगी अलग से। यहीं बरामदे में छांह में लेटा दो इसे और भाग चलो। नहीं तो वो औरत कैसे मरी...क्या किया तुम लोगों ने...सबका जवाब देते, थाना-कचहरी करते सारी जिंदगी पलीद हो जाएगी, नाजबीबी।'' शबनम ने सलाह

दी।

"चुप रहो। जो होगा देखा जाएगा। हम ले चलेंगे टेपकी को। जाओ, जल्दी से बढ़कर एक खाली टेंपो तय करो। जितना मांगे, तय कर लो।" नाजबीबी की जिद के आगे सभी बेमन से तैयार हो गए थे।

अकरम दौड़कर गली के मोड़ पर खड़े एक खाली टेंपो में बैठ गया था। तेज कदमों से चलती हुई चमेली, मंजू, शबनम और नाज बीबी भी इधर-उधर सशंकित निगाहों से देखती हुई आकर टेंपो में लद गई थीं। टेंपो वाले ने बिना ध्यान दिए टेंपो स्टार्ट किया और चल पड़ा।

तेज रफ्तार के कारण गरम हवा के झोंके दोनों तरफ से आकर नाजबीबी और पीछे बैठी चमेली, शबनम को पसीने पर ठंडक पहुंचाने लगे थे। नाजबीबी ने बच्ची को साड़ी में अच्छी तरह लपेटते हुए उसका सिर अपने दुपट्टे से ढक लिया। दोपहर में सड़क सुनसान थी। टेंपो तेज गति से चला जा रहा था।

दो

''शबनम, पैसे चुकता कर देना।'' कहते हुए नाजबीबी जल्दी से टेंपो से उतर गई थी। बच्ची को उसने अपने दुपट्टे से ढंक लिया और सड़क से जुड़ी उस अत्यत पतली गली में झट घुस गई थी। गली में दोनों तरफ कहीं चौड़ी, कहीं संकरी नाली बजबजाती हुई समानांतर बह रही थी। दोनों तरफ मिट्टी और नोनछा-खाई घर की दीवारों से सीलन-भरी बदबू ढलती धूप के साथ उमस रही थी। कहीं-कही दरवाजे के सामने ही गली में कोई बच्चा बैठा नाली में शौच कर रहा था तो कहीं दोपहर की नींद लेकर अलसाए युवा और बुजुर्ग अपने ढीले-ढाले पाजामे की एक टाग ऊपर उठाए लघु-शंका।

शबनम और मंजू भी टेंपोवाले को विदा कर नाजबीबी के साथ चलने लगी। चमेली और अकरम पीछे-पीछे बातें करते आ रहे थे।

''अरे, कहीं रुक गई होती मंजू! इतनी लू में...आज लग रहा है कोई मोटी कमाई हुई है गहकियाने में।'' गली के अगले मोड़ पर बने ईंट के मकान के सामने वाले छोटे-से चबूतरे पर बैठी फूलादेवी अपनी बिटिया के सिर के जूए निकालकर दोनो अंगूठों के नाखूनों के बीच झटके से मारते हुए पूछ बैठी।

''हां, आज मोटी गठरी मिली है।'' मंजू ने हँसकर दोनों हाथों को गोल घेरे में घुमाया था।

नाजबीबी ने धीरे से उसे चुटकी काटी और फूला की ओर देखकर हँसते हुए आगे बढ़ गई थी।

''आज बड़ी गरमी है। पहले चलकर वरुणा में दो डुबकी लगाऊंगी तब कहीं चैन मिलेगा। ओ, अकरम! अरे चमेली! आज पैर भारी हो गए क्या तुम लोगों के जो इतना पीछे हो। जल्दी आओ।'' पुकार लगाते हुए नाजबीबी तेज-तेज कदम बढ़ाने लगी।

अभी कम से कम आधा कोस की गली और पार करनी है, तब जाकर कहीं अपनी बस्ती मिलेगी। इस बीच कोई और न अपने घर में से कुछ पूछ बैठे—वह अब किसी को कुछ नहीं बताना चाह रही थी।

हुकुलगंज की वह पतली गली लगभग डेढ़ किलोमीटर अंदर तक अपने

दोनों ओर निम्नवर्गीय आबादी को समेटे है। उस आबादी के बाद शुरू होती है हिंजड़ों की बस्ती, जहां से वरुण नदी का कछार दिखाई देता है, जिसमें बरसात-भर पानी भरा रहता है और गरमी-भर चिलचिलाती धूप में जगह-जगह से दरकी धरती दिखाई देती है, जैसे किसी गरीब के पांवों की फटी बिवाई। कभी-कभी किसी मृत मवेशी के महाभोज में कुत्ते-कौवों की छीन-झपट में वातावरण बोल उठता है, अन्यथा दूर-दूर तक फैली खामोशी में वरुणा नदी चुपचाप लेटी रहती है और उसे अकसर अपनी छत से निहारा करती है नाजबीबी। उसी के पक्के घर से सटा है चमेली और शबनम का घर। मंजू का घर उसके पिछवाड़े है। बीस-पच्चीस छोटे-बड़े घरों वाली यह हिंजड़ा बस्ती शहर में रहते हुए भी शहर से बहुत दूर है। दिन-भर अपने-अपने क्षेत्र में गा-बजाकर अपना जीवनयापन करने वाले ये लोग आपस में मिल-जुलकर रहते हैं। एक-दूसरे के सुख-दुःख के बराबर के भागीदार। कभी-कभी झगड़े होते भी हैं तो गुरुजी (महताब गुरु) के यहा जाकर सब शांत हो जाता है।

गुरुजी पूरे शहर के हिंजड़ों के गुरु हैं। हिंजड़ा समुदाय में उनकी ही बात चलती है। उनका अनुशासन ही सर्वोपरि है। उनका निर्णय सर्वमान्य है। कब, किसे, किस क्षेत्र में नाचना-गाना है? किसी के बीमार होने पर किसे उसकी सेवा-टहल करनी है? उसकी कमाई न होने पर भी उसका एक हिस्सा गुरुजी के पास सुरक्षित हो जाता है। वैसे भी अपनी-अपनी कमाई का एक मोटा हिस्सा गुरुजी के पास ईमानदारी से जमा कर देना शहर के तमाम हिंजड़ों का प्रतिदिन का नैतिक दायित्व है। इस कर्तव्य से कोई भी हिंजड़ा मुक्त नहीं हो सकता।

नाजबीबी ने जल्दी से जाकर अपने घर की सांकल खोली। ताला बंद करने की उन्हें अकसर जरूरत नहीं पड़ती। अव्वल तो इस बस्ती की ओर कोई आता ही नहीं, आपस में हिंसा-चोरी जैसी बदनीयती की कोई आवश्यकता ही नही। किसके लिए चोरी? किसके लिए हिंसा? नाजबीबी ने कमरे में पहुंचकर एक हाथ से सुतली से बुनी चारपाई पर अपना पुराना वाला गद्दा बिछाया। उसके ऊपर अपना एक दूसरा दुपट्टा बिछा, उसने बच्ची को धीरे से ऊपर से उठाकर हवा करना चाहा तो देखा कि दुपट्टे में कहीं-कहीं खून के धब्बे लगे हैं। उसने बच्ची के पूरे शरीर पर निगाह दौड़ाई थी। नाभि से हलका-हलका खून अभी भी रिस रहा था। उसे कुछ समझ में नहीं आ रहा था। उसने घबड़ाकर दरवाजे की चौखट पर खड़े होकर पड़ोस में रहने वाले छैलू को आवाज दी थी।

"आया बीबी!" छैलू का जवाब आया था। ठिंगने कद का स्वस्थ सांवला छैलू अभी दो वर्ष पहले ही उनकी बस्ती में आया है। बीस-बाईस वर्ष का छैलू

इलाहाबाद के किसी अस्पताल में वार्डब्वाय था। बेटे के मोह में छैलबिहारी के माता-पिता उसकी वास्तविकता जानते हुए भी अपने से अलग करने का साहस नही जुटा सके थे। परंतु धीरे-धीरे समाज में इस भेद के खुल जाने और परिवार की बदनामी होते देख छैलबिहारी स्वयं एक दिन अपने नियत स्थान पर आ गया था और छैलबिहारी से छैलू हो गया था। अपनी नियति पर चुपके-चुपके एकांत मे आंसू बहाने वाला छैलू ज्यादातर बुजुर्ग सोबराती की सेवा में ही अपने को व्यस्त रखता। ग्राहकों के यहां जाकर नाचने-गाने या ढोलक बजाने की न तो अभी उसकी हिम्मत ही होती थी और न ही उसकी आत्मा साथ देती। सभी उसके मन की यह दशा समझते थे और समय की प्रतीक्षा कर रहे थे, क्योंकि यहां आने वाले की आरंभिक मनोदशा ऐसी ही होती है। फिर धीरे-धीरे वहां के माहौल मे ढल जाने के बाद सब कुछ सामान्य हो जाता है।

छैलू आकर नाजबीबी के सामने खड़ा हो गया। उसकी पूरी बनियान पसीने में भीगी थी, जिसे उसने मोडकर पेट के ऊपर उठा लिया था। मटमैले पाजामे का इजारबंद सामने नीचे तक लटक रहा था।

"तू तो अस्पताल में काम कर चुका है न, छैलू? एक बात पूछूं?" नाजबीबी के चेहरे पर असमंजस का भाव था। बच्ची के बारे में वह छैलू को बताए या नहीं? अगले ही पल उसके मन ने जवाब दिया था—अपनी बस्ती में इस बात को किसी से भी कैसे छिपा सकेगी? सबको पता चल ही जाएगा, इसलिए तू बता ही दे।

अगले ही पल नाजबीबी ने अपनी बात कह दी—"देख, आज मुझे एक गली में टेपकी मिली है। देख, वो देख, बिस्तर पर है। कोई भला आदमी इसे लेने को तैयार नहीं हुआ। हाथ जोड़कर मैंने सबसे कहा। पर यह पागल औरत की कोख से पैदा हुई है, शायद इसीलिए। या लोग दूसरे का पाप अपने सिर नही लेना चाहते होंगे. पर किसी न किसी ने तो अपना यह पाप उस पगली की कोख मे डाला होगा। हुं, पागल को भी नहीं छोड़ते ये कमीने इनसान...तू ही देख इस टेपकी को, छैलू। कहीं से पाप का भाग लगती है। देख, चल देख!" कहते हुए नाजबीबी छैलू का हाथ पकड़ अंदर कमरे में घसीट ले गई।

छैलू झुककर बच्ची को ध्यान से देखने लगा था। सफेद रुई के फाहे जैसी कोमल बच्ची आंखें बंद किए रोने के लिए मुंह खोल रही थी, परंतु शायद कमजोरी के कारण उसके गले से आवाज तेज नहीं निकल पा रही थी।

"इसे कुछ पिलाया कि नहीं, नाजबीबी?" छैलू पूछ बैठा था।

"क्या पिलाती? वहां से किसी तरह छिपते-छिपाते इसे यहां लेकर आई

हू। पुलिस का डर था और नन्हीं-सी जान को छोड़ने का मन भी नहीं किया। कई औरतों से चिरौरी की कि ले लो इसे लेकिन..."

"पहले जल्दी से इसे थोड़ा-सा शहद-पानी मिलाकर रुई के फाहे से मुह मे टपकाओ। तीन घंटे तो हो ही गए होंगे पैदा हुए न?" छैलू ने अपना पुराना चिकित्सकीय अनुभव का पिटारा खोल लिया था।

"गाय का दूध मिल जाता तो इसके लिए अच्छा रहता। पल जाती उसी के बल पर।" छैलू ने माथे पर चिंता की सिलवटें बनाते हुए नाजबीबी से कहा।

"बकरी तो है, छैलू पर...वो सड़क पर चायवाले के यहां दूधवाला रोज आता है।" नाजबीबी स्वयं ही जवाब ढूंढ़ रही थी।

"पर पानी-मिला दूध...फिर क्या पता, गाय का है या भैंस का? गाय का दूध मिल जाता तो यह बच जाती।" छैलू ने पुनः चिंता जताई।

"आज का काम किसी तरह चल जाए तो मैं रोज सबेरे पांडेयपुर वाले खटाल से अपने सामने दुहवाकर एक पाव दूध लेती आऊंगी। अब इसे ले आई हू तो पालना तो है ही।" नाजबीबी ने शहदवाली शीशी को ऊपर लकड़ी के टाड़ पर से उतारते हुए कहा। कुछ दिन पहले ही वैद्यजी से पुड़ियावाली दवा लेकर वह आई थी और उन्होंने उस दवा को शहद के साथ खाने को कहा था। कोने मे रखे पुराने घड़े में से कटोरी में पानी लिया तो छैलू ने मना कर दिया--

"बच्ची के लिए सब नया सामान रखो, नाजबीबी, तो अच्छा रहेगा। कोई बीमारी नहीं होगी। जूठा-कांठा बिलकुल नहीं।"

"तू ठीक कहता है, छैलू! फिर हम हिजड़ों का जूठा...बेचारी अच्छा-खासा इनसानी तन लेकर आई है। क्यों उसे बेधरम करें। हम तो अपने न जाने किस पाप की कमाई भोग रहे हैं। यह पाप भी अपने सिर क्यों चढ़ाएं।" नाजबीबी कोने मे पड़े पुराने टिन के बॉक्स में से यजमानी में मिली नई कटोरी और गिलास निकाल लाई थी।

हैंड पाइप के ताजा पानी में शहद की कुछ बूंदें मिलाकर उसने रुई का फाहा उसमें डुबा दिया था। बच्ची को गोद में उठाकर, वह पालथी मारकर जमीन पर बैठ गई और बाएं हाथ की हथेली पर बच्ची का सिर ऊंचा रख उसके मुंह मे शहद-पानी से भीगा फाहा डाल दिया। बच्ची चुभुर-चुभुर अपने होंठों से फाहा दबाकर चूसने लगी थी। नाजबीबी को एक सुखद अनुभूति हो रही थी। वह मुसकराते हुए एकटक बच्ची को निहारे जा रही थी।

"इसकी ठोढ़ी से खून निकल रहा है, छैलू। तू एक काम कर। हम जाएंगे तो सब शंका करेंगे। तू पाजामा पहने ही है, कुरता पहन ले। पैसे लेकर जा। किसी

दूर के डॉक्टर से सारी बातें पूछकर गृहस्थ लोगों की तरह सारा सामान खरीद ला। इस मोहल्ले से मत खरीदना, नहीं तो शंका करेंगे सब। तेलियाबाग या लहुराबीर निकल जा।" नाजबीबी ने अपने खूंटे में बंधे कुछ रुपये निकालकर छैलू की ओर बढ़ाए।

"लेकिन नाजबीबी, क्या इस बच्ची को हम अपने पास..."

छैलू के अधूरे वाक्य को बीच से ही काटते हुए नाजबीबी ने कहा, "जा, पहले सामान ला, फिर सब मिल-बैठकर तय करेंगे कि क्या करना चाहिए? हां, दो-चार जोड़ी टेपकी का कपड़ा भी खरीद लाना—एक-एक बित्ता का।" नाजबीबी ने अपनी हथेली को फैलाकर बच्ची को गरदन से लेकर कमर तक नापते हुए कहा।

"किस रंग का?"

"अरे लाल-पीला...और क्या अच्छा लगेगा।"

छैलू पैसे पाजामे की कमरबंद में खोंसते हुए बाहर निकल गया था।

"हे छैलू, टेपकी की अम्मा घर में है?" बाहर चमेली, मंजू, शबनम, कमली और चंपा के साथ सकीना हाथों से ताली पीटती, हँसती हुई पूछ रही थीं।

छैलू भी हँस पड़ा।

"हां, टेपकी को पिला रही है।"

"हाय दइया, क्या?" कहते हुए सकीना ने छैलू की कमर पर अपनी कमर से धक्का दिया था।

मंजू ताली पीट-पीटकर गाने लगी थी—"मोरी सासू को दरद हमरे होला हो—उई...ई...आय हाय...मर गइलीं..."

और उसके साथ ही स्वर में स्वर मिलाती चमेली, शबनम भी नाजबीबी के पास अंदर पहुंच गईं थीं।

नाजबीबी रुई का फाहा कटोरी में रखते हुए उन सबको देख हँस पड़ी। उसके चेहरे पर एक लज्जा और ममता का भाव तैर रहा था—

"शी—चुप रहो मुरदाह! इतनी कड़-कड़ ताली पीट रही हो कि शैतान भी जाग जाए, टेपकी तो टेपकी है।"

"आय हाय, इसे देखो! ये तो दो ही घंटे में हिंजड़ा से औरत बन गई—टेपकी की माई! जैसे अपने कोख से बियाई है इसे।" सकीना अपने दोनों हाथों को आगे झटकते और कमर पर लोच देते हुए हँसकर नाजबीबी के पास बैठ गई थी।

"जरा मैं भी तो देखूं इसका चेहरा।" वह बच्ची के ऊपर झुक गई।

नाजबीबी ने सोई हुई बच्ची का चेहरा थोड़ा-सा सकीना की ओर झुका दिया था।

"आय हाय, क्या नूर है इसके चेहरे पर! पर किस्मत देखो बेचारी की। पागल की कोख से जन्मी और हम हिंजड़ों की गोद में...। अपनी छाती भी नही पकड़ा सकते हम तो।" सकीना भावुक हो उठी थी। दो दिन से ग्राहकों के यहा न जाने, और घर में ही पड़े रहने के कारण उसकी दाढ़ी थोड़ी बढ़ गई थी, जिससे उसका गोरा चेहरा सांवला दिखाई दे रहा था।

"क्यों नहीं पकड़ा सकते छाती? नाजबीबी के पास तो है।" शबनम ने हँसते हुए नाजबीबी के सीने पर चुटकी काटते हुए सभी को दिखाया था।

"हट, हमेशा ठट्ठा अच्छा नहीं लगता। एक तो भगवान ने ही हमसे मजाक करके भेजा है, इनसान अलग देख हँसता है...और आज तू भी मजाक कर रही, शबनम? कौन-से दूध की धार इस छाती में से चूएगी, आंय?"

नाजबीबी अपनी छाती की ओर निराश नजरों से देखने लगी।

मंजू गाना बंदकर उसके पास आकर बैठ गई थी। शायद पूरी बस्ती मे टेपकी मिलने की खबर फैल चुकी थी। कुछ प्रसन्न थे तो कुछ के चेहरों पर जिज्ञासा और भय का भाव। कहीं पुलिस को भनक भी लग गई तो वह पूरी बस्ती को परेशान कर डालेगी। महताब गुरुजी अपनी कोठरी का दरवाजा बंदकर लाठी टेकते आ गए थे।

शहर-भर के हिंजड़ों के गुरु महताब की आज्ञा और निर्देश के बिना उनके समुदाय में कोई निर्णय नहीं लिया जा सकता था। उनका अनुशासन और आदेश सर्वमान्य था। परंतु अपना कोई आदेश सुनाते समय वे अपने समुदाय के लोगो की भावनाओं का बहुत खयाल रखते थे। उनके पिछले जीवन के बारे में किसी को बहुत कुछ नहीं मालूम था। उन्होंने कभी बताया भी नहीं, किसी ने पूछा भी नही। उम्र अधिक होने के बाद जब वे काम-धंधे पर जाने लायक नहीं रहे तो हिजड़ा समुदाय के गुरु चुन लिए गए। दिन-भर घर के सामने बैठे वे मुर्गे-मुर्गियों को आटे की गोलियां बना-बनाकर खिलाया करते थे और दूर-दूर तक फैली वरुणा के कछार की वीरानी को आंखों से नापा करते। शाम को सभी हिंजड़ों के बस्ती में लौट आने पर उनकी कमाई का एक निश्चित हिस्सा लेकर वे लकड़ी की तिजोरी में बंद कर देते और फिर अपनी टूटी चौकी पर बाहर जाकर बैठ जाते। कभी-कभी अपने हाथ से बनाया हुआ गोश्त या हलवा महताब गुरु अपने साथियो को बड़े प्यार से खिलाते।

"आइए गुरुजी, आइए।" महताब को अपने दरवाजे के सामने खड़ा देख नाजबीबी ने बड़े अदब के साथ उन्हें बुलाया था। चमेली और शबनम ने पीछे

खिसककर महताब गुरु के लिए नाजबीबी के पास जगह बना दी।

"गुरुजी, आज यह टेपकी गले पड़ गई हमारे। हम इसे छोड़कर नहीं आ सके।" नाजबीबी ने कुछ सफाई प्रस्तुत करते हुए विनम्र भाव से कहा।

महताब गुरु चुपचाप जमीन पर बैठ गए थे। उनकी मटमैली साड़ी सिर से नीचे गिरी थी और सफेद बालों का जूड़ा आधा खुला हुआ था। गले में मोटे लाल धागे में कई चाभियां लटक रही थीं और भारी टॉप्स के कारण कान का निचला हिस्सा कुछ अधिक ही झूल गया था।

महताब गुरु ने झुककर बच्ची को ध्यान से निहारा और कुछ सोचते हुए बोले—

"सोच-विचार लेना था। तुम तो दया करके लाई हो, लेकिन इन इनसानों की जात तो तुम अच्छी तरह जानती हो, नाज! हमारे ऊपर हमेशा शक ही करते है। कहीं इस बच्ची को लेकर कोई..."

"तो जो कहिए, गुरुजी...कोई आदमी जात इसे लेने को तैयार नहीं था वहां। हमने सबसे पूछा। क्यो मंजू? है न?" नाजबीबी ने मंजू से हामी भरवाई।

"ठीक है, ठीक है। अगर तुम चाहो तो हम लोग चलकर इसे पुलिसवाले को दे आएं या फिर अनाथालय में..." महताब गुरु ने बच्ची के कोमल गालो को प्यार से सहलाते हुए सुझाव दिया।

नाजबीबी का चेहरा कुछ उतर गया।

सकीना बोल उठी—

"अरे गुरुजी, मर जाएगी यह टेपकी। क्या इसे हलाल कर डालने का पाप भी लेना है? कुछ बड़ी होने पर भले ही दे आओ अनाथालय में।"

नाजबीबी के चेहरे की हरियाली लौट आई थी।

"पर बड़ी हो जाने पर तो और मोह लगेगा न। तब नहीं छोड़ते बनेगा। फिर इतनी सुंदर बच्ची हम लोगों के पास पलेगी तो उसका जीवन भी तो हमारी तरह नरक बन जाएगा। इनसानी बच्ची तो उन्हीं लोगों के बीच..." महताब गुरु भी असमंजस में थे।

"पर जब कोई तैयार नहीं है लेने को...और हम भी इसे मरने के लिए कही जोर-जबरदस्ती करके छोड़ आएं तो यह भी तो पाप ही होगा। सकीना की बात ठीक लग रही है। बड़ी हो जाने पर इसे अनाथालय में छोड़ आएंगे।" नाजंबीबी ने अपना प्रस्ताव दबी जुबान में गुरुजी के सामने रख दिया।

"किसी ने ले आते तो नहीं देखा न?" गुरुजी पूछ रहे थे।

"नहीं, किसी ने नहीं। अपनी गली में भी नहीं।" नाजबीबी ने बताया।

"तो यह बात केवल अपनी बस्ती तक रहनी चाहिए। इससे आगे वाली गली तक भी नहीं पहुंचनी चाहिए। नहीं तो औरतों की जुबान पर कोई लगाम नही होता। बात खुलते-खुलते पुलिस तक पहुंच जाएगी।" महताब गुरु सभी की तरफ अपनी तर्जनी सीधी खड़ी कर निर्देश दे रहे थे।

"पर गली में आते वक्त फूला देवी कुछ पूछ तो रही थी।" चमेली ने नाजबीबी की ओर देखते हुए शंका जताई।

"नहीं, नहीं, उसे कुछ पता नहीं चल पाया। मैंने टेपकी को दुपट्टे से ढक लिया था। वो सोची होगी, कोई सामान है।" नाजबीबी ने उसे आश्वस्त किया।

"ठीक है, ठीक है। पर अब इसे टेपकी कहना बंद कर। यह हमारी बिरादर नही—इनसान है, इनसान! इसका एक अच्छा-सा नाम रख दे, बुलाने के लिए।" महताब गुरु ने बच्ची की ओर ध्यान से देखते हुए कहा।

"रिंकी रख दे।" चमेली ने सोचकर नाम सुझाया।

"ये क्या है, रिंकी...अरे, कोई कायदे का नाम सोच। अंटी-बंटी, ठेंगा-घटी कौन-सा नाम है?" महताब गुरु हँस पड़े।

"हिंदू नाम रहेगा कि मुसलमान? शबनम ने एक गंभीर प्रश्न सभी के सामने फेंका।

अभी तक इस मुद्दे पर तो कोई विचार ही नहीं किया था। महताब गुरु भी कुछ देर के लिए चिंतित हो गए थे।

"इसकी मां किस धर्म की लगती थी?" सकीना ने पूछा।

"अरे, वो तो पागल औरत थी! सड़क पर पड़े-पड़े कोई कुछ दे देता होगा, नहीं तो ऐसे ही पड़ी रहती होगी। एक फटी-सी मैली साड़ी पहने थी। अब उसका कौन धरम? फिर कौन पूछता? चटपट में ऐसा कुछ हुआ कि हम भाग आए। इतना कौन सोच रहा था?" चमेली ने बात साफ की।

"पर इस टेपकी को हम बेधरम कैसे करें? न जाने किस धरम का बाप होगा, किस धरम की मां?" शबनम चिंतित हो उठी।

"अरे, दुर्र रे धरम! रात-बिरात एक पागल के साथ मुंह काला किया, धरम की बात पर...थू है ऐसे धरम पर, और ऐसे धरमवालों पर। इसका नाम सोना रहेगा, सोना। सारे धरम में सोना, सोना होता है—कीमती, चमकदार। सब अपने तन पर पहनते हैं। चाहे हिंदू, चाहे मुसलमान। रही इसके धरम की बात तो नाजबीबी पैदाइशी हिंदू है, इसलिए इस सोना को पालने के कारण सोना का धरम भी हिंदू धरम। चल, सारा झगड़ा खतम। अभी सोना हम सबकी है। बड़ी होगी तो हिंदू होगी। उसका मन होगा तो...जिससे मन चाहेगा उससे शादी कर लेगी।"

महताब गुरु उत्साह में बोले जा रहे थे।

"क्यों गुरुजी, सोना के शादी-ब्याह तक की सोच डाली? अनाथालय में नहीं..." सकीना ने याद दिलाया।

महताब गुरु के उत्साह को जैसे ब्रेक लग गया। उन्होंने खिसियाते हुए कहा—

"नहीं रे, तब जो होगा देखा जाएगा। अभी तो चल, सोना के आने की खुशी में सब सोहर गाओ!"

और ढोलक-घुंघरू की ताल के साथ बेसुरे मोटे स्वर नाजबीबी की कोठरी में गूंजने लगे थे—

मोरी रनियां होऽऽ...

नंद घर बाजेला बधइयाऽऽ...कन्हइया अवतरलै होऽऽऽ...

तीन

सोना के रोने की आवाज से नाजबीबी की आंख खुल गई थी। खुली खिड़की और दरवाजे से वरुणा नदी के ऊपर से छनकर आ रही ठंडी हवा सुबह-सुबह बहुत अच्छी लग रही थी। सोना न रहती तो नाजबीबी अभी दो-तीन घंटे और सोती, पर उसकी चीख-चिल्लाहट के कारण यह कहां संभव था? उसने जल्दी से उठकर बच्ची को गोद में उठा लिया। गुलाबी रंग का सूती झबला पूरी तरह गीला हो गया था। नाजबीबी ने दूसरे हाथ से बिस्तर छुआ तो वह भी गीला था।

"दाहा-बाहा करके टें-टें कर रही हो।" नाजबीबी ने प्यार से सोना को डाटते हुए गीला दुपट्टा पलट दिया।

"हे छैलू, हे छैलुआ, उठ! तेरी नींद में...।" नाजबीबी ने दूसरी ओर एक झिलंगा चारपाई पर सोए छैलू को जोर से आवाज दी। रात में सोना के लिए कोई जरूरत लगने पर जगाने के लिए उसने छैलू को अपनी कोठरी में ही सो जाने के लिए कहा था।

छैलू आंख मलते हुए उठ बैठा था। खिड़की में से बाहर झांकते हुए अलसाए स्वर में बोला, "ओफ् हो नाजबीबी! अभी तो दिन भी ठीक से नहीं निकला। दो घंटा और सो लेने दो न।" कहकर वह फिर से धप्प से चारपाई पर गिर पड़ा।

"ए छैलू, उठ भाई। नहीं तो देर हो जाएगी। जा जल्दी से कड़े ताल[1] में ही पांडेयपुर से गाय का दूध लेता आ। तुझे कोई नहीं पहचनता। मुझे तो सब.. ।" नाजबीवी ने छैलू से नरम आवाज में विनती की।

"लेकिन कब तक, नाजबीबी?"

"बस दो-चार दिन, बाद मैं खुद जाकर ले आऊंगी।"

छैलू आंख मलता स्टील का नया लोटा लेकर खटाल की ओर चल पड़ा। नाजबीबी सोना को गोद में लिए बाहर निकल आई। बस्ती के कई लोग लोटा लेकर वरुणा के किनारे की ओर जा रहे थे। गरमी में ठंडी हवा के झोंके से बच्ची चुप हो गई थी। नाजबीबी ने ध्यान से उसे निहारा। एकबारगी उसे अपने इस निर्णय

---

1 पुरुष वेशधारी हिंजड़ा (सांकेतिक भाषा)

पर क्षोभ हुआ था। कैसे पाल पाएगी वह इसे? दिन-भर की लगातार फंसाहट। किसके भरोसे छोड़कर वह धंधे पर जाएगी? दूध-पानी, कपड़ा-लत्ता, टट्टी-पेशाब। किस उलझन में डाल लिया उसने अपने को? पर अगले ही पल गोद मे दुबकी बच्ची की असहायता पर उसे दया उमड़ आई। अपने लिए तो जानवर भी जी लेते हैं। हमें भी तो भगवान ने जानवर से भी बदतर बना रखने में कोई कोर-कसर नहीं छोड़ी थी। हो सकता है इस बच्ची के रूप में इनसान की सेवा से अगला जनम सुधर जाए। शायद इसीलिए भगवान ने उसके पास इस रूप में सोना को भेज दिया है। नाजबीबी ने आसमान की ओर देखकर, अपने दोनों हाथ बच्ची समेत थोड़ा ऊपर उठाकर प्रणाम की मुद्रा में जोड़े थे।

सामने कच्चे ओसारे में महताब गुरु अपनी चौकी से उतरकर मुर्गियों के दरबे की ओर जा रहे थे। नाजबीबी सोना को लिए उनकी ओर बढ़ चली। चेलो के कहने के बाद भी गुरुजी ने आज तक अपना घर पक्का नहीं बनवाया। मिट्टी की दीवार पर खपरैलवाली एक कोठरी जिसमें कोई खिड़की न होने के कारण दिन-भर अंधेरा रहता था। उसी में एक किनारे राशन-पानी के दो-तीन टिन और बरतन, कोने में स्टोव और माचिस। बगल में एक चारपाई पर पैताने की ओर मोडकर रखी पुरानी रजाई और कथरी। चारपाई के ठीक ऊपर, अगल-बगल की दीवारों पर गड़ी लकड़ी की खूंटियों में इस पार से उस पार तक बंधी रस्सी, जिस पर कई नई-पुरानी साड़ियां बेतरतीब ढंग से लटकती रहतीं। चारपाई के नीचे एक पुराना टिन का बक्सा, जिसमें चेलों की प्रतिदिन की कमाई का एक हिस्सा सुरक्षित रखा जाता। कोठरी के ठीक सामने वाली दीवार पर बुचरा माता[1] की शीशे के फ्रेमवाली तसवीर लटकती रहती ताकि दरवाजा खुलने पर बाहर की रोशनी मे उनका दर्शन हो सके। इसी कोठरी के सामने खुले ओसारे में महताब गुरु की लकड़ी की चौकी थी, जिस पर वे गरमी और बरसात में सोते हैं और सामने उफनती-रीतती नदी को देखा करते हैं। जाड़े में अपनी कोठरी के भीतर वाली चारपाई पर सोते हैं। ओसारे में ही एक तरफ की दीवार से सटाकर मुर्गे-मुर्गियो का दरबा ईंट-मिट्टी के गारे से बनाया गया है, जिसमें आठ दस मुर्गे-मुर्गियां अपने चूजों के साथ रहते हैं। रोज सुबह उन्हें चराने के लिए छोड़ना और शाम को ती ती...ती.. करके बुलाना और दरबे में बंद करना गुरुजी के प्रमुख कार्य है।

नाजबीबी सोना को लिए झुककर ओसारे में पहुंच गई थी। गुरुजी को सलाम बोलने के बाद वह उनकी चौकी पर बैठ गई।

''क्या नाज, आज जल्दी उठ गई?'' गुरुजी ने दरबे का जालीवाला दरवाजा

---

1 हिंजड़ों की देवी

खोलते हुए पूछा।

"हां, ये टेपकी टें-टें कर जगा दी।" नाजबीबी ने सोना को दोनों हाथो से ऊपर उठाकर दुलराते हुए कहा।

मुर्गे-मुर्गियां कुट्-कुट् का स्वर निकालते बाहर की ओर दौड़ रही थी।

"हेऽऽ हेऽऽ...।" गुरुजी ने अपने दोनों हाथों को हवा में लहराते हुए मुंह से विचित्र आवाज निकाली थी, जिसे सुनते ही मुर्गे-मुर्गियां ओसारे में से पख फडफड़ाकर बाहर उड़ गई थीं। गुरुजी आकर नाजबीबी के पास चौकी पर बैठ गए।

"कुछ पिलाया इसे कि नहीं?" गुरुजी ने सोना को देखते हुए नाज से पूछा।

"छैलू गया खटाल पर दूध ले आने...गाय का। वो कल गहकियाने की पूरी कमाई मेरे ही पास रह गई थी, गुरुजी। इसी के चक्कर में नहीं दे पाई।" नाज ने अपने दुपट्टे की खूंट खोलते हुए बताया।

"कल का पूरा माल तू रख ले। मुझे देने की जरूरत नहीं। सोना के लिए सारा सामान मंगा लेना। मैं मंजू, शबनम, चमेली-वमेली को अपने पास से दे दूंगी।" गुरुजी ने धीमे स्वर में नाज से कहा, क्योंकि सामने से चमेली और मजू नदी की ओर से इधर ही आ रही थीं।

"पाऽ लगी गुरुजी।" चमेली ने अपना दाहिना हाथ ऊपर उठाते हुए महताब गुरु को नमस्कार किया था और आकर चौकी पर गुरुजी के बगल में बैठ गई थी।

"कल पांच बड़मा[1] कमाए थे हम लोग। बड़ा चोसा[2] जजमान था। है न नाज!" मंजू ने नाजबीबी को कोहनी से धक्का दिया।

"टेपकी के चक्कर में तो हम गुरुजी को बताना ही भूल गए।" इस बार चमेली ने अपनी बात पूरी की।

"नहीं, नाज ने आकर बता दिया। तुम लोग अपना-अपना हिस्सा मुझसे ले लेना।"

"क्यों, वो पूरा नाज रखेगी क्या?" चमेली की आंखों का प्रश्न कुछ अप्रिय था।

उसे नजरअंदाज करते हुए महताब गुरु ने समझाने का प्रयास किया—

"देखो, एक इनसानी जान उसके पास है। उसकी परवरिश भी तो हम ही लोगों को करनी है।"

"लेकिन गुरुजी, ये टेपकी को डामरी[3] की तरह भला नाज कब तक गले

---

1 सौ रुपये का नोट, 2. अच्छा, 3. ढोलक

मे लटकाई रहेगी?'' चमेली की आवाज में विद्रोह का स्वर गूंज रहा था।

मंजू ने उसकी हां में हां भरी—

''गुरुजी, आखिर हम इसकी कहां तक सेवा-सभाखन[1] कर पाएंगे। चार दिन की तो बात नहीं कि टेपकी सुर्र से जवान हो जाएगी?''

''फिर जवान हो ही जएगी तो हमारी परेशानी थोड़े ही...''

''तो क्या टेंटुआ[2] दबाकर वरुण में डाल आएं?'' नाजबीबी से दोनों की बाते बरदाश्त नहीं हो रही थीं। उसने चमेली की बात को बीच में ही काटते हुए कहा।

''हाय, हाय, बेसरा माता तुम लोगों का दिमाग ठीक रखें। अरे इसी जिसम[3] के बिना तो अल्ला ने हमें यहां भेजा तो इतना दोजख[4] झेल रहे हैं। यही होता तो आज हम-तुम यह धंधा करते? किसी की निहारन[5] होते, निहारन। और इसी तन को तुम वरुणा में फेंकने की बात कर रही हो, नाज?'' गुरुजी के चेहरे पर एक बेचारगी मिश्रित गुस्से का भाव तैर रहा था।

नाज का चेहरा भी उतर गया था। उसने पश्चात्ताप-भरे स्वर में कहा—

''अरे गुरुजी, हम तो एक चींटी भी नहीं मारते। सोचते हैं, इसके अंडे-बच्चे होगे। फिर न जाने किस पाप की कमाई इस जनम में भोग रहे हैं।''

''सोचते तो हम भी हैं, नाज। पर तन तो भगवान ने आधा टुकड़ा बनाया कि किसी लायक नहीं रहे और पेट...? पेट तो नहीं न बंद करके भेजा। वह तो खुला ही है। रोज भरो, रोज खाली। उसे भी काटकर या सीकर भेजता तो कम से कम बस जीना ही तो रहता।'' चमेली ने अपने पेट पर हाथ फिराते हुए दार्शनिक भाव से कहा।

''यहां जजमान ही का भरोसा। कभी-कभार चोसा मिला तो ठीक, नहीं तो वीला[6] मिल गया तो बहुत होगा एक पानकी[7] या आधा काटका[8] थमा देगा। हमारे पेट की सुध किसे है? न सरकार को, न जजमान को।'' मंजू ने हाथ नचाते हुए कहा।

''अरे, अब जजमान के यहां भी क्या आशा? सरकार ने उनका भी बधिया[9] करवा दिया है। दो से ज्यादा पैदा ही नहीं करते।'' चमेली ने अपने दोनों हाथो से हवा में ताली बजाते हुए कहा।

''छिंदू[10] बधिया हुए हैं, छिलकू[11] नहीं।'' नाज ने आशा-भरे स्वर में कहा।

''लेकिन अपने इलाके में तो छिंदू ही ज्यादा पड़े हैं। कुछ दिन में तो लगता

---

1 शुश्रूषा, 2. गला, 3. जिस्म, 4. नरक, 5. औरत, 6. कंजूस, 7. दस रुपये का नोट, 8 पचास रुपये का नोट, 9. नसबंदी, 10. हिंदू, 11. मुसलमान।

है रोटी के भी लाले पड़ जाएंगे, गुरुजी।'' चमेली बहुत गंभीर होकर बातें कर रही थी।

महताब गुरु चुपचाप उन सबकी बातें सुन रहे थे। उन्होंने अपने कान पर रखी बीड़ी उतारकर जलाई थी और कुछ सोचते हुए उसका गहरा कश लेने लगे।

''असल में सरकार भी क्या करे? आबादी जो इतनी बढ़ गई। कहां से खाना-पीना होगा? सबको नौकरी चाहिए, सबको संपत्ति चाहिए। कोई हिंजड़ा तो नहीं सब कि आगे-पीछे कोई नहीं, और एक कोठरी, एक कथरी में जिंदगी बीत जाए।'' गुरुजी मानो स्वयं से ही कह रहे थे।

''गुरुजी एक धौंकन्नी[1] इधर भी गुरुजी।'' चमेली ने माचिस की तीली से अपना कान खोदते हुए बीड़ी मांगी। महताब गुरु ने चौकी पर रखे बिस्तर के नीचे से बीड़ी का बंडल निकालकर चमेली की ओर बढ़ा दिया था। नाज की ओर बढाया तो उसने मनाकर दिया—

''सोना के मुंह पर धुआं जाएगा तो नुकसान करेगा।''

''सोना की सुड्डी[2]।'' मंजू ने हँसकर नाज को चिढ़ाया।

''इसका सुड्डा[3] भी खोज ले, नाज। धंधे से फुरसत। फिर आराम से इसे पाल-पोस। पांच बड़मा[4] भी महीने में दे देगा तो सोना का काम पूरा।'' चमेली ने सुझाव दिया।

''फिर कौन रोज-रोज धंधे पर जाना है। कभी-कभार ही तो कहीं टेपका-टेपकी होती है। कुछ देर के लिए सोना को गुरुजी के हवाले कर चली चलना हमारे साथ।''

मंजू की बात पर नाज के मन में उथल-पुथल-सी मच गई थी। उसने सोना की ओर देखा था। महताब गुरु भी चिंतित-से उसे देख रहे थे। चमेली बीड़ी के लबे-लंबे कश खींचकर हवा में छोड़ रही थी।

महताब गुरु ने अपनी बात रखी—

''देखो, नाज, चोरी-छिपे यहां जो धंधा चल रहा है उसका फल तो तुम देख ही रही हो। जुबैदा चल बसी और अब सोबराती की बारी है— अब चला जाए कि तब। इसीलिए बस्ती में हम सबको मना करते रहे कि जिस करम को करने लायक अल्ला ने ही हमें नहीं बनाया तो उसके साथ कोई जोर-जबरदस्ती मत करो। लेकिन कौन सुनता है? कभी रेलवे स्टेशन पर मोर्चाखाए पुराने डिब्बे में से पुलिसवाले के साथ कोई निकलता है तो कभी शराबियों-कबाबियों के साथ हमारा कोई बिरादर पकड़ाता है। दस-बीस रुपयों के लिए इतना गंदा काम करने

---

1 बीड़ी, 2. मां, 3. पिता, 4. सौ रुपये का नोट

की क्या जरूरत? अरे, थोड़ा कम खाएंगे, कम सोना-चांदी पहनेंगे, लेकिन वेश्यागिरी तो नहीं करनी पड़ेगी।''

गुरूजी ने पुनः सबको उपदेश दे डाला था। जबसे चमेली को उन्होंने रात में उस चायवाले के साथ गलत काम करते वरुणा के किनारे रंगे हाथ पकड़ा और जब से डाक्टर ने सोबराती को यौन-रोग होने तथा उससे बचकर रहने की सलाह दी, तबसे महताब गुरु अपनी बस्ती के चेलों को लेकर चिंतित रहने लगे थे। पैसों के अभाव में अपने चेलों को दुष्कर्म में लिप्त देख उनकी चिंता बढ़ गई तो उन्होंने गिरिया[1] रखने की परंपरा को खुलेआम इजाजत दे दी। कम से कम एक व्यक्ति के साथ बंधकर उनका जीवन रोग-ग्रस्त तो नहीं होगा। इस समय भी वे नाज को सलाह दे रहे थे—

''गिरिया बना ले किसी को, नाज। मंजू ठीक कहती है। कभी-कभार धंधे पर भी चली जाना।''

नाज की आंखों में एक चमक जाग उठी। होमगार्ड रामसरन का सांवला कुटिल चेहरा उसकी आंखों के सामने नाच उठा था, जिसकी पत्नी को मरे तीन वर्ष हो चुके थे और जिसने कई बार नाज से अपनी कोती[2] बन-जाने का लोलुप आग्रह किया था—

'अब इस उम्र में मुझे कौन पूछेगा, नाज? तू ही मेरी...।'

'मैं तुझे क्या दूंगी?' नाज ने हँसकर पूछा था।

'विदेशों में दो मर्दों की शादी कानूनी रूप से होती है तो वे क्या देते हैं?'

'छि:, छि: कैसी बात करते हो गार्ड बाबू? हम गुड्डे-गुड़िया का ब्यांह तक तो कर नहीं सकते, अपना क्या करेंगे?'

'तुझे पांच सौ रुपया महीना दूंगा। बस, किसी से कुछ कहना नहीं।'

'दुर्र, अपने मुंह पर मार रुपया।' और हँसते हुए नाजबीबी अपनी गली में चली आई थी।

इस समय सोना के लिए उसे रामसरन के सहारे की जरूरत थी। वह उठ खड़ी हुई।

---

1. रखैल पुरुष (सांकेतिक भाषा) 2. रखैल हिंजड़ा

चार

शाम का समय। हलकी बूंदा-बांदी के बाद हवा में एक ताजगी और ठंडक का एहसास हो रहा है। विधायक मन्नाबाबू के रामपुर स्थित आवास के सामने मिलने वालों की एक लंबी भीड़ है। कुछ लोग पोर्टिकों में बनी सीढ़ियों पर तो कुछ आवास के सामने पार्क में बैठे खुली हवा में झपकी लेते ऊंघ रहे हैं।

कुछ देर पहले ही मंत्री महोदय की लालबत्तीवाली सफेद अंबेसडर कार लप्-लप् करती आकर पोर्टिको में खड़ी हुई तो सीढियों पर बैठे लोगों के चेहरे कई तरह की मुसकराहटों से लिप-पुत गए। पार्क में बैठे लोग भी हड़बड़ाकर उठ खड़े हुए। कुछ मंत्री महोदय की ओर बढ़ने लगे तो कुछ उनके बुलावे के बिना 'जाएं या, ना जाएं' के असमंजस भाव के साथ वहीं खड़े रहे।

मंत्रीजी ने एक गर्वीली मुद्रा में अपना दाहिना हाथ ऊपर उठाकर सभी के अभिवादन को मानो अपनी एक हथेली में समेट माथे से लगा लिया और अदर गैलरी में मुड़ गए। गैलरी के दोनों ओर बने कमरों में उनका व्यक्तिगत ऑफिस है, जिसमें कहीं टाइप मशीन पर कुछ टाइप हो रहा है तो कहीं कंप्यूटर पर आखें गडाए कोई व्यक्ति काम कर रहा है। एक उड़ती निगाह अगल-बगल के कमरो पर डालते हुए मंत्रीजी अपने बड़े-से हालनुमा सभाकक्ष में पहुंच गए। इसी कमरे मे शहर के तमाम प्रतिष्ठित और बड़े अधिकारियों के साथ उनकी मीटिंग हुआ करती है।

हाल के बगल से होकर ऊपर जाने की सीढ़ियां हैं, जहां मंत्रीजी की पत्नी अपने दो बेटों और चार बेटियों के साथ रहती हैं। मंत्री महोदय से उनकी भेंट या तो कभी-कभार रात में हो जाती है; या फिर दिन में जब उनकी फ्लाइट होती है तो अटैची वगैरह की तैयारी और स्नान-ध्यान के समय हो जाती है। वैसे मंत्रीजी का अधिक समय दिल्ली में ही बीतता है। बनारस रहने पर भी कार्य की अधिकता या व्यस्तता के कारण अकसर वे मिलनार्थियों के देर रात वापस जाने के बाद नीचे हाल में ही सो रहते हैं। ऐसी स्थिति में उन्हें टोका-टोकी या पत्नी और बच्चो का नीचे आकर खोज-खबर लेना कतई पसंद नहीं है। इसके लिए बच्चो और पत्नी को कठोर हिदायतें भी हैं, इसलिए उनके नीचे सो जाने पर कोई उन्हें टोकता

नहीं। मंत्री बनने पर न जाने कितनी उलझनें होती हैं! कितनी फाइलें उलटनी-पलटनी होती हैं! ये बातें कम पढ़ी-लिखी पत्नी को क्या समझ में आएंगी? बच्चे स्कूल और घर के ट्यूशन के बाद खाना खाकर सो जाते हैं। पापा मंत्री हैं। उनके लिए अच्छा भोजन, घर, गाड़ी तथा अन्य भौतिक सुविधाएं हैं, और क्या चाहिए? उनके ठाठ-बाट देखकर स्कूल के सहपाठी उनके भाग्य से ईर्ष्या करते हैं। स्वय उन्हें भी तो गांववाले कच्चे मकान की तुलना में शहर से दस किलोमीटर दूर एकांत में बने इस मकान की कद-काठी से अनुमान हो जाता है।

मंत्रीजी सभाकक्ष में पहुंचकर बड़े-से सोफे में धंस से गए थे। हाल की अन्य कुरसियों पर बैठे लोग उनके सम्मान में खड़े हो गए। पूरे हाल में ईरानी डिजायन वाला महंगा कालीन बिछा था। एक तरफ मंत्रीजी का सोफा और उसके बाईं ओर का बड़ा-सा दीवाननुमा बिस्तर, जिस पर बिछी पीले रंग की शॉटन की कीमती चादर फर्श तक झूल रही थी। शायद काम से थक जाने पर यह बिस्तर मत्रीजी के आराम करने के लिए था। बेड के बगल में एक कार्नर-सेट, जिस पर टेलीफोन, मैगजीन और गिलास-जग रखे थे। हाल के दाहिनी ओर दीवार से जुडा हुआ बाथरूम तथा टायलेट। बाथरूम से ही एक दरवाजा बाहर की ओर पीछे वाले लॉन में खुलता है। उसी लॉन से सटे मकान की बाउंड्रीवाल में एक छोटा-सा गेट। शायद अत्यावश्यक कार्य से कभी-कभी सड़क तक जाने के लिए, या फिर सामने की भीड़-भाड़ से बचकर निकलने के लिए। हॉल के बीचोबीच छत से लटकता टिमटिमाता कीमती फानूस, जिसके चार छोटे-छोटे भाई-बंधु हाल की चारों दीवारों पर जगमगाते रहते हैं।

मंत्रीजी ने हाथ के इशारे से हाल में उपस्थित सभी अधिकारियों और कार्यकर्ताओं का अभिवादन स्वीकार करते हुए उन्हें बैठने का संकेत किया। उनके दोनों हाथों की पन्ना, पुखराज और हीरे की अंगूठियां फानूस के प्रकाश मे झिलमिला उठीं। बाएं हाथ से मिनरल वाटर की बोतल की ओर उन्होंने एक कार्यकर्ता को इशारा किया तो उसने झट झुकते हुए बोतल की सील तोड़कर गिलास में पानी ढाल उन्हें थमा दिया।

पूरे हाल में एक सन्नाटा छाया था। मंत्रीजी अपने बाएं हाथ में पानी का गिलास थामे कुछ देर चुप रहे, फिर गंभीर स्वर में बोले—

''कहिए, श्यामजी! क्या खबर लाए हैं दिल्ली की, क्योंकि वहीं के पीछे-पीछे उत्तरप्रदेश को भी चलना है। उसी हिसाब से हम अपनी स्ट्रेटेजी तैयार करेंगे।'' मंत्रीजी एक भेद-भरी हँसी हँसे थे।

श्यामजी ने अपनी राजनीतिक जानकारियों का पिटारा खोल दिया था—

"प्रधानमंत्री ने इस बार लंबे राजनीतिक अनुभव की छाप छोड़ने की कोशिश की है। एक तरफ जहां उन्होंने अपने अनुभव को महत्त्व दिया है, वही दूसरी ओर, बीस नए चेहरों को अनुभव लेने के लिए मंत्रिपरिषद् में शामिल किया है, जिसमें सात तो महिलाएं ही हैं।"

"दरअसल, मैं कल वो सिंहानिया पब्लिक स्कूल के उद्घाटन में चला गया था, इसलिए मंत्रिपरिषद् के विस्तार वाली न्यूज न तो मैं टी.वी. पर ही देख पाया और न आज अखबार में ही विधिवत् पढ़ पाया...अच्छा हां, वो अनीता को मत्रि-परिषद् में शामिल किया कि नहीं!"

"जी हां, उन्हें स्वतंत्र प्रभार वाला मंत्री बनाया गया है। इतना ही नहीं, तीन अनुसूचित और दो अनुसूचित जनजाति के सांसदों को भी हिस्सेदारी मिली है।" श्यामजी ने अपना अनुभव सुनाया।

मंत्रीजी कुछ देर चुप होकर कुछ सोचते रहे और फिर मानो स्वयं को जवाब दिया—

"राजनीतिक दृष्टि से यह मंत्रिपरिषद् महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि अगले कुछ ही महीनों में उड़ीसा और बिहार में विधानसभा चुनाव होने वाले हैं, इसलिए यह समीकरण बनाया जा रहा है। हमें अभी से सावधान रहना है...क्यों राममूरत, दुद्धीगंज गांव में हैंडपंप लग गए?" मंत्रीजी ने दूसरे कार्यकर्त्ता से पूछा था।

"जी मंत्रीजी! पूरे...बस, एक...वही ग्रामप्रधान अपने दरवाजे पर लगवाने की जिद कर रहे थे। गाय-गोरू के लिए पानी ढोने में उनको दिक्कत होती थी, सो उनके दरवाजे पर लगवा दिया...कम से कम पांच सौ वोट हैं उसके हाथ मे।" राममूरत अपनी बुद्धिमानी की धाक जमाने में जुट गया।

मंत्रीजी ने हँसकर कहा—

"ठीक है, ठीक है, ये तो ठीक किया, पर पूरे हैंडपंप लगवा दिए हैं न?"

"अरे! मंत्रीजी की बात...एक पांड़ेपुरवा में, एक बजरहिया, एक देवगज में ."

"बस, बस, मैं नाम नहीं पूछ रहा हूं। तुम्हारे ऊपर विश्वास है, भाई। वो तो बस इसलिए कनफर्म कर रहा हूं कि कहीं चारा और भैंस को ढोने वाली मोटर साइकिल का हाल न हो जाए।" लोग ठहाका लगाकर हँस पड़े थे।

हाल ही में एक नेता द्वारा भैसों और उनका चारा ट्रक द्वारा फर्जी रूप से मगवाया गया था और फाइल में ट्रक का जो नंबर दिया गया, वह जांच अधिकारियों द्वारा छानबीन करने पर मोटर साइकिल का नंबर पाया गया था। इसे लेकर उस नेता की काफी छीछालेदर अखबार वालों ने की थी।"

सभी की संम्मिलित हँसी से सभा-कक्ष गूंज उठा था।

मंत्रीजी ने कालबेल दबाकर अपने पी.ए. को बुलाया।

"जी सर?" पी.ए. उपेंद्र सिंह आकर उनके पास खड़ा हो गया।

"रामवतीदेवी इंटर कॉलेज को जो एक लाख रुपये का चेक देना था वह दे दिया?"

"जी सर, अभी नहीं। वो..."

"अरे भाई, वो-वो क्या कर रहे हो? वहां का मैनेजर काफी प्रभावशाली व्यक्ति है। उसे खुश रखना है। समझ गए न? कल वहां के प्रिंसिपल को फोन करके बुला लेना। एक कप चाय साथ पिएंगे। और हां, वो आर.एस. पब्लिक स्कूल को भी मैंने पचास हजार देने का वादा कर दिया है। दोनों चेक विधायक निधि से कल निर्गत कर दो।"

मंत्रीजी ने आदेश दिया था।

"जी, सर! हो जाएगा।" और उपेंद्र सिंह मन ही मन कमीशन का हिसाब जोडते हुए जाने लगा था।

"और हां, उपेंद्र! वो जरा ठीकेदार को कहना..." मंत्रीजी की बातों को न समझते हुए उपेंद्र सिंह ने ठिठककर प्रश्नवाचक निगाह से मंत्रीजी की ओर देखा।

मंत्रीजी ने स्पष्ट किया—

"अरे भाई वही, सड़क का ठीकेदार...क्या नाम है वो..."

"जी, सेवकराम?" उपेंद्र ने याद दिलाया।

"हां, हां वही! उससे कहना जरा कोटा गांववाली मेन सड़क को थोडा दाहिने भी मोड़ देगा। लगभग सौ मीटर, और पिच करवा देगा।"

"लेकिन सर, वो सड़क तो सीधी..."

"अरे, सीधी तो जाएगी ही। बस जरा-सा दाहिने भी मुड़ेगी। वो किशन पाठक रहते हैं न? अरे वही गायक, जो कई बार सम्मान-वम्मान पा चुके हैं। उस सडक का नाम पाठक-मार्ग रखवाना है। कई बार कह चुके हैं वे। इसी बहाने उस कालोनी में अपनी पकड़ मजबूत होगी।" मंत्रीजी हँसे थे।

सभा में से किसी ने बताया—

"लगभग पांच-छः सौ सॉलिड वोट हैं वहां।"

"हां भाई, जानता हूं। तभी तो रोड मोड़ रहा हूं और उसका नाम भी उनके नाम पर रख दे रहा हूं। पूरी तरह से नाकेबंदी नहीं होगी तो इस बार सत्ता पार्टी के सामने टिकना मुश्किल है। सांसद साहब तो इस बार जी-जान से जुटे हैं जनता को अपनी तरफ खींचने में।" मंत्री ने चिंता जताई थी।

''पिछली सरकार तो अल्पमत की थी, लेकिन इस बार तो लगभग पूर्ण बहुमत उसे चुनाव में ही मिल गया था। यह उसकी उपलब्धि भी है और दूसरी पार्टियों के लिए चुनौती भी।'' सभा में बैठे सभासद के टिकट के उम्मीदवार जयनारायण पांडेय बोल पड़े थे।

मंत्रीजी को सत्ता पार्टी की उपलब्धियां सुनना नागवार लगा। उन्होंने झट बात काटते हुए कहा, ''नहीं पांडेयजी, भारत की जनता भेड़ है भेड़। जिधर हांक दो। हवा बदलते देर नहीं लगती। बस आप सभी लोग अभी से तन, मन, धन से जुट जाइए। अभी पर्याप्त समय है।...चुनाव करीब आ जाए तो बस, कहीं किसी मस्जिद पर सुअर का मांस रखवा दंगे भड़का दो, कहीं अंबेडकर बस्ती में अंबेडकर की मूर्ति लगवा दो, आ गई जनता आपकी झोली में।'' मंत्रीजी कार्यकर्ताओं को देखकर एक कुटिल हँसी हँसे थे।

अगले ही पल वहां बैठे दो प्रशासनिक अधिकारियों को देखकर उन्होंने बात सभाली थी—

''लेकिन हमारी पार्टी हमेशा से सिद्धांतों वाली रही है। इस तरह की घटिया हरकतों या प्रलोभनो से वह सत्ता हथियाने के पक्ष में कभी नहीं रही। भले ही वह क्षेत्रीय पार्टी बनकर ही रह गई हो। ये सारे कार्य हमारी कई राष्ट्रीय पार्टियो ने किए—मस्जिद ढहाई, मंदिर का मुद्दा उठाया। किसी पार्टी के माथे लांछन लगा, दूसरे ने अपना हाथ सेंका, अपना उल्लू सीधा किया। जनता बेचारी मूर्खों की तरह जो भी सुनाया जाता रहा, सुनती रही। पता चला, विहिप और शिवसेना की आड़ मे अपना काला चेहरा छिपाकर न जाने कितनी दूसरी पार्टियां अपना काम कर गईं। ऐसे ही होता है राजनीति में। मैं और मेरी पार्टी इस तरह की बातों के सख्त खिलाफ हैं।''

मंत्रीजी ने सफाई में एक लंबा भाषण ही दे डाला।

''लेकिन नीति तो कहती है—सत्ता और सियासत में सब कुछ जायज है।'' श्यामजी ने अपनी बात जोड़ी।

''नहीं, मैं नहीं मानता। ईमानदारी और सेवा की कोई चीज है, भाई। जिस जनता का खाते हो, उसी के साथ इतना धोखा? किस जन्म में भरोगे भाई?''

''साठ के दशक में एक सर्वे हुआ था कि एक केंद्रीय मंत्री पर जनता की कितनी रकम खर्च होती है। यह सर्वे गोपनीय था, लेकिन बाद में लोकसभा की बहसों में यह उजागर हो गया था। उस समय मोटे तौर पर यह पता चला था कि एक मंत्री पर करीब दो लाख रुपये व्यय होते हैं।''

जयनारायण पांडेय ने अपना आंकड़ा सुनाया।

श्यामजी ने उसमें अपना अनुभव और जोड़ते हुए बताया—

"इसमें वह सब सहूलियतें थोड़े ही शामिल हैं जो मंत्री को अपने मंत्रालय से प्राप्त होती हैं। बंगला, कार, देश में कहीं की भी हवाई यात्रा और न जाने क्या क्या..."

"अरे, यदि साठ के दशक में यह दो लाख था तो नब्बे के दशक में यह पचास लाख...यानी आधा करोड़ के मंत्री हो गए। सुविधाएं अलग।" एक कार्यकर्त्ता ने जोड़कर हिसाब लगाया था।

मंत्रीजी ने सिर हिलाते हुए अपनी सहमति जताई—

"इसीलिए न लोग कैबिनेट की ओर भागते हैं! खैर, हम तो जनता के सेवक हैं। कम औकात ही सही, उतने में ही अच्छत-जल लेकर हाजिर रहते है। पूरे पर निगाह तो नहीं रहती।"

मंत्रीजी ने दोनों अधिकारियों की ओर देखते हुए स्वीकार में गरदन हिलाई। उन्हें देखकर एस.डी.एम. मिश्र ने भी हां में सिर हिला दिया।

"हम लोगों के लिए क्या आदेश है? आपने बुलवाया था मुझे।" जिला विद्यालय निरीक्षक जे.डी. खान ने विनम्रता से पूछा। काफी देर से इंतजार करते रहने के कारण उनके चेहरे पर एक वितृष्णा का भाव था।

"क्या, मैंने बुलवाया था?"

"जी हां, कल बड़े बाबू..."

"ओ हो, हां याद आया। अरे भाई वो आराजी लाइन वाले स्कूल की जो मास्टराइन है, उसका एरियर पास करने में क्या दिक्कत है? पास कर दीजिए न। बेचारी आई थी, रो रही थी।"

"वो मंत्रीजी, उसकी नियुक्ति फर्जी..."

"अरे भाई, नियुक्ति तो किसी की भी फर्जी हो सकती है। आप कंपटीशन से आए हैं, आपके मामले में भी कोई चाहे तो एक आब्जेक्शन लगा सकता हे .अरे कुछ ले-देकर उसका मामला खतम करिए।"

एस.डी.एम. और जिला विद्यालय निरीक्षक चुपचाप बैठे थे। कार्यकर्त्ता उनकी तरफ देख रहे थे।

कुछ क्षण रुककर मंत्रीजी एस.डी.एम. मिश्र की ओर मुखातिब हुए थे—

"अरे हां मिश्राजी, वो ग्रामसमाज वाली बंजर जमीन उमापति सिंह राठौर के नाम पट्टा कर दीजिए। जानते हैं, वो हमारे कौन हैं?...दूर के रिश्ते में मेरे साले...और आप तो जानते ही हैं कि सगरी लुगाई एक ओर, जोरू का भाई एक ओर।" कहते हुए मंत्रीजी ठट्ठा मारकर हँस पड़े थे।

मिश्र भी उनका साथ देने के लिए हस पड़े।

"तो अब चलूं, सर?" जे.डी. खान ने उठते हुए पूछा।

"तो हो जाएगा न काम?" मंत्रीजी ने उत्तर के लिए उनकी ओर गहरी निगाह से देखा।

"जी हां, पूरी कोशिश करता हूं।" जे.डी. खान ने सिर झुकाते हुए जवाब दिया और बाहर निकल गए। उनके पीछे एस.डी.एम. मिश्र भी निकल पड़े थे।

"बड़ा अकड़ू अफसर बनता है यह खान।" मंत्रीजी ने उन दोनों के जाने के बाद बाहरी दरवाजे की ओर देखते हुए कहा।

"नए-नए आए होंगे।" एक कार्यकर्त्ता ने धीरे से कहा।

दूसरे ने अपनी बात जोड़ी थी—

"मुसलमान है न? सोचता होगा, क्या कर लेगा कोई?...दबंगई से रहते भी हैं ये सब और सारा लाभ भी लेते हैं।"

"जरा पाकिस्तान में कोई हिंदू किसी ऊंची कुरसी पर बैठ जाए...सवाल ही नही उठता।"

"इस मामले में संघवाले ठीक हैं। खरी-खरा बात।" दूसरे कार्यकर्त्ता ने मत्रीजी की चापलूसी में और जे.डी. खान की बुराई में पूरे हिंदुस्तान-पाकिस्तान की राजनीति बखान डाली।

"खाएंगे हिंदुस्तान की, गाएंगे पाकिस्तान की।" श्यामजी ने संक्षेप में अपनी बात रखी।

मंत्रीजी ने सभी को चुप कराते हुए कहा—

"अरे भाई, धर्मनिरपेक्ष देश है हमारा। हमें ऐसी बातें नहीं करनी चाहिए...अब आप लोग भी जा सकते हैं। हां श्यामजी, जरा बाहर मुलाकातियों से कह देना कि मेरी तबियत ठीक नहीं है, इसलिए आज और किसी से नहीं मिल पाएंगे।"

"जी अच्छा, सर!" कहते हुए सभी उठ खड़े हुए।

"मे आई कम इन, सर।"

डिप्टी एस.पी. शरण बिहारी अपना कैप हाथ में लिए दरवाजे में खड़े थे।

"कहिए शरण बिहारीजी, क्या हाल है?" मंत्रीजी ने उठते हुए पूछा।

"जी ठीक है। नारी उद्धारगृह की वार्डेन रीताजी आई हैं आपसे मिलने। रास्ते में आ रही थीं तो मैंने गाड़ी में बैठा लिया...सोचा, आपके दर्शन मैं भी कर लूं।"

"रास्ते में वो मिलीं या आप उनके रास्ते चले गए थे।" मन्त्रीजी हँस पड़े थे।

शरण बिहारी उनके अच्छे मित्रों में से थे। रीता देवी को भी मंत्रीजी अच्छी

तरह जानते थे। नारी उद्धारगृह के छोट स छोट कायक्रम म भी वे मत्रीजी का बुलाना नहीं भूलतीं। मंत्रीजी की भी विशेष कृपा-दृष्टि नारी उद्धारगृह पर हमेशा रहती है। मंत्रीजी ने शरण बिहारीजी से ही रीता देवी को अंदर भेजने के लिए कहा और स्वयं पुनः सोफे में धंस गए थे।

रीता देवी हँसते हुए अंदर आई थी। नारंगी रंग की प्लेन साड़ी पर शीशे की कढ़ाई-वाला काला ब्लाउज और गले में लंबा-सा मंगलसूत्र पहने रीता देवी मत्रीजी को हाथ जोड़ उनके पास ही सोफे पर बैठ गईं।

चालीस-पैंतालीस वर्ष की, सांवली, रीता देवी ने अपने बाल छोटे-छोटे कटवा रखे थे, जो बातचीत में गरदन हिलते समय अपने-आप आगे की ओर ढुलक आते और वे उसे बड़ी बेपरवाही से पीछे की ओर धकेल देतीं। रीता देवी ने अपना पर्स खोला था और एक आमंत्रण कार्ड निकालते हुए गरदन मटकाकर कहा—

"आप तो हमें एकदम भूल गए, मंत्रीजी।"

"नहीं भाई, भूला कहां हूं! जब आप बुलाती हैं हाजिर हो जाता हूं।" मंत्रीजी ने भेद-भरे ढंग से कहा।

"आठ तारीख को कृष्ण जन्माष्टमी है। आपको जरूर आना है।" रीता देवी ने कार्ड मंत्रीजी के हाथ में पकड़ाते हुए कहा।

"उस समय तो लखनऊ में..."

"अरे अभी डेढ़-दो महीने बाकी हैं। अगस्त में है मंत्रीजी और आप अभी से न आने के बहाने बनाने लगे।" रीता देवी ने बालों को झटका दिया।

"ओहो! तब तो शायद रहूं। लेकिन इस बार कृष्ण जन्माष्टमी पर केवल बधाई-गीत न करवाइए। रासलीला अच्छी रहेगी। बड़ी लड़कियों से तैयार करवाइएगा।" मंत्रीजी ने सुझाव दिया।

रीता देवी खुश हो गई थीं। उन्हें मानो अपने मन की बात कहने का मौका मिल गया था—

"रासलीला के लिए उतने संगतकार, ड्रेस वगैरह का खर्च...वैसे भी मत्रीजी, एक निवेदन लेकर आई थी। हिम्मत तो नहीं पड़ रही है, फिर भी कह रही हूं। कुछ विधायक निधि से मदद कर दीजिए तो अपने उद्धारगृह की दूसरी मजिल भी बनवा लूं। सोचती हूं, ऑफिस वगैरह नीचे रहता और रहने की व्यवस्था ऊपर तो ठीक रहता।"

"क्यों, अभी पिछले वर्ष ही तो दो लाख रुपये हमने दिए थे। मुश्किल से सात-आठ महीने ही हुए हैं। दोबारा देने में मुश्किल आ सकती है।" मंत्रीजी ने

कुछ सोचते हुए कहा.

रीता देवी ने अपनी बात स्पष्ट की—

"आपको क्या मुश्किल आएगी, मंत्रीजी! आप लोग सरकार हैं। हम प्रजा को देंगे तो हम आप ही का यश गाएंगे।"

रीता देवी की चापलूसी-भरी बातों पर मंत्रीजी हँस पड़े थे—

"बहुत चालाक हो, रीता देवी तुम। कहीं ऑडिट वगैरह में फंसना मत।"

"अरे मंत्रीजी, अब आपसे क्या छिपा है? पचास हजार तो कमीशन ही दे दिया आपको। दो कमरे और छत पटवाने के बाद क्या बचा होगा, आप स्वय अनुमान लगा लीजिए—ईंट, गारा, लेबर चार्ज, ढुलाई, पोताई...।" रीता देवी अपनी गरदन हिला-हिलाकर एक विशेष अंदाज में मंत्रीजी को जोड़कर बता रही थीं।

"एक मिनट, रुको तो, रीता देवी। पचास हजार कमीशन?...तुमसे तो मैंने पच्चीस प्रतिशत ही तय किया था।" मंत्रीजी के चेहरे पर तनाव की रेखाएं खिंच गईं थीं।

रीता देवी ठहाका मारकर हँस पड़ी थी।

"तो दो लाख का कितना हुआ?"

"ओह हो, मैं तो चौंक ही गया कि कहीं मेरी नाक के नीचे ही गुणा-गणित तो नहीं चल रहा है।" मंत्रीजी हँस पड़े थे।

अब तक चुप बैठे शरण बिहारी ने भेद-भरे स्वर में कहा—

"बाकी के पचास परसेंट तो आपस की सूझबूझ है।"

रीता देवी शरण बिहारी की ओर देखकर मुसकरा उठीं—

"आप भी मंत्रीजी के ही कोटे में आते हैं, जान लीजिए। नहीं तो बड़े-बड़े अफसरों तक को मैं वहां टपरने नहीं देती।"

"अरे भाई, सुरक्षा के लिए भी तो कोई चाहिए। हम आपकी सुरक्षा में रहते है। नहीं तो छोटे-छोटे सिपाही तक वसूली करने पहुंच जाएंगे। गुंडा-बदमाशों की तो बात कभी-कभी आप स्वयं अनुभव करती होंगी।" शरण बिहारी ने अपरोक्ष रूप से रीता देवी को उनकी असुरक्षा का एहसास कराया था।

मंत्रीजी ने हँसकर शरण बिहारी की बात का समर्थन किया—

"आग की दुकान के पास फायर ब्रिगेड का रहना जरूरी है। शरण बिहारी फायर ब्रिगेड हैं, रीता देवी, फायर ब्रिगेड!"

"तब तो आपको अपनी दुकान का ब्रिगेडियर मानती हूं मैं। लेकिन हमे कुछ मदद करिए—आग की दुकान में ईंधन रखने के लिए।" रीता देवी ने बात को सरस बनाने का प्रयास किया।

''देखिए, रीता देवी! इसके लिए एक नया एन.जी.ओ. रजिस्टर्ड करा लीजिए।'' मंत्रीजी ने सुझाव दिया।

''आप मजाक कर रहे हैं, मंत्रीजी। आखिर आप ही बताइए, पचासों लड़कियों का पेट मैं कैसे भरूं? लोग अपना परिवार चलाने में हाय-तोबा करने लगते हैं, मैं तो न जाने कहां-कहां की बही-बिलाई लड़कियों को...''

''लड़कियां नहीं, सोने के अंडे वाली मुर्गियां। इन्हीं की बदौलत तो इतने अनुदान पाती हैं आप।''

रीता देवी की बात को बीच में ही काटकर शरण बिहारी बोल उठे।

''क्या? मुर्गियां? इन्हें चुगाने के लिए भी तो कुछ चाहिए होता है।'' रीता देवी ने अपने चेहरे पर बनावटी बेचारगी का भाव ओढ़ लिया था।

''अरे, तो मंत्रीजी कहां इनकार कर रहे हैं? बस, एक और छोटा-मोटा एन.जी.ओ. खोल लीजिए। एक बार इसके नाम, एक बार उसके नाम। कमीशन भी बस, पचीस परसेंट।''

शरण बिहारी ने रीता देवी को समझाने का प्रयास किया।

मंत्रीजी ने हँसते हुए बीच में ही बात काट दी—

''ना, ना, ना...बस नारीउद्धार के लिए ही मेरी यह मुरव्वत रहेगी। दूसरे एन.जी.ओ. के लिए नहीं। आखिर हमें भी तो चुनाव वगैरह का खर्च इन्हीं सब से निकालना होता है। नहीं तो पिताजी का खेत बेचकर कितने दिन नेतागिरी चलेगी?''

''पचीस परसेंट नारी उद्धारगृह के नाम पर और बाकी के पचीस परसेंट में किसी नारी का उद्धार!'' शरण बिहारी ने मजाक वाले लहजे में रहस्य पर से मानो परदा उठाया था।

''तो तुम क्या वहां माला फेरने जाते हो, शरण बिहारी?'' मंत्रीजी शरण बिहारी पर व्यंग्य करके हँस पड़े।

''मैं तो जन-प्रतिनिधि का शैडो होता हूं।'' एकांत में परिहास का वातावरण बन गया था।

रीता देवी ने लोहा गरम देख वार किया—

''तो इसी बात पर मंत्रीजी, अपने पी.ए. से कह दीजिए। मैं आकर ले लूंगी चेक।''

मंत्रीजी ने घंटी दबाई थी। पी.ए. उपेंद्र सिंह पुनः आकर उनके आदेश की प्रतीक्षा में खड़ा हो गया था।

''ये रीता देवी हैं...पहचान रहे हो न? नारी उद्धारगृह की संरक्षिका। इन्हें

एक लाख का चेक काट देना, पर कमीशन पचीस परसट ही रखना। अपनी खास हैं।'' मंत्रीजी ने एक आंख धीरे से दबाई थी।

पी.ए. आदेश के पालन के लिए चला गया था।

मंत्रीजी रीता देवी से मुखातिब हुए थे—

''कल आकर चेक ले जाइएगा।''

शरण बिहारी ने तुपका जड़ा था—

''पचीस परसेंट कैश पचीस परसेंट क्रेडिट—जन्माष्टमी को।''

''आप बड़े वो हैं!'' कहते हुए रीता देवी की आंखों में एक खुशनुमा सपना लहरा उठा। वे हाथ जोड़कर चलने की मुद्रा में खड़ी हो गई थीं।

पांच

यह गरमी भी बीत गई थी और सावन लग चुका था। सोना के जन्म से लेकर अब तक समय पांच ग्रीष्म के दरवाजे पर दस्तक दे चुका था। नाजबीबी अपनी कोठरी में चारपाई पर चित्त लेटी थी। माथे पर बड़ा-सा गुलसा और होंठ पर चोट के कारण खून की पपड़ी के नीचे की सूजन स्पष्ट दीख रही थी। सीने की हड्डियो मे हो रहे दर्द के कारण अनायास ही उसके मुंह से कराह निकले जा रही थी। कोयले की भट्ठी पर तवा चढ़ा था जिस पर बालू से भरी छोटी-छोटी कपड़े की पोटलियां गरम हो रही थीं। चमेली भट्ठी के सामने बैठी दफ्ती के एक टुकड़े से चूल्हा हौंक रही थी और एक-एक पोटली उठाकर सोना को देती जा रही थी। धीरे-धीरे सोना लगभग पांच वर्ष की हो चली थी। नाजबीबी को वह मम्मी कहती तथा अन्य सभी लोगों को चाची, मौसी, कक्का, बुआ कहकर अपनी तोतली जुबान से पुकारने भी लगी थी।

"ले जा सोना, छैलू कक्का को दे आ।"

"गलम है, तम्मो ताती।" सोना ने हाथ में पकड़ी गरम पोटली जल्दी से छोड दी थी। चमेली को वह तम्मो चाची कहती थी लेकिन 'र' और 'च' का शुद्ध उच्चारण अभी तक नहीं कर पाती थी। सभी उसकी इस भोली हरकत पर हँस पड़े।

चमेली ने प्यार से एक झिड़की दी—

"अभी से जान इतनी प्यारी है?" और उसने पोटली उठाकर उसका ऊपरी टोक धीरे से सोना की नन्हीं उंगलियों में पकड़ा दिया था।

छैलू ने लपककर उसके हाथ से पोटली ले ली थी और अपनी हथेली पर छुआने के बाद नाजबीबी के सीने की हड्डियों पर हलके-हलके दबाकर सेंकने लगा। शबनम सिल पर हल्दी और प्याज पीस रही थी।

महताब गुरु भी आकर नाजबीबी की चारपाई पर एक ओर बैठ गए थे। अपना काला छाता मोड़कर उन्होंने दरवाजे के पास ही टिका दिया था। छाते से टप्-टप् टपककर पानी की एक पतली धार कोठरी के अंदर आने लगी। बाहर बरसात तेज हो गई थी। कुछ देर पहले बादलों और सूरज की आंख-मिचौली को

देखकर नहीं लग रहा था कि इतनी तेज बरसात हो जाएगी। शाम से पहले ही अंधेरा घिर आया था। सावन अपनी पूरी ताकत से बरस रहा था।

"अच्छा हुआ नाज, तू भीगने से पहले घर आ गई।" महताब गुरु ने अपनी हथेली पर गाल टिकाते हुए कहा।

उन्हें मंजू ने जाकर बताया तो पता चला कि नाजबीबी को बहुत चोट आई है। चोट तो शायद अकरम को भी आई थी, पर वह इशारे से ना में सिर हिलाकर अपनी कोठरी में बंद हो गया था। अकरम गूंगा भी नहीं और ठीक तरह से बोल भी नहीं पाता था। कुछ विचित्र-सी आवाज के साथ जब वह संकेत करता तब कोई उसकी बातें कुछ-कुछ समझ सकता था। आज दोपहर में ही नाजबीबी उसे लेकर कहीं निकल गई थी। अकसर वह सोना के लिए कुछ खरीदने या अपने गिरिया से मिलने के लिए वक्त-बेवक्त निकल जाती थी। हालांकि उनके समाज मे पुरुषों का प्रवेश या उनके साथ किसी भी प्रकार का संपर्क वर्जित था और वह पाप की श्रेणी में आता था, लेकिन जबसे शहरों में ऊंची-ऊंची बिल्डिंगों की बढोतरी हुई है, उसके धंधे में मंदी आई है। पहले तो मोहल्ले में घुसते ही किसी न किसी से हँसी-मजाक में पता चल जाता था कि किस घर में बच्चा पैदा हुआ है, पर अब तो बच्चे भी कम पैदा हो रहे हैं और उस पर से चार-पांच मंजिल वाली बिल्डिंगों में तो उन्हें कोई घुसने ही नहीं देता। सभी अपना-अपना दरवाजा बद किए घरों में कैद। किसी को किसी से मतलब ही नहीं। पड़ोस में किसके घर खुशी पड़ी या गमी, इससे भी बेखबर रहते हैं लोग। धंधे में आ रही इस गिरावट को देखते हुए गिरिया रखने तक की छूट तो अब न चाहते हुए भी स्वीकृति पा चुकी थी उनकी बस्ती में। समलैंगिक भूख से बेचैन कोई-कोई समर्थ पुरुष जो इनका कोती[1] के रूप में भरण-पोषण कर सके, इसके लिए अपनी इच्छित या अनिच्छित स्वीकृति कोई भी हिंजड़ा दे सकता था। पेट पालने की इसी विवशता में कितने तो छिपे-मुंदे तौर पर इसे वेश्यावृत्ति की तरह अपना चुके थे, क्योंकि एक तो गिरिया कम लोग बनते थे और दूसरे केवल गिरिया द्वारा दी गई सीमित धनराशि में इनका खर्च चलना मुश्किल हो जाता था। कभी-कभी ट्रेनों और बसों में चढ़कर भी ये धन उगाही करने लगते, लेकिन ऐसे हिंजड़ों को पता चलते ही उन्हें बिरादरी से बहिष्कृत करने जैसा दंड भी गुरुजी द्वारा दे दिया, जाता क्योंकि उनके समुदाय में भीख मांगना, चोरी-हिंसा करना भयंकर पाप माना जाता है।

"हायऽऽऽ..." नाजबीबी दर्द से चिल्ला पड़ी थी। शबनम हल्दी-प्याज को सरसों के तेल में गरम करके उसके माथे के गुमले पर रख रही थी।

---

1 स्त्री वेशधारी हिंजड़ा (सांकेतिक भाषा)

"धीरे से शबनम। न जाने मुई कहां गिर पड़ी? कौन अंधा था जो आकर इससे लड़ गया? कितना चोट खा गई है बेचारी! चच्च...च्च..."

महताब गुरु नाजबीबी का पेट सहलाने लगे। छैलू पोटली से धीरे-धीरे सेंकाई कर रहा था। नाजबीबी खोई-खोई-सी कभी सोना को तो कभी धुएं से काली पड़ी मकड़ों के जाले से भरी कमरे की छत को निहारती। सोना अपना दोनों पैर फैलाए भट्ठी के पास बैठी बिस्कुट का पैकेट खोलकर खाने लगी थी। वह मम्मी को इस दशा में देखकर उलझन में थी। हमेशा बहर से आकर मम्मी उसको अपने कंधे पर बैठाकर घोड़ा बनी वरुणा की ओर एक दौड़ अवश्य लगाती थी। परंतु आज आते ही वह चारपाई पर लेट गई थी। सोना ने एक बिस्कुट हाथ में लेकर नाजबीबी को दूर से दिखाया—

"मम्मी खाओगी...खा लो...। तोत थीक हो जाएगी।"

"देख नाज, सोना कितने प्यार से तुझे बुलाना चाह रही है।" मंजू ने स्नेह से सोना को देखते हुए कहा।

नाज धीरे से बोली—

"ना बिटिया, तू खा। मैं नहीं खाऊंगी।"

मम्मी के थोड़ा बोल देने से सोना उत्साहित हो उठी थी। उसने बात को जारी रखा—

"मम्मी, तुम गिल पली। तोत लग गई?"

"हां बेटा...।"

"मम्मी सियाल की शादी हुई आज। तुम देखी?" सोना की बात पर सभी हँस पड़े।

नाज ने कुछ नहीं समझने की मुद्रा में सोना की ओर आंखें घुमा दीं। छैलू ने स्पष्ट किया—

"आज धूप रहते ही बारिश हो रही थी तो मैंने ही सोना से कहा कि ऐसा इसलिए हो रहा है कि सियार की शादी हो रही है।"

सोना पुनः मचल उठी और शिकायत करते हुए बोली—

"थैलू कक्का हमें वहां नहीं ले गए।"

"तुम्हारी मम्मी लेकर जाएगी सियार की शादी में।" कहकर चमेली हँस पड़ी। एकाएक उसे कुछ याद आया—

"अरे हां, आज वो निहारन[1] फिर आई थी यहां गुरुजी को खोजते-खोजते।"

"कौन? वही जो हाथ में कनबासी[2] लिए उस दिन आई थी?" मंजू उत्सुक

---

1. औरत, 2. टेलीफोन।

हो उठी जानने के लिए। चमेली न स्पष्ट किया—

"हां, हां, वही। कहती है अखबार में लिखेंगे तुम लोगों के बारे में! गुरुजी से मिलना चाह रही थी और गुरुजी ने धीरे से हमसे कह दिया कि पतवाई दास[1] करो।"

चमेली ताली पीटकर हँस पड़ी। महताब गुरु के चेहरे पर सशंकित भाव पुनः जाग उठा—

"पता नहीं क्या जानना चाहती है...क्या हम बताते, क्या वह लिख देती? हम लोग ठहरे अनपढ़...! इनसानों की जात का क्या?"

"तो क्या होता? अपनी नाज तो दर्जा आठ तक पढ़ी है। छैलुआ भी पढा है। कोई भी पढ़कर सुना देता, गुरुजी। बता डालो हम सबका कुछ दरद। हो सकता है, कुछ सरकार लोगों को हम पर भी तरस आ जाए।" अबकी बार कमला बोल पड़ी थी। वह बहुत देर से चुप बैठी थी।

महताब गुरु वितृष्णा से बोले—

"क्या, तरस खाएंगे? जब ऊपरवाले ने नहीं खाया तो ये लिखने-लिखाने से क्या? फिर कौन जाने, कहां ले जाकर फांस दे वह निहारन। देखती नहीं, कैसा कथुआई[2] बांध बंदरिया[3] बनकर आई थी।"

"अरे, पढ़ी-लिखी मेमिन है। अपनी नाज भी अगर हिंजड़ा न हुई होती तो ऐसी ही बनती।" चमेली ने भट्ठी का कोयला चिमटे से खोदते हुए कहा।

नाज को एक बार अपनी मां और पिता याद आ गए थे। स्कूल की सहेलिया अनीता और प्रेमा भी याद आ गईं। हृदय में हूक उठने से पहले ही वह कमला की बात सुनने लगी जो कह रही थी—

"इस बार वो मेमिन आएगी कुछ पूछने तो हम उसे नाज के पास धकेल देंगे। बेचारी, सड़क से यहां तक पैदल आने में हांफ जाती है। कैसा टप्-टप् पसीना उसके गोरे माथे से चूता रहता है।"

"दो बार आ चुकी वह।"

"नाज के पास ही क्यों? तेरे मुंह से बकार नहीं फूटेगी क्या?" छैलू नाज की सुरक्षा में बोल पड़ा।

"हमसे तो वो पता नहीं क्या कबुलवा लेगी...नाज तो कम से कम इस मामले में समझदार है।" कमला बेचारगी से बोली।

नाज के चेहरे पर एक आत्मविश्वास-सा क्षण-भर को चमका था, लेकिन दूसरे ही पल बुझ गया। अब क्या फायदा पिछली जिंदगी को याद करके। जीवन तो यहां बिताना है। वह चुपचाप सबकी बातें सुन रही थी। शबनम उसके माथे

---

1 चलता करो, 2. कलाई घड़ी, 3. अंग्रेज

पर पुरानी सूती गमछा फाड़कर हल्दी-प्याज को रेंड के पत्ते के नीचे ढंककर पट्टी बाध दी थी, ताकि दवा कुछ देर माथे पर टिकी रहे।

नाज चुपचाप कुछ सोच रही थी।

"कल फिर आएगी वो मेमिन। तेरे पास ले जाऊंगी, नाज। कल तो कही नही जाना है न?" कमला ने नाज से पूछा।

"तू बड़ी उस मेमिन के आगे-पीछे घूम रही है, कमला! क्या बात है?" महताब गुरु ने कमला की ओर देखते हुए पूछा।

"अरे गुरुजी, बड़ी अच्छी लगती है वो! उसका स्वभाव बहुत बढ़िया है। हमेशा हँसके बोलती है। नहीं तो और लोग तो हम लोगों से दुर्र करके ही बोलते हैं देखा नहीं उस दिन, आपको पूछ रही थी तो कितना प्यार से।"

"चल, चल, प्यार में ही धोखा होता है...पानी बंद हो गया है।" महताब गुरु ने दरवाजे की ओर देखकर कहा। चमेली, शबनम और कमला भी उठ खडी हुई थीं जाने के लिए।

नाज ने गुरुजी की साड़ी अपने हाथों में पकड़कर विनती की थी—

"गुरुजी, कुछ देर आप रुक जाइए।" नाजबीबी के चेहरे पर एक असमजस का भाव था।

"छैलू, जरा सोना को ले जाकर शबनम के घर तक घुमा ला। वो गिलास का दूध भी लेता जा। मुर्गा-मुर्गी देखकर पी लेगी नहीं तो लाख नखरे करती है।"

"चल रे सोना...छैलू, तू दूध लेकर आ।" शबनम ने सोना की उंगली पकड़ ली।

"नहीं लात हो गई है। मेली मम्मी दल जाएगी। मैं नहीं जाऊंगी।" सोना अपनी उंगली छुड़ा नाजबीबी की चारपाई के पास चली आई थी।

नाजबीबी का मन स्नेह से उमड़ आया था। सोना के इसी स्नेह-बंधन में तो वह कबसे जकड़ती चली जा रही थी, जिसे अब छुड़ा पाना असंभव-सा लग रहा था। उसने प्यार से सोना का गाल थपथपाया और पुचकारते हुए बोली—

"जा, थोड़ी देर घूम आ। मैं डरूंगी नहीं। गुरुजी हैं न।"

"गुलूजी, जब तक मैं न आऊं, आप मम्मी के पास लहिएगा।" सोना गुरुजी को हिदायत देते हुए शबनम के साथ चली गई। छैलू गिलास का दूध ले पीछे-पीछे निकल गया।

नाजबीवी अब तक निर्णय ले चुकी थी गुरुजी को सब कुछ बताने का, क्योंकि यह बात छिपने वाली नहीं थी। कोठरी में एकांत हो जाने पर उसने गुरुजी के पैर पर अपना हाथ रख दिया और फफक पडी थी—

"गुरुजी, आपसे मैं नहीं छिपा सकती। मैंने बेईमानी की है, लेकिन एक नेक

काम के लिए। मैं सोना को पढ़ाना चाह रही हूं।''

''पर इसमे बेईमानी क्या है, नाज? हम नहीं पढ़ पाते तो हमारी मजबूरी है, पर सोना तो ..'' अगले ही पल महताब गुरु किसी सोच में पड़ गए।

''सोना को हम स्कूल भेजेंगे तो बाहर लोग दस तरह के सवाल नही पूछेंगे? कहीं थाना-पुलिस...?'' गुरुजी के चेहरे पर डर की रेखाएं खिंच गईं थीं।

नाज भी डर गई थी, परंतु अगले ही पल उसने उस पर काबू पाते हुए कहा—

''पर क्या पुलिस के डर से सोना की जिंदगी चौपट कर दें हम...वैसे ही हम लोगों के पास रहकर...नाज ने बात अधूरी छोड़ दी।

''ठीक है। जैसा तू सोच, कर। सोना तो हम सबको प्यारी हो गई है।''

''मैं कल एक स्कूल में बात करने गई थी।''

''अकेले या गिरिया के साथ?''

''वो क्या जाएगा मेरे साथ? रिक्शे में कभी-कभार साथ बैठकर चलता है तो अपने मुंह पर गमछा लपेट लेता है, ताकि कोई पहचान न ले...वो स्कूल जाएगा?...अरे, मैं अकेली गई थी।'' नाजबीबी ने स्पष्ट किया।

''अच्छा, तो क्या हुआ? कोई दिक्कत तो नहीं होगी?'' गुरुजी उत्सुक हो उठे।

नाजबीबी का चेहरा कुछ उतर गया था।

''कम से कम तीन बड़ा वाला बड़मा[1] लगेगा।...मास्टरनी कह रही थी कि किताब, फीस, ड्रेस वगैरह...इसीलिए हमने ये बेईमानी की गुरुजी।'' नाजबीबी ने अपना चेहरा झुका लिया था।

महताब गुरु की भौहों में बल पड़ गए थे—कहीं नाजबीबी ने कोई चोरी-डकैती तो नहीं की?

नाजबीबी सिर झुकाए अपराधी भाव से बताए जा रही थी—

''ये चोट गुरुजी.. ये चोट...खैरगल्ले[2] के कारण लगी.. सोच रही थी कि आपको हिस्सा देने आएंगे वो तो बता ही देंगे...। लेकिन मैं क्या करती गुरुजी...सोचा, अकरम को लेकर चुपचाप निकल जाऊं...अडियल ठपरवाला[3] है, खुश हो गया तो सोना की पढ़ाई शुरू हो जाएगी।...पर उसी समय पनके[4] आ गए और हमसे मारपीट करने लगे...अकरम की डामरी[5] तोड़ डाली। मुझे मारा-पीटा...ये चोट उसी से...मैंने झूठ बोला था कि आते समय सड़क पर किसी से लडकर गिर गई थी। गुरुजी, हमको माफ कर दीजिए। हम दगा करना नहीं चाहते

---

1 एक हजार रुपया, 2. हिंजड़ों के बंटे क्षेत्र में अनधिकार प्रवेश करके नाचने-गाने वाले, 3. मोटा आसामी, 4. अपने क्षेत्र में गाने-बजाने वाले हिंजड़े, 5. ढोलक

थे, पर...'' नाजबीबी कराहते हुए उठकर बैठ गई थी और गुरुजी के कंधे पर सिर रखकर रोने लगी थी।

महताब गुरु दार्शनिक अंदाज में बोले—

''देखो नाज, हम इनसानों को कोसते हैं कि उनको बहुत हवस है। पैसे-रुपये के लिए वो क्या-क्या कर डालते हैं। पर एक नन्हीं-सी सोना के कारण तुझे भी क्या करना पड़ रहा है.. मैं फिर कहती हूं, सोना के माया-मोह में मत फस। तू हिंजड़ी है, हिंजड़ी! चोरी-बेईमानी से बच-बचाकर अपना अगला जनम तो सुधार ले। यह जनम तो जैसा मिला, देख रही है। हम हिंजड़ों को ये सब पाप नही करना चाहिए। अबसे भी सोना को कहीं...''

महताब गुरु अपनी बात पूरी नहीं कर पाए थे। सोना को अपने से दूर रखने की बात वे भी नहीं सोच पा रहे थे। नाज के धंधे पर निकल जाने के बाद सोना दिन-भर उन्हीं के पास रहती थी। महताब गुरु भी कभी उसके लिए तितलिया पकड़ते तो कभी मछली देखने के लिए वरुणा के किनारे की ओर दौड़ती सोना के पीछे भागते। आज तक सोना इस बस्ती से बाहर नहीं निकली थी और अब उसके दूर जाने की बात सोचकर भी महताब गुरु बेचैन हो उठे।

''तेरा वो गिरिया, रामसरन भी नहीं आ रहा है आजकल। छोड़ दिया क्या?''

''नहीं, उसकी बदली हो गई है गैर जिला। दो-तीन महीने हो गए। कहता था, जल्दी ही फिर लौट आऊंगा।'' नाजबीबी ने सिर झुकाए जवाब दिया।

''फिर भी कुछ पैसा-वैसा की मदद तो करते रहना चाहिए।''

''अरे, मैं क्या सचमुच उसकी निहारन हूं। बस जी बहलाने के लिए...वहा कोई और कौती बना लिया होगा।'' नाजबीबी के चेहरे पर एक फीकी हँसी आई थी।

''पर कुछ उसूल तो होना चाहिए। अल्लाह को क्या मुंह दिखाएंगे?''

गुरुजी को गुस्से में देख नाज ने सांत्वना दी—

''जाने दीजिए, गुरुजी! सोना की पढ़ाई फिर कभी कमाई होने पर करवाऊंगी।''

''दो दिन का खेल है क्या पढ़ाई, जो आज नहीं, दो दिन बाद खेलेगे? सोना पढ़ेगी और इसी साल पढ़ेगी। बेसरा माता के लिए जो हिस्सा रखा है, उसमे से कल मैं तुम्हें दूंगी। कमाई होने पर उसमें फिर डाल देंगे उतना। तू चिंता न कर। बस, ठीक हो जा, लेकिन फिर खैरगल्ले न करना।''

और महताब गुरु उठकर खड़े हो गए थे। नाजबीबी के चेहरे पर खुशी की लहर दौड़ गई थी।

छः

रात गहरा रही थी। कृष्ण पक्ष की अंधेरी रात घटाटोप बादलों के कारण और काली लग रही थी। शाम तक हुई बरसात के कारण दरवाजे के बाहर कीचड़ हो गया था। रेंवा, झींगुर और मेंढकों की मिली-जुली आवाज से वातावरण का सन्नाटा भग हो रहा था। कभी-कभी वरुणा पुल के ऊपर से गुजरते वाहनों का शोर भी अंधेरे को भेदकर विलीन हो जाता। नाजबीबी सोना के ऊपर हाथ रखे लेटी थी। उसे नीद नहीं आ रही थी। सोना शबनम के यहां से चावल-दाल खाकर आई थी, इसलिए बिना कुछ और खाए उसकी चारपाई पर आकर लेट गई थी। रोज की तरह आज भी वह बुचरा माता के मुर्गे की कहानी सुनते-सुनते सो गई। कभी-कभी नाज अपने बचपन की कुछ कहानियां भी सोना को सुनाती, पर वे कहानिया या तो आधी-अधूरी होतीं या फिर उनके बारे में सोना की जिज्ञासा के भय से वह उसे नहीं सुनाती।

एक दिन वह सोना को रात में कहानी सुना रही थी—एक राजा के तीन रानियां थीं और उनको चार बेटे थे...' तो सोना पूछ बैठी—

"मम्मी, तुम भी लानी हो?"

"हां, बेटा।" नाजबीबी ने दबी जुबान से कहा।

"फिल तुम्हाले बेटे क्यों नहीं?" नाजबीबी को धक्का लगा था। परंतु अगले ही पल उसने संभाल लिया—

"तुम हो न मेरा बेटा।"

"अच्छा, मेली तलह होते हैं बेटे?"

"हां।" कहते हुए नाजबीबी ने बात बदली थी। सोना के अटपटे सवालो का जवाब देने में कभी-कभी वह परेशान हो उठती। इसीलिए अब वह ज्यादातर पशु-पक्षियों की कहानियां सुनाया करती।

आज भी मुर्गे की कहानी सुनते-सुनते सोना सो गई थी। नाजबीबी ने फूक मारकर आले में जल रही ढिबरी को बुझा दिया और चारपाई के पास वाली खिडकी खोलकर लेट गई थी। हवा एकदम नहीं चल रही थी और बिजली न होने के कारण कोने में रखा काला पंखा भी नहीं हिल रहा था। वैसे भी पंखे की

खडखड़ाहट में वह सो नहीं पाती। उसने हाथ वाला बेना[1] उठा लिया और धीरे-धीरे हांकने लगी। पूरी बस्ती में सन्नाटा छा गया था। वैसे भी हिंजड़ा बस्ती मे अधेरा होने के कुछ देर बाद ही सभी खा-पीकर सो जाते है और सबेरे नौ-दस बजे तक सोते रहते हैं। कभी-कभार कोई सिनेमा--सर्कस या कहीं काम से चला जाए तो रात में भले ही देर हो जाए।

कल सोना का स्कूल में नाम लिखवाने के प्रश्न पर नाजबीबी के मन मे काफी उथल-पुथल मची हुई थी। कई सवाल रह-रहकर पानी के बुलबुले की तरह उठते और बिना समाधान के मिट जाते। परसों जब वह बच्चों के उस प्राइवेट स्कूल में जानकारी लेने प्रिंसिपल के कमरे में जा रही थी तो गेट पर ही दरबान ने कितना गुर्राकर मना किया था—

''ऐ! तुम यहां कहां?''

उसने भी रुखाई से जवाब दे दिया था—

''पढ़ाई के लिए भी रोक-टोक है क्या, बाबू? मैडमजी से कुछ बात करने जा रही हूं।'' फिर भी दरबान ने उसे बाहर ही रोक दिया और स्वयं अंदर पूछने चला गया था। वहीं खड़ी-खड़ी वह पूरी बिल्डिंग पर नजर दौड़ा रही थी। छोटे-छोटे बच्चे सफेद यूनिफार्म में चूजों की तरह इधर-उधर फुदक रहे थे। नाजबीबी को अपना स्कूल याद आ गया था। उसके यहां लाल रंग की स्कर्ट या समोज और सफेद सलवार या शर्ट पहनते थे। अपनी सोना भी जब यूनिफार्म पहनेगी तो इन्हीं बच्चों में घुल-मिल जाएगी। सोचकर नाजबीबी के चेहरे पर मुसकराहट दौड़ गई थी। उसने लोहे के बड़े गेट के बीचोबीच खुले उस छोटे-से गेट की चौखट पर एक पांव टिका दिया और खेलते हुए बच्चों को ध्यान से देखने लगी थी।

''ऐ नितिन, उधर मत जाओ। वो देखो, हिंजड़ा! मेरी मम्मी कहती है कि इनके पास मत जाना, नहीं तो पकड़ ले जाएंगे।''

नाज के कानों में किसी बच्चे की भयभीत आवाज सुनाई दी। एक आठ वर्ष तक का बच्चा अपने से छोटे बच्चों को समझा रहा था। नाजबीबी को दुख हुआ। उसने बच्चे को पुचकारते हुए कहा—

''ना बेटा, ऐसा नहीं कहते। हम भी तो तुम्हारी तरह ही...''

उसकी बात को अनसुना करते हुए बच्चे सरपट भागने लगे थे।

''चलो, मैडमजी बुला रही हैं।''

दरबान की आवाज पर नाजबीबी चौंक उठी थी। दरबान उसे नीचे से ऊपर तक घूर रहा था। उसे अटपटा लगा।

---

1 गेहूं की नरई से बना पंखा।

"क्या दीदे फाड़कर देख रहे हो, छिबरी की औलाद! तुम्हारी निहारन से बुरी लगती हूं क्या?" और वह गुस्से में पैर पटकती प्रिंसिपल के कमरे की ओर बढ़ गई।

दरबान जोर से हँस पड़ा। कई अध्यापिकाएं बरामदे में खड़ी होकर आपस में उसे दिखा-दिखाकर हँस रही थीं। कुछ बच्चे भी कौतूहल और विस्मय से भरे उसके पीछे-पीछे चल रहे थे। बरामदे में से गुजरते हुए एक अध्यापिका की आवाज आई थी—

"आज शायद विद्यालय की छठी मना रही हैं बड़ी बहनजी।" और एक सम्मिलित ठहाका गूंजा था।

नाजबीबी तिलमिला उठी थी। पीछे पलटकर उसने जवाब दिया—

"जब हम धंधे पर नहीं होते, बहनजी, तो इस तरह का मजाक हमारे सीने में गोली की तरह लगता है। हम आसमान से तो नहीं टपके हैं न? आप ही की तरह किसी मां की कोख से जन्मे हैं। हाड़-मांस का शरीर लिए। हमें तो अपने-आप दुःख होता है इस जीवन पर। आप लोग भी दुःखी कर देते हो।"

अध्यापिकाएं खिसियाकर चुप हो गई थीं।

नाजबीबी ने प्रिंसिपल के कमरे का परदा हटा डरते हुए पूछा था—

"मालकिन, अंदर आ जाएं?" और न चाहते हुए भी उसके हाथ ताली की मुद्रा में उठ गए थे।

प्रिंसिपल के कमरे में बैठे क्लर्क और अध्यापिका की हँसी फूट पड़ी थी।

स्वयं नाजबीबी को भी अपनी आदत पर आज क्षोभ हो रहा था। उसने सफाई देते हुए कहा—

"क्या करूं बहनजी, पेशा ऐसा है कि...अब ऐसा नहीं करूंगी।" और नाजबीबी कमरे के एक कोने में कुरसी पकड़कर खड़ी हो गई थी।

"क्या काम है?"

प्रिंसिपल की कड़क आवाज से वह थोड़ी देर के लिए सहम उठी, परंतु अगले ही पल बोल पड़ी—

"एक बच्ची का नाम लिखाना है, बहनजी।"

"क्या? आपकी बच्ची?" प्रिंसिपल की आवाज में आश्चर्य था।

"जी हां...जी नहीं...जी...अब हमारी ही समझ लीजिए। हमको भगवान ने कहां इस लायक बनाया कि...वो तो भगवान ने भेज दिया उसे...उसको पढ़ाना चाह रही हूं।"

"ठीक है, कुल मिलाकर तीन-चार हजार रुपये लगेंगे। ले आना बच्ची

को।" प्रिंसिपल ने उसे ध्यान से देखते हुए कहा।

नाजबीबी ने खुशी के मारे झुककर मेज के नीचे प्रिंसिपल का पैर छू लिया और बाहर निकल आई थी। पीछे से एक हँसी का फौव्वारा उसे बिजली के झटके की तरह छूकर निकल गया था...

नाज बीबी ने करवट बदलकर सोना की ओर मुंह कर लिया था। सोना ने अपना एक पैर उसके ऊपर लाद दिया और कुछ देर कसमसाने के बाद पुनः सो गई थी। उसके काले घुंघराले बाल फैलकर गालों पर पसीने से चिपक गए थे। नाजबीबी ने एक हाथ से उसके बालों को हटाया था और मुंह से धीरे-धीरे फूक मारकर हवा करने लगी थी। उसे सोती हुई सोना पर बहुत प्यार आया। अंधेरे मे ही उसने उसके माथे पर एक स्नेह-भरा चुंबन जड़ दिया था। कैसे रहेगी यह स्कूल में? आज तक कभी इस बस्ती से बाहर पैर नहीं रखा। अगले ही पल दो-तीन विकराल प्रश्न अंधेरे में चोर की भांति मंडराने लगे।

स्कूल से आते समय नाजबीबी प्रवेश-फार्म ले आई थी। माता-पिता और जाति-धर्म के नाम पर वह क्या भरवाएगी? कहीं उसका भी मजाक न उड़ाएं लोग स्कूल मे? नन्ही-सी बच्ची है। क्या समझेगी बेचारी? रोने ही लगेगी। नाजबीबी ने प्यार से सोना के सिर पर हाथ फेरना शुरू कर दिया था।

एकाएक उसके समस्त प्रश्नों का जवाब मिल गया था— वह छैलू को पुरुष वेश में सोना का नाम लिखाने भेजेगी। उसको स्कूल के लोग नहीं पहचानते होंगे। मा के नाम की जगह वह अपना असली नाम 'नंदरानी' भरवा देगी। पिता का नाम कुछ भी...लेकिन...अच्छा, उसे स्वर्गवासी दिखा देगी। धर्म— हिंदू, जाति अपनी पुरानी वाली यानी सोना रघुवंशी। पर सोना को भी सिखाना होगा। मम्मी का नाम नन्दरानी, पूरा नाम सोना रघुवंशी। मां का पेशा...?

इतनी छोटी बच्चे से क्या पूछेंगे लोग? पूछेंगे भी तो सिखा देगी कि दुकान...पर कहां?...तो क्या बताएगी सोना?...फिर स्कूल भेजते ही झूठ बोलने की शिक्षा?...क्या बता दे कि वह हिंजड़ी के घर में पाली हुई...? नहीं, सोना की जिदगी चौपट हो जाएगी। उसकी जिंदगी बनाने के लिए झूठ जरूरी है, नहीं तो इसी बस्ती में नरक हो जाएगा उसका जीवन। फिर वही डामरी, नाच, जजमानी। नही...सोना रघुवंशी की मां नंदरानी, और नंदरानी एक खटाल पर गायों का गोबर उठाने, कंडे बनाकर बेचने का काम करती है...

और नाजबीबी सुबह की प्रतीक्षा में चैन की नींद सो गई थी।

सात

मानवी दैनिक अखबार के कार्यालय में बने अपने छोटे-से कक्ष में मेज पर झुकी कुछ लिख रही थी। वह उस अखबार के साप्ताहिक फीचर 'आधी शक्ति' की सपादक थी। महिलाओं की समस्याओं और उत्थान के लिए समर्पित मानवी का व्यक्तित्व पूरे शहर मे एक विशिष्ट पहचान रखता था। नए-नए चौंकाने वाले तथ्यों से भरे उसके फीचर पाठकों में बहुत लोकप्रिय थे। इस साप्ताहिक फीचर की पाठकीयता सबसे अधिक थी, क्योंकि सप्ताह-भर के अंदर जितने पत्र और फोन से जितनी प्रतिक्रियाएं इस कॉलम के लिए आती थीं, उतनी किसी और के लिए नहीं। स्वयं मानवी भी बड़ी तन्मयता के साथ इस कॉलम के लिए विषय-सामग्री जुटाती। दूर-दराज के क्षेत्रों में जाकर महिलाओं की समस्याएं सुनती। छोटे-से टेप पर रिकार्ड करके लाती और पुनः ऑफिस में सुनकर, उस पर अपनी टिप्पणी देते हुए, उन समस्याओं को कुछ इस तरह प्रस्तुत करती कि लोग पढने के लिए बाध्य हो जाते।

तीस वर्षीया मानवी के चेहरे पर हमेशा एक भोली मुसकराहट नाचती रहती, जो कभी-कभी सामने किसी सहकर्मी या चतुर्थ श्रेणी के बुजुर्ग कर्मचारी को देखकर अभिवादन करते समय फूटकर निश्छल हँसी का रूप ले लेती। अपने मृदु व्यवहार और सहज आचरण के कारण वह पूरे ऑफिस में आदर का पात्र थी। परतु व्यावसायिक ईर्ष्या रखने वाले कुछ सहकर्मी भी उसके साथ थे।

इस समय भी वह अपनी कुरसी पर बैठी कुछ लिख रही थी।

''बिटिया, यह प्रूफ।''

बुजुर्ग चौकीदार तारक ने कागज का एक पुलिंदा उसकी मेज पर रख दिया था। मानवी के कमरे में वह बिना पूछे साधिकार आ जाता था। मानवी भी उसे बहुत सम्मान देती थी।

''बाबा, आपको चाय पीने का मन नहीं कर रहा है क्या?'' मानवी ने कलम मेज पर रखते हुए दोनों हथेलियों को व्यायाम की मुद्रा में मोड़ते हुए कहा।

''बाहर चायवाले को कह आऊं क्या, बिटिया?'' तारक मानवी का आशय समझ गया था।

''आप भी पिएंगे, तब।''

"ठीक है, मैं भी पिऊंगा।" कहते हुए तारक निकल गया था।

मानवी उसे जाता हुआ देखती रही थी। यदि यह तारक महिला होता तो वह जरूर उसकी कहानी अपने फीचर में लिखती। चपरासी पद से एक विद्यालय से रिटायर होने के बाद तारक यहां विवशता मे चौकीदार की नौकरी कर रहा था। पत्नी को पक्षाघात था। वह बिस्तर पर पड़ी है। इकलौता बेटा अपना परिवार लेकर बबई में बस गया था। बहू सास-ससुर की सेवा और खर्च उठाने को तैयार नही थी। एक बार बेटे ने उन्हें अपने साथ रखने की जिद की तो बहू ने अपने ऊपर मिट्टी का तेल छिड़ककर आग लगा लेने की धमकी दी। डरकर बेटे ने मां-बाप को पुनः बनारस भेज दिया। बहू की धमकी से क्षुब्ध तारक ने भी वहां न जाने की कसम खा ली। पत्नी की दवा और भोजन आदि का खर्च पेंशन से पूरा न पडने के कारण उसे इस प्रेस में भी बारह सौ रुपये की नौकरी करनी पड़ रही थी। कुछ अतिरिक्त आमदनी से काम किसी तरह चल जाता है। पत्नी को खाना, दवा देकर आता है और फिर दोपहर में लंच के समय भी साइकिल से घर जाकर हाल-चाल ले आता है। मानवी से बहुत घुलमिल जाने पर एक दिन उसने अपनी सारी कहानी उसे बता दी थी। तभी से मानवी के मन में तारक के प्रति गहरी सहानुभूति रहती है।

एक दिन वह तारक की पत्नी को देखने उसके घर भी गई थी। निर्जीव-सा शरीर बिस्तर पर पड़ा था। आवाज अस्फुट-सी, मस्तिष्क भ्रमित-सा। तारक चादर ओढ़ाते फफक पड़ा था—

"देखो बिटिया, किस जनम का पाप काट रहे हैं हम? इसी को पार कर लेना चाह रहा हूं। इसकी सद्‌गति कर लूं तो अपने कहीं भी चला जाऊंगा। मुमुक्षु भवन या फिर किसी आश्रम में। मर जाऊंगा तो लोग गंगाजी में प्रवाहित तो कर ही आएंगे। पर इसके पहले यदि कुछ हो गया मुझे तो इसका क्या..." कहते-कहते तारक गमछा मुंह में दबाकर रोने लगा था।

मानवी ने सांत्वना दी—

"बाबा, ऐसा क्यों होगा?" पर अगले ही पल उसे लगा था कि वह किसी के मरने की ही सांत्वना दे रही है तो उसने बात बदल दी थी—

"ऐसा क्यों सोचते हो, बाबा? बेटा है आपका? उसे खबर कर दीजिए।"

तारक एकाएक बिफर पड़ा था।

"बिटिया, हमने पहले ही चिट्ठी लिखकर अपने बक्से में रख दिया है कि अगर मैं बुढ़िया से पहले मर जाऊं तो पुलिसवाले मेरी लाश को ले जाकर बहा आवें, पर मेरा बेटा मुझे छूने न पावे...जो जीने का साथी नहीं, उसे मरने का साथी

क्यों बनाऊं?

"मैडमजी, चाय..." चायवाला आ गया था। मानवी के सोचों का ताना-बाना बिखर गया था। एकांत होते ही मन कहां-कहां भटककर लौट आया है। कितना बड़ा कंप्यूटर है मस्तिष्क भी, जिसमें न जाने कितने चित्र सजीव रहते हैं और अवसर आते ही रिवाइन्ड हो सामने दृश्यमान हो उठते हैं।

"बाबा को चाय दिया, पप्पू?"

"हां, मैडमजी।" पप्पू ने चाय पुरवा में ढालते हुए जवाब दिया।

चाय पीते हुए मानवी ने डी.एम. के यहां फोन मिलाया था। सुबह से तीन बार मिला चुकी थी परंतु मीटिंग में होने के कारण उनसे मिलने का समय वह नहीं ले पा रही थी। नारी उद्धारगृह की लड़कियों का इंटरव्यू लेकर वह एक फीचर लिखना चाह रही थी। इस उद्देश्य से वह वहां की वार्डेन रीता देवी से मिलने भी गई थी, परंतु रीता देवी ने इंटरव्यू देने से मना कर दिया था—

"माफ कीजिएगा। समाज द्वारा ठुकराई इन लड़कियों को किसी और पचड़े में मैं नहीं डालना चाहती।"

"पर ठुकराई गई हैं या अपनी ही किसी गलती की सजा भुगत रही हैं, इस बारे में मैं उनसे जानकारी नहीं लूंगी, तब तक ऐसा कैसे माना जा सकता है कि वे समाज द्वारा ठुकराई गई या तिरस्कृत हैं...फिर मेरा भी काम आप ही का है—समाजसेवा।" मानवी ने अपने तर्क से रीता देवी को सहमत करना चाहा।

लेकिन रीता देवी ने बड़ी रुखाई से जवाब दे दिया—

"नहीं, मैं समाजसेवा अखबारों में प्रचार-प्रसार के लिए नहीं करती। आप जा सकती हैं।"

और हारकर मानवी लौट आई थी। उसी समय से प्रयत्न कर रही है—वह डी.एम. साहब से आदेशित-पत्र लेकर नारी उद्धारगृह जाना चाह रही थी ताकि रीता देवी इनकार न कर सकें।

"हैलो..."

......

"जी, पत्र लेकर आ जाऊं?...जी, बहुत-बहुत धन्यवाद।"

मानवी ने टेलीफोन रख दिया था। उसके चेहरे पर खुशी की लहर दौड़ गई थी। डी.एम. साहब ने स्वीकृति देने के लिए उसे कल का समय दे दिया था। चाय का खाली पुरवा खाली टोकरी में डाल वह अपने कक्ष में ही रखे कंप्यूटर पर पत्र टाइप करने बैठ गई थी।

"बिटिया, वो फीचर का प्रूफ जल्दी पढ़कर दे दो। शाहीजी को कल छुट्टी

जाना है ना, इसलिए उसे आज ही छापने के लिए दे जाएंगे।'' तारक ने आकर मानवी को सूचना दी थी।

''बस बाबा, दो लाइन का एक अर्जेंट लेटर निकाल रही हूं। इसी के बाद पढकर दे रही हूं।''

मानवी प्रार्थना-पत्र की अंतिम पंक्तियां टाइप करती-करती खड़ी हो गई थी। 'भवदीय' के नीचे अपना हस्ताक्षर करके उसने पत्र को एक लिफाफे में भर अपने पर्स में डाल लिया और प्रूफ का पुलिंदा उठा लिया। चार फुल कालम का प्रूफ वह ध्यानपूर्वक पढ़ने लगी थी। अपना ही लिखा मैटर दस दिन बाद पुनः पढने पर नया-सा लग रहा था—

आकाश की चाहत

पुरुषप्रधान इस भारतीय समाज में नारियों को भी पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त हैं। लेकिन वे अपने अधिकारों का उपयोग कितनी स्वतंत्रतापूर्वक कर सकता है, यह एक जलता हुआ प्रश्न है। अधिकार के इस मुद्दे को बिना कोई राजनीतिक या धार्मिक रंग दिए प्रस्तुत हैं कुछ स्वरूप नारी-शोषण के और उनके अपने अधिकारों की अनभिज्ञता अथवा वंचना के। सबसे पहले एक सात वर्षीय बच्ची, जिसे न अपने अधिकारों की बात पता है और न कर्तव्यों का बोध ही, परंतु सबसे बडी मानवीय क्रूरता की शिकार। नाम पूछने पर तुतलाते हुए बताया—'अनीता।'

भेटकर्ता : 'किस कक्षा में पढ़ती हो?'

अनीता : एक में। (तोतली भाषा में)

भेटकर्ता : (उसकी तोतली भाषा और समझ में न आने के कारण उसकी मा से मैं मुखतिब हुई 'क्या नाम है आपका?'

चिता : चिंता।

भेटकर्ता : (चिंता को लगा जैसे मैं उससे अनीता के साथ घटी घटना की जानकारी लेने पहुंची हूं। उसे अपने अधिकारों की जानकारी है अथवा नहीं, मेरे इस प्रश्न के पहले ही चिंता ने अनीता के साथ घटी घटना को दुहराना शुरू कर दिया। मेरे कान सुन रहे थे और मैं अवाक्-सी कभी नन्ही अनीता और कभी उसकी मां को देखे जा रही थी।)

चिता : वो हमारी बेटी को उठाकर, ले जाकर...गलत काम कर दिया...कुछ दूर, एक आधा कोस आगे ले गए। वहां पर बेहोश हो गई वो। तो जब छोड़कर चले गए,...जब उसको होश हुआ तो आई...तो आई, तो सभी लोग देखे तो कहे—क्या हुआ है लड़की को। तो ये बताई

कि माने कि मंगरू कक्का हमार संग ये काम कर दिए। एही पर सब लोग उसे उठाकर थाने पर ले आए। उहां लिखी-पढ़ी हुई, सब कुछ करके तब कबीरचौरा ले गए। कबीर चौरा से फिर थाने पर। फिर मान लो उहां पर कचहरी पर...कचहरी पर सब ई काम कुल भइल...मेडिकल वेडिकल बनाके...वो माना तो थोड़ा-सा बगली की तरफ फट गया था, वो वजह से बहुत खून-खून हो रहा था।

भेटकर्ता : (वह फुसफुसाकर बता रही थी मुझे। मेरा मन खिन्न हो उठा। इतनी छोटी बच्ची के साथ बलात्कार! शायद अशिक्षा और अज्ञानता ही इन अपराधों के मूल में है। यदि महिलाएं शिक्षित हो जाएं तो इस तरह के शोषण और अत्याचारों का खुलकर विरोध कर सकने का आत्मविश्वास उनमें आ जाए। शिक्षा के ऊपर करोड़ों रुपये खर्च करने वाले इस देश में नारी शिक्षा की स्थिति क्या है? मैंने संयुक्त शिक्षा निदेशक से पूछा तो उत्तर मिला—)

स शि.नि. : देखिए, इसे रिकार्ड न करें तो बताऊं कि सारी शिक्षा योजनाएं बस कागजों पर हैं। करोड़ों रुपये का हेर-फेर कागजों का पेट भरकर हो जाता है। मैं स्वयं क्षुब्ध हूं इस व्यवस्था से, पर क्या करूं? नौकरी करनी है, नौकरी बचानी है तो नाटक में भूमिका अदा करनी ही है। रही बात महिलाओं के मानवाधिकारों की, तो सच पूछा जाए तो ग्रामीण और मुस्लिम महिलाओं को तो इसका अर्थ भी नहीं मालूम। शिक्षित महिलाएं भी अपने कितने अधिकारों का उपयोग कर पाती हैं— यह भी सर्वेक्षण का विषय है।

भेटकर्ता : (पचहत्तर वर्षीया सरजूदेवी ने महिलाओं को न पढ़ाए जाने की बात को अपने जमाने से जोड़ते हुए सहज भाव से बताया—)

सरजूदेवी : पढ़ाई-लिखाई? लड़िकन के पढ़ावे, बिटियन के कइसे पढ़ावे?.. आ त कुल अधिकारै न बा।

भेटकर्ता : (वहीं आज के जमाने की बीस वर्षीया नजमा के लिए भी शिक्षा जैसे मूलभूत अधिकार से वंचित रहना उसकी एक सहज नियति है। उसके मन में इसके प्रति कोई विद्रोह की भावना भी नहीं।)

नजमा : जी, हम हिंदी तो नहीं पढ़े हैं। अरबी पढ़े हैं, क्योंकि हमारे गांव मे मुसलमान लड़कियों को हिंदी नहीं पढ़ाया जाता था, इसलिए हमारे अब्बू भी नहीं पढ़ाए।

भेटकर्ता : (क्या उसे अपने अन्य अधिकारों की बात ज्ञात है? पूछने पर उसने

वड भोलेपन से बताया–)
हमारे आदमी जो ला देते हैं, तो हम खा लेते हैं, पहन लेते हैं। अब इसके आगे जानने की कोई जरूरत ही नहीं।
(एक और जहां हमारे समाज में चिंता, अनीता, सरजू, नजमा जेसी शोपित, प्रताड़ित, अपने अधिकारों से वंचित और अनभिज्ञ, अशिक्षित महिलाओं का एक बड़ा समूह है, वहीं ऐसी शिक्षित महिलाएं भी कम नहीं जो अपने समाता के अधिकार के लिए प्रयासरत हैं ओर येन-केन-प्रकारेण अपनी दूसरी आधी दुनिया यानी पुरुषों के साथ कदम से कदम मिलाकर चलने और अपना अस्तित्व प्रमाणित करने का जी-तोड़ प्रयास कर रही हैं। परंतु उनके दिलों में भी कोई फास हे, कोई छटपटाहट है।)
मै एक एडवोकेट हूं यहां दीवानी में। देखिए, समानता का दर्जा दिया जाना तो एक कहने की बात है। वैसे ये दर्जा हासिल करने के लिए महिलाओं को स्वयं आगे आना होगा। संघर्ष करना होगा।
(धर्म से नहीं, बल्कि धर्मगुरुओं से डरते हुए मैंने दबी जुबान से मुस्लिम महिलाओं की स्थिति के बारे में आशमा बेगम से पूछा।)
बस उनके बारे में यही कहेंगे कि मुस्लिम महिलाओं को भी शिक्षित करना होगा। परदे जैसी जो प्रथा है उसे खत्म करना होगा, ताकि वे भी आगे बढ़ सकें। बहुत-सी ऐसी लेडीज हैं जिनके अंदर क्षमता है, लेकिन वे परदे की वजह से बाहर नहीं आ सकतीं। और दूसरे, तलाक प्रथा में भी कुछ परिवर्तन होना चाहिए। मतलब, इसको समय के हिसाब से बदलना चाहिए। इस तरह न हो कि तीन बार 'तलाक' कहकर उसे छोड़ दिया जाए और वे खाने-खर्चे के लिए...अगर पढ़ी लिखी नहीं हैं तो...दूसरे का चौका-बर्तन करें...उन्हे छोटे-छोटे काम करने पड़ें। अगर पढ़ी-लिखी होगी तो अपनी जिंदगी सवार सकेगी। नहीं तो परदे में रहने वाली अशिक्षित मुस्लिम महिला कैसे जान सकेगी कि उसके अधिकार क्या हैं?
पुरुषप्रधान इस समाज में अपने अस्तित्व और अस्मिता के लिए सघर्ष करती नारी के साथ उसके पुरुष सहकर्मियों का व्यवहार कैसा होता है?
अब क्या बताया जाए? हमारे अधिवक्ता भाई बैठे हैं...अब हम क्या बोल सकते हैं? (हँसी)

भेंटकर्ता : (आशमा बेगम की हँसी कुछ न कहते हुए भी बहुत कुछ कह गई। परंतु पास ही बैठी दूसरी महिला अधिवक्ता नीलू वर्मा बोल उठीं—)

नीलू : यहां कभी-कभी दो-अर्थी बातें बोली जाती हैं हमारे सहकर्मियों द्वारा। एक ओर, वो महिला को पिंच करता है, दूसरी ओर, उसका मजाक उड़ाया जाता है। ऐसी बहुत-सी समस्याएं हमारे सामने आती हैं। कुछ आपबीती भी जोड़कर, मानवीजी, लिख दीजिएगा अपने फीचर में।

भेंटकर्ता : आप तो मानवाधिकारों की वकालत भी करती होंगी?

नीलू : मानवाधिकार अभी पेपर्स तक ही हैं। आप यह समझने की भूल कर रही हैं कि वो नागरिकों तक आ गए हैं।

भेंटकर्ता : (समाज में कानून और व्यवस्था लागू करने का गुरुतर भार पुलिस विभाग के कंधों पर है। दूसरों को सुरक्षा प्रदान करने का कर्त्तव्य-निर्वाह करती, इस विभाग की एक महिला पुलिसकर्मी से जब मैंने कुछ जानना चाहा तो उन्होंने अपने नाम न लिखने की शर्त ही पर कुछ बताना स्वीकार किया।)

म.पुलिस : ऐसे तो पुलिस डिपार्टमेंट बदनाम है ही। लेकिन क्या करें? आदमी मजबूरी में पुलिस में नौकरी करता है। महिलाओं का बहुत शोषण है यहां। यूं कह लीजिए कि वे न तो परिवार की रह जाती हैं, न नौकरी की। न पुरुष बन पाती हैं, न उनमें महिलापन ही बाकी रहता है। अपने से बड़े अधिकारी के गलत आचरण की शिकायत आप उसी से कैसे करेंगे? उससे बड़े वाले सुनेंगे नहीं। किसी न किसी बहाने परेशान कर देंगे। लाइन हाजिर कर देंगे। दस उपाय हैं परेशान करने के। जीप में सबके साथ ही बैठकर कहीं दबिश पर जाना है, तो ऊटपटांग बातें... हरकतें शुरू हो जाएंगी। आप किस-किससे झगड़ा करती फिरेंगी? हारकर महिला इन सब बातों की आदी हो जाएगी। परिवार, बच्चे— सब असंतुष्ट। अपना भी मन दुखी। हां इस विभाग में ऊंचे पद पर हो महिला, तब शायद ठीक हो। लेकिन नीचे वाली महिलाएं तो बहुत ही दयनीय हालत में हैं इस डिपार्टमेंट में। पुरुष मजाक उड़ाते हैं कि हम दौड़ाकर चोर तो पकड़ नहीं सकते, एनकाउंटर क्या करेंगे? सही बात भी है। भगवान् ने हमें वो शारीरिक ताकत भी नहीं दी...और हमारे देश के पुरुषों की मानसिकता

भी कुछ एसी ह।

भेटकर्ता : (किसी देश, प्रांत या क्षेत्र की जनभावना के प्रतीक होते है वहां के जन-प्रतिनिधि। इस क्षेत्र के जन-प्रतिनिधि श्री मन्नाबाबू महिलाओं के ऊपर लगे सामाजिक प्रतिबंध को स्वीकार तो करते हैं, लेकिन उन्हें एकदम समाप्त कर देना भारतीय सामजिक परिवेश के लिए घातक मानते हैं। पूछने पर उन्होंने बताया—)

मन्नाबाबू : हम हिंदुस्तान के लोग हैं। हम सामाजिक परंपरा को भी ढोते हैं, अत: यह जानते हुए भी कि हम उनके अधिकारों का हनन कर रहे हैं, उनकी नींव या उनकी सोच को जब तक हम मजबूत नहीं करेंगे, ऊंचा नहीं उठाएंगे, तब तक उनको स्वतंत्रता प्रदान करना एक नीति से बेईमानी होगी।

उपसंहार

आखिर कैसे होगी नारीमात्र की सोच ऊंची? अशिक्षा के अंधेरे में रहते हुए यह संभव है क्या? सह-अस्तित्व को स्वीकार किए बिना उन्हें उनका अधिकार मिल पाना आसान है क्या? आजाद देश की इन प्रतिबंधित नारियों को किस तरह मिल सकेगा उन्मुक्त आकाश, जहां इनकी महत्त्वाकांक्षाओं का पंछी उडान भर सकेगा? कौन देगा आकाश?

प्रस्तुति : मानवी

मानवी ने प्रूफ पढ़कर मेज के एक कोने पर रखी कालबेल दबा दी थी। तारक उपस्थित हुआ—

"हां बिटिया, हो गया?"

"हां, बाबा। इसे शाहीजी को दे दीजिए। कह दीजिएगा—जरा सावधानी से, नही तो अर्थ का अनर्थ हो जाएगा। एक-एक व्यक्ति का इंटरव्यू एक-एक ज्वालामुखी है। जरा-सी लापरवाही से फट पड़ेगा।" मानवी ने हँसते हुए प्रूफ का पुलिदा तारक को पकड़ा दिया था। फिर अलमारी में से छोटा वाला टेप और एक खाली कैसेट निकाला और उसे पर्स में रख लिया। सभी साक्षात्कारों का रिकार्डेड प्रमाण वह अवश्य रखती थी, ताकि बाद में किसी विवाद पर प्रस्तुत कर सके। उसने डी.एम. वाला पत्र एक बार पुनः देखा और उसे भी पर्स में सुरक्षित रख लिया। कल डी.एम. से आदेश लेती हुई वह सीधे नारी उद्धारगृह निकल जाएगी।

आठ

आज सोना का स्कूल जाने का पहला दिन था। नाजबीबी सुबह से ही उठकर उसकी तैयारी कर रही थी। कल रात में ही छैलू को भेजकर वह सोना की ड्रेस, किताबें, बैग, टिफिन वगैरह मंगवा चुकी थी। इस समय जल्दी-जल्दी वह सोना के लिए टिफिन और खाना तैयार कर रही थी। बहुत दिनों बाद तवे पर पराठा सेकते हुए उसे अपनी मम्मी याद आ गई थीं। उसे स्कूल भेजते समय वे भी ऐसे ही गरम-गरम पराठे उसके टिफिन में रखती थीं। नाजबीबी को कड़े-कड़े पराठे के साथ आलू की भुजिया सब्जी बहुत पसंद थी। वह मम्मी से पराठों को तवे पर सेंककर कड़ा कर देने की जिद करती। मम्मी उसकी हर जिद पूरी करती।

आज सोना के लिए ऐसे ही पराठे बनाते समय उसे मम्मी की याद आ गई थी। उसकी आंखों से आंसू बह निकले। नियति ने उसे कहां से कहां ला पटका। कितना छिपाकर रखती थी उसे मम्मी लोगों की निगाह से। पहले तो स्कूल भेजने को तैयार ही नहीं थीं। परंतु पड़ोसियों के टोकने पर उन्होंने उसका नाम राधारमण बालिका विद्यालय में कक्षा छः में लिखवा दिया था। कक्षा पांच तक वह फिरोजाबाद में ही पढ़ी थी। पापा सेना में मेजर थे। महीने-दो महीने पर छुट्टी लेकर गाव आते थे। उसके जन्म पर फूट-फूटकर रोए थे। दादी ने सबका मुंह बंद करा दिया था। मम्मी बताती थी कि हिंजड़ों के डर से दादी ने मम्मी को उसके जन्म के दूसरे दिन ही नानी के यहां भेज दिया था, ताकि किसी को पता न चले। हिंजड़े आए थे तो गा-बजाकर नेग लेकर चले गए थे। दादी की सांस में सांस आई थी। बडे भैया नंदन और दीदी नंदिनी उस समय क्रमशः सात और पांच वर्ष के रहे होंगे। उन्हें भी कुछ नहीं बताया गया था।

चार-पांच वर्ष मम्मी की कड़ी सुरक्षा में बीत गए थे। पहली बार जब उसे गाव के प्राइमरी स्कूल में भर्ती कराया गया तो मम्मी की एक ही हिदायत थी—

''छोटे बाहर[1] या बड़े बाहर[2] किसी के साथ मत जाना। अपनी पढ़ाई करके सीधे घर।'' वह मम्मी की विवशताओं से अनभिज्ञ उनके आदेश का अक्षरशः पालन करने का प्रयास करती। परंतु उस दिन का दृश्य उसे आज भी ज्यों का

---

1 लघुशंका, 2. शौच

त्यो याद ह।

वह कक्षा तीन में पहुंच चुकी थी। उस दिन कक्षा में उसे बहुत तेज लघुशंका की अनुभूति हो रही थी। कक्षा की अध्यापिका से वह दो बार अपनी सबसे छोटी उंगली (कनिष्ठा) उठा-उठाकर छोटे बाहर जाने की आज्ञा मांग चुकी थी, परंतु उस दिन सारे बच्चों पर उखड़ी हुई बहनजी ने उसे दोनों बार डांटकर बैठा दिया था। बगल में बैठी दूसरी लड़की ने जब बहनजी से टाटपट्टी भीगी होने की शिकायत की तो सबकी निगाहें जाकर नंदरानी पर अटक गई थीं। और उसी दिन से शुरू हो गई थी कानाफूसी उसके अंग-प्रत्यंग के बारे में।

दादी की मृत्यु के बाद वहां की जमीन-जायदाद बेचकर पापा ने कानपुर मे एक मकान ले लिया। शायद नंदरानी से बढ़कर दोनों बड़े बच्चों के भविष्य की चिंता थी। नंदरानी का भी नाम कक्षा छः में दूसरे विद्यालय में लिखवा दिया गया। शायद इस कारण कि किसी तरह की बात खुलने पर भी इन दोनों बच्चो के भविष्य के ऊपर कोई कुप्रभाव न पड़े। मां दिन-रात बढ़ती हुई नंदरानी के डील-डौल को देखकर चिंतित होतीं। चुपके-चुपके एकांत मे उन्हें कई बार रोते देख स्वयं नंदरानी ने भी ढाढ़स बंधाया था। अब तक उसे अपनी देह के साथ विधाता का क्रूर मजाक थोड़ा-थोड़ा समझ में आने लगा था, परंतु मम्मी-पापा और भाई-बहनों की दुलार-भरी सुरक्षा के बीच उसे अपने भविष्य के प्रति जरा भी चिता नहीं थी। मम्मी को ढाढ़स बंधाते हुए वह अकसर कहती—

''चिंता क्यों करती हो, मम्मी? मैं पढ़-लिखकर डॉक्टर बनूंगी और तुम्हारी तथा पापा की सेवा करूंगी। जरूरी तो नहीं कि सभी लड़कियों की शादी ही हो। मेरी सुजाता मैडम को देखो। पचास वर्ष की होंगी, पर आज तक विवाह नही किया। मैं भी नहीं करूंगी। बाकी तो सब ठीक ही है न?'' वह मम्मी की गोद मे सिर रखकर लेट जाती और मम्मी उसे दुलार से निहारने लगतीं।

परंतु 'बाकी' सब ठीक नहीं था। कक्षा आठ में पहुंचते-पहुंचते उसके अन्य स्त्रियोचित अंगों के उभार और विकास के साथ ही चेहरे पर श्यामवर्ण रोएं भी उभरने लगे थे। सब कुछ छिपाकर सामान्य जीवन जी सकने की उसकी और मम्मी-पापा की कल्पना चकनाचूर होने लगी थी। किसी तरह कक्षा आठ तक की पढाई पूरी कर पाई थी कि एक दिन पापा ने दुःखी मन से कहा था—

''बेटा नंदरानी, हाई स्कूल का प्राइवेट फार्म भर दो।''

''पर पापा साइंस का प्रैक्टिकल घर में कैसे होगा?'' वह पापा के निर्णय से किंचित क्षुब्ध हुई थी।

''देखो बेटा, कुछ ऐसी मजबूरियां हैं कि...''

"तो मैं क्या, करूं पापा? उन मजबूरियों के कारण मेरा गला काट दग आप?"

पापा चुप थे।

"मैं डॉक्टर कैसे बनूंगी? घर में?" नंदरानी नाराजगी से पूछ रही थी।

मम्मी का कलेजा उमड़ आया था--

"बेटी, तेरे पापा इस समय परेशान हैं। और परेशान मत कर। मैं अगले साल फिर तेरा नाम लिखवा दूंगी।"

पापा ने आश्चर्य से मम्मी की ओर देखा। उनकी दृष्टि में एक सवाल उमड़-घुमड़ रहा था। मम्मी ने उन्हें अपनी आंखों से चुप रहने का संकेत करते हुए पुनः उसे समझाया--

"बेटी देखो, पापा की आमदनी कम है। फौज में ऐसा कोई धंधा तो है नहीं कि ऊपर की आमदनी हो। भइया भी अभी पढ़ रहा है। नंदिनी की शादी कर देना चाह रहे हैं तेरे पापा, ताकि तुझे और भइया को निश्चित होकर पढ़ा सकें। नंदिनी के बाद तुम ही दोनों रहोगे न मेरे पास? फिर मैं सारी जिम्मेदारी उठा लूंगी।"

पापा सिर नीचे किए बैठे थे। नंदरानी समझ रही थी कि इस समय पापा की आंखों में आंसू भरे होंगे। पापा इसी तरह सबसे छिपाकर रोते हैं। बाद में उनकी लाल-लाल आंखों से लोग समझ जाते हैं। दादी की मृत्यु के बाद भी वे ऐसे ही सिर नीचे किए घंटों बैठे रहते थे।

उसने दबे स्वर में अपना नाम कटवा देने की स्वीकृति दे दी थी और छत पर जाकर, चटाई बिछाकर लेट गई थी। आकाश का सूनापन धीरे-धीरे उसकी खुली आंखों में से होकर हृदय में उतरने लगा था।

"मम्मीऽऽ!"

सोना की आवाज सुनकर नाज बीबी के अतीत की डोर हाथ से छूट गई और वह वर्तमान में आ गई थी। पीड़ा का घनत्व उसके चेहरे पर गहरा गया था। जल्दी से सोना का टिफिन बंद करते हुए वह उसकी चारपाई के पास आ गई।

"उठ सोना, आज तुम्हें स्कूल जाना है न? देख ये तेरा टिफिन...खरगोश के मुंहवाला।" उसने खरगोश के चेहरे के आकारवाला प्लास्टिक का टिफिन बॉक्स उठाकर सोना को रिझाया।

"ये क्या होता है, मम्मी, टिफिन?" सोना ने टिफिन को अपनी तर्जनी से छूते हुए कहा।

"इसमें खाना रखा जाता है। जब वहां खाने की छुट्टी होगी तो खोलकर खा लेना।"

"छुट्टा? कैसा छुट्टा, मम्मी?" सोना के इस प्रश्न का जवाब थोड़ा कठिन था।

नाजबीबी ने बात बदलते हुए कहा, "चल, जल्दी से मुंह धोकर तैयार हो जा। दूध पीकर जा। वहां पढ़ेगी तो सब समझ में आ जाएगा।"

"नहीं, मैं नहीं जाऊंगी। तुम भी चलकल, पढ़ो तब।" सोना तुनक उठी।

नाजबीबी को उसके हठ पर हँसी आ गई।

"क्याऽऽऽ? अब मैं पढूंगी तुम्हारे साथ? बूढ़ी घोड़ी लाल लगाम।" कहकर वह ठठाकर हँस पड़ी।

"तब मैं भी नहीं पढूंगी, जाओ।" सोना ने अपने दोनों गालों को फुलाकर दूसरी तरफ मुंह फेर लिया। नाजबीबी को उसके ऊपर बहुत प्यार आया। उसने उसके दोनों गालों पर अपनी दोनों मुट्ठियों से धीरे से मारते हुए पिचका दिया। सोना के मुंह से एक 'फुड' की आवाज निकली और वह हँस पड़ी थी। उसे इस खेल में आनंद आने लगा। वह बार-बार अपने गाल फुलाती और नाजबीबी अपनी दोनों मुट्ठियों से धीरे से दबा देती। मुंह से निकली आवाज सुनकर सोना हँस पड़ती।

"क्या भाई, सोना तैयार हो गई क्या?" महताब गुरु ने उसकी कोठरी में घुसते ही पूछा था। कल ही बुचरा माता के खाते से उन्होंने रुपये निकालकर नाजबीबी को दे दिए थे।

"नहीं, गुरुजी! अभी देखिए, सोकर उठ रही है। इस तरह तो हो चुकी इसकी पढ़ाई।" नाजबीबी ने सोना को प्यार से देखते हुए बनावटी गुस्सा जताया।

"जा सोना बिटिया, जल्दी से मुंह धोकर तैयार हो जा।" महताब गुरु ने सोना का हाथ पकड़कर उठाते हुए कहा।

सोना कोठरी के बाहर लगे हैंडपाइप की ओर चली गई। पूरी बस्ती के लोग उसी हैंडपाइप का प्रयोग करते थे। सुबह-सुबह बस्ती के लोगों के सोते रहने के कारण हैंडपाइप पर भीड़ नहीं थी। केवल छैलू अपना हाथ-मुंह धो रहा था, क्योंकि नाजबीबी ने भोर में ही जाकर उसे जगा दिया था। उसे ही सोना को स्कूल छोड़ने जाना था। सोना के हैंडपाइप पर पहुंचते ही छैलू ने अपना लोटा एक तरफ रख दिया और एक हाथ से हैंडपाइप चलाकर दूसरे हाथ की तर्जनी से सोना का दांत मलकर पानी से कुल्ला कराने लगा।

नाजबीबी ने कोठरी के दरवाजे से देखा और वापस आकर गुरुजी के पास बैठ गई।

"कुछ सोचा? लोगों को क्या बताएगी सोना के बारे में...अब पहले जैसी बात तो नहीं कि मुंह-अंधेरे या शाम को एकाध दिन लेकर छिपते-छिपाते दवा-

दारू के लिए चले गए राज का आना जाना रहगा गला स स्कूल तक महताब गुरु के चेहरे पर चिंता की लकीरें खिंची थीं। उन्होंने अपनी मटमैली साड़ी का आंचल सामने से घुमाते हुए दूसरे कंधे पर डाल लिया था। हाथ की लाठी को चारपाई से टिका महताब गुरु चिंतित-से नाजबीबी की ओर देखने लगे।

"इसी चिंता में तो मैं भी रात से फंसी हूं, गुरुजी। क्या करूं, अभी तक नहीं समझ पाई।" नाजबीबी सरककर महताब गुरु के और पास आ गई।

"सच कहने पर कोई विश्वास नहीं करेगा और अगर कर भी ले तो लाख परेशानियां खड़ी हो जाएंगी। कहां से लाई? क्यों लाई? आज तक छिपाया क्यों? और न जाने क्या-क्या? और झूठ का ही सहारा लें तो आखिर क्या?" महताब गुरु चिंतित स्वर में बोले।

एकाएक नाजबीबी को युक्ति सूझी थी—

"झूठ ही बोलते हैं गलीवालों से।"

"क्या?"

"...कि सोना भी हिंजड़ी है, पर..." अगले ही पल वह स्वयं संकोच से चुप हो गई थी।

महताब गुरु ने उसे ध्यान से देखते हुए पूछा—

"और स्कूल में क्या कहा है?"

"मैं गई ही नहीं नाम लिखाने...छैलू को कड़े ताल[1] में भेज दिया सिखाकर। उसे कोई नहीं पहचानता।"

"क्या?"

"कि वह सोना का चाचा लगता है।"

"और मां-बाप?"

"बाप नहीं है। मर गया। मां खटाल पर काम करती है...इसके अलावा कोई दूसरा रास्ता...था भी तो नहीं।" नाजबीबी ने सिर नीचे झुकाकर गुरुजी को जवाब दिया।

"बाप साला होगा जिंदा कहीं न कहीं, या फिर वह मर ही गया होगा और मां..."

"देख नाज, तेरा यह झूठ कितने दिन चल पाएगा, मुझे तो शंका है। ...सोना अबोध बच्ची है। तेरे झूठ कब तक साथ दे पाएंगे..."

"मैंने उसे अच्छी तरह समझा दिया है, गुरुजी, कि जिस दिन वह किसी के सामने यह कहेगी कि उसकी मम्मी नाचती-गाती है दूसरों के घर, उसी दिन

1. पुरुष वेश में

मै मर जाऊंगी। वह डर के मारे नहीं बताएगी। रही गलीवालों की बात तो उसे रोज मैं सड़क तक जाऊंगी छोड़ने और ले आने। उसके आगे छैलू ले जाकर छोड आएगा स्कूल तक...कुछ साल इस स्कूल में पढ़ाकर फिर कहीं बाहर भेज दूगी पढने के लिए...हम लोगों की पापी परछाईं से दूर हो जाएगी...'' नाजबीबी भावुक हो उठी।

महताब गुरु ने पुनः समझाया—

''देख नाज, सोना को तुमने किसी तरह इतना बड़ा कर दिया बिना मां के। अब भलाई इसी में है कि उसे थाना-पुलिस के हवाले कर दे। वो लोग उसका कोई इनसानी इंतजाम कर देंगे। कब तक झूठ-सच बोलकर उसे अपने पास रखोगी? कभी न कभी तो दूर करना ही है उसे...माया-मोह बढ़ाने से क्या फायदा है?''

''पर गुरुजी, क्या वह रह पाएगी?'' नाजबीबी की बात अधूरी ही रह गई क्योंकि सोना मुंह धोकर आते ही नाजबीबी की साड़ी में पोंछने लगी थी।

महताब गुरु ने अपने मन को कड़ा करते हुए सोना से कहा—

''जा, आज से स्कूल में रहना। वहीं तुम्हारी दूसरी मम्मी मिलेंगी। अब इस मम्मी को छोड़।''

''क्यों छोड़ूं, यही मेली मम्मी है...दूसली मम्मी आएगी तो उसको डंडे से मालूंगी, बस भाग जाएगी।'' सोना कुछ गुस्से में महताब गुरु को देखते हुए बोली।

महताब गुरु ने उसे पुनः समझाया—

''सच है रे, सोना...मम्मी लोग बदलती रहती हैं। कभी एक मम्मी तो कभी दूसरी। जैसे तुम छोटी थीं तो तुम्हारी दूसरी मम्मी थी। अब ये है। इसके बाद स्कूल वाली मम्मी, फिर तुम्हारी शादी हो जाएगी तो दूल्हे की मम्मी। कभी-कभी हम लोगों से मिलने चली आना।'' महताब गुरु का गला भर्रा गया।

नाजबीबी को लगा जैसे उसका कलेजा कोई मुट्ठियों में लेकर मसल रहा हो। गुरुजी की बात को वह काट भी नहीं सकती थी, इसलिए चुप थी। पर आखो मे बादल उमड़-घुमड़ रहे थे और वह सोना की ओर इस उम्मीद में देखे जा रही थी कि वह चीखकर कहीं भी जाने से इनकार कर दे और महताब गुरु अपना निर्णय वापस ले लें।

सोना हतप्रभ-सी महताब गुरु की बातें सुनकर उन्हें एकटक देख रही थी। एकाएक वह बहुत मायूस होकर बोल पड़ी—

''जब वहां की मम्मी मुझे मालेगी तो तुम लोने लगोगी...तब क्या होगा?''

''नहीं बिटिया, वो प्यार से रखेगी तुम्हें। बहुत प्यार से।'' महताब गुरु ने

अपनी रुलाई किसी तरह रोककर सोना के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा।

नाजबीबी ने कसकर मुट्ठियां भींच लीं। उसे लगा जैसे उसकी मुट्ठी में रेत भरी हो और वह दबाव में भुरभुराकर गिरती जा रही हो।

''नहीं, तुम गंदी हो...मेली मम्मी यही लहेगी! मैं दूसली मम्मी नहीं लूंगी।'' कहते हुए सोना आकर नाजबीबी की गोद में बैठ गई थी।

नाजबीबी अपने को रोक नहीं पा रही थी, फूट-फूटकर रोने लगी। कल रात से ही सोना के दिन-भर स्कूल में रहने की बात सोच-सोचकर उसका मन अधीर हो रहा था, ऊपर से आज गुरुजी का प्रस्ताव...उसका हृदय छलनी-सा हो गया था।

नाजबीबी को रोते देख महताब गुरु भी स्वयं को रोक नहीं सके। रुंधे गले से उन्होंने नाज को सांत्वना-भरे स्वर में आदेश दिया—

''जाओ, सोना को स्कूल भेजने की तैयारी करो। मैं ही कहां चाहती हूं कि वह हम सबसे अलग हो। पर हम लोगों की दुनिया में...खैर, थोड़ी और सयानी हो जाएगी तो अपने-आप समझ जाएगी। जाओ नाज, जैसा सोचा है तुमने, वैसा ही करना। गलीवालों के सामने सोना को कभी टट्टी-पेशाब मत करने देना। जाओ, तैयार करो इसे। रोओ मत।'' महताब गुरु लाठी टेकते हुए खड़े हो गए।

सोना सहमी-सी बिफर पड़ी—

''हम नहीं जाएंगे इस्कूल-फिस्कूल।'' और वह नाजबीबी के सीने में मुंह छिपाकर सुबकने लगी।

नाज बीबी ने उसे सांत्वना दी—

''नहीं बेटी, हम तुम्हें वहां छोड़ेंगे नहीं। शाम को घर ले आएंगे। छैलू कक्का रहेंगे वहां। तू उन्हीं के साथ चली आना।''

''पहले इनको भगाओ हमाले घल से!'' सोना ने महताब गुरु की ओर इशारा किया। वह अभी भी शंकित थी।

महताब गुरु को सोना की दृष्टि से गिरना अच्छा नहीं लग रहा था। उन्होंने लाठी को पुनः चारपाई पर टिका दिया और सोना के पास ही जमीन पर बैठकर उसके बालों में हाथ फिराते हुए बोले—

''नहीं रे बिटिया, हम तो ऐसे ही तुझे चिढ़ा रहे थे। हम क्यों भेजेंगे तुझे दूसरी मम्मी के पास? तू हमारे पास ही रहेगी। पढ़-लिखकर बड़ी अफसर बनेगी। हम लोगों का दुःख दूर करेगी। मेरी बिटिया...'' महताब गुरु ने झुककर सोना का माथा चूम लिया।

सोना धीरे-धीरे सामान्य हो रही थी। नाजबीबी का भी मन थोड़ा हलका

हुआ था जैसे कोई तूफान बिना तबाही मचाए वापस चला गया हो।

"क्या नाजबीबी, अभी तक सोना को गोद में चिपकाए बैठी हो! स्कूल कब भेजोगी? साढ़े आठ बज गए। आज पहला दिन है।" छैलू ने कोठरी में प्रवेश करते हुए अपने हाथ पर बंधी घड़ी देखकर कहा।

"जा, जल्दी कर, नाज! कुछ खिला-पिलाकर भेजना उसे। अपने से पता नही, नाश्ता कर भी पाएगी वह कि नहीं।" महताब गुरु ने उठते हुए हिदायत दी।

"जी अच्छा, गुरुजी।"

"सोना, मम्मी ने जो सिखाया है वह याद है न?" गुरुजी ने सोना से पूछा।

"क्या?" सोना ने भोलेपन से कहा।

"यही कि तुम्हारी मम्मी एक खटाल पर काम करती है।"

"क्यों, ये खटाल क्या होता है?" सोना की उत्सुकता सभी का दुलार पाकर बढ गई थी।

"जहां गाय-भैंसें होती हैं।" महताब गुरु ने बताया।

"छिः, मेली मम्मी को काट लेंगी तब?"

"नहीं रे, सोना, ये तो झूठ है। मैं कोई सचमुच थोड़े ही काम करने जा रही हूं खटाल पर! बस स्कूल में किसी को यह नहीं कहना कि मेरी मम्मी दूसरो के घर नाचती-गाती है। ठीक?" नाजबीबी ने पुनः समझाया।

"ये झूठ क्या होता है, मम्मी?" सोना के इस प्रश्न पर सभी अचकचा गए थे। उसे कैसे समझाएं!

छैलू ने प्रयास किया।

"देखो सोना, मम्मी जो काम करती हैं, वह अच्छा नहीं है। लोग कहेंगे कि सोना की मम्मी गंदी है, तो क्या करोगी? इसलिए तुम सबसे कहना कि मेरी मम्मी खटाल पर काम करती है। कहां पर?"

"खटाल पल।" सोना ने दुहरा दिया। लेकिन अगले ही पल उसने फिर सवाल उछाल दिया—

"लेकिन मम्मी ये गंदा काम क्यों कलती है?"

"घर में खाने का सामान कैसे आएगा? तुम्हारा दूध, फ्रॉक, ये बैग, टिफिन, सब कैसे आएगा? पैसा रहेगा तब न? मम्मी पैसे के लिए काम करती है।" छैलू सोना को समझाने का प्रयास कर रहा था और सोना की उत्सुकता बढ़ती जा रही थी।

घर में टंगी डामरी और छमकने[1] को सोना अपना खेल का सामान समझती

---

1 घुंघरू

थी। जब कभी नाज बीबी उसे लेकर धंधे पर चली जाती तो उसे अच्छा नहीं लगता था। वह आने पर मम्मी से पूछती—

"तुम खेलने गई थीं?" और नाज हँसकर उसे सीने से लगा लेती। कभी-कभी उसके पैरों में घुघरू बांधकर स्वयं ढोलक बजाती और वह उस पर कुछ देर थिरकती, पर अगले ही पल नाजबीबी जैसे सचेत हो उसे रोक देती। उसके पैरों से घुंघरू को इतनी शीघ्रता में खोलती जैसे वे घुंघरू नहीं, सोना के पैरों से लिपटे नाग हों। आज अपनी उसी सच्चाई को सोना को समझाने में उसे कितनी परेशानी हो रही थी।

सोना चुपचाप मम्मी को देख रही थी। छैलू ने उसे फिर याद दिलाया—

"सोना, तुम्हारी मम्मी का क्या नाम है?"

"नंदलानी।"

"और पापा का?"

"मल गए।" (मर गए)

"मम्मी कहां काम करती है?"

"खटाल पल।"

"शाबास! चल उठ। अब जल्दी से तैयार हो जा।"

छैलू उठ खड़ा हुआ।

महताब गुरु भी सोना को स्कूल के ड्रेस में देखने के लिए फिर चारपाई पर बैठ गए।

नाजबीबी ने सोना को सफेद ट्यूनिक और शर्ट पहनाकर, जूता-मोजा भी पहना दिया। छोटे-छोटे बालों में सरसों का तेल लगाकर काले रंग के रिबन से कसकर बांध दिया।

बैग लेकर सोना खड़ी हुई तो नाजबीबी की आंखें भर आईं। महताब गुरु ने उठकर सोना के सिर के चारों ओर अपने दोनों हाथ गोल-गोल फिराते हुए अपने सिर पर लगाकर चट से आवाज निकाली थी—

"हाय राम, नजर न लगे मेरी सोना को। बेसरा माता कुशल से रखें।"

नाजबीबी ने भी उसी तरह नजर उतारी और सोना को लेकर बाहर की ओर चल पड़ी।

छैलू भी कोठरी के दरवाजे की सांकल लगा पीछे-पीछे चलने लगा।

नौ

आज पंद्रह दिनों से मानवी अपने कार्यालय नहीं गई। विस्तर पर पड़े-पड़े उसका जी ऊब रहा था, पर अम्मा थीं कि कहीं जाने ही नहीं दे रही थीं। उस दिन नारी उद्धारगृह से लौटते समय मानवी बुरी तरह भीग गई थी। आसमान साफ था, लेकिन एकाएक इतनी जोर से बरसात हुई कि जब तक वह रिक्शेवाले को किसी दुकान के सामने रोककर उसमें शरण लेती, तब तक पूरी तरह भीग चुकी थी। लथपथ साड़ी में वह दुकान पर पहुंचकर भी पुनः वापस रिक्शे पर बैठ गई थी। जब पूरी तरह भीग ही गई तो रुकना क्या? रिक्शावाला भी नीचे से ऊपर तक पानी से तर था। घर तक पहुंचने में उसे आधा घंटा लगा था और तब तक पानी बद नहीं हुआ था। बादल गरज-गरजकर बरस रहे थे। दोपहर में ही शाम का दृश्य उपस्थित हो गया था। काले-काले बादलों के एकाएक घिर आने के कारण उमस-भरी गरमी का स्थान हलकी सिहरन ने ले लिया। सड़कें पानी में डूब-सी गई थीं। बिजली के कड़कने के साथ ही मानवी किंचित् भय से चिहुंक जाती। उसे बरसात जितनी अच्छी लगती थी, बिजली का कड़कना उतना ही डरावना। रिक्शेवाले को और तेज चलाने के लिए कह उसने अपना पर्स सीने के पास रख दोनों हाथों से दबा लिया—ठंडक और भय दोनों से ही थोड़ी राहत पाने के लिए। रिक्शे की छतरी जगह-जगह से कटी होने के कारण ऊपर से भी पानी उसके सिर और बदन पर गिर रहा था। सड़क लगभग खाली हो गई थी। कभी-कभी एकाध ऑटोरिक्शा तेज गति से सड़क पर जमा पानी की बौछार उड़ाता पास से गुजरता तो उसकी साड़ी और भीग उठती।

घर पहुंचकर उसने बरामदे में ही खड़े होकर रिक्शेवाले को दस का नोट पकड़ाया था और बिना शेष पैसे वापस लिए अंदर की ओर मुड़ गई थी। पर्स मे टेप और कैसेट सुरक्षित थे। दरवाजे के पास ही अम्मा मिल गईं। उनके चेहरे पर चिंता की रेखाएं थीं मानवी को सामने देखते ही वह फूट पड़ीं—

"कितनी बार कहा है कि बरसाती लेकर निकला कर, लेकिन लगता है जैसे एक तुम ही दुनिया में नौकरी कर रही हो। मन टंगा था तुम्हारे ऊपर।" अम्मा उसके भीगे बालों को छूते हुए बोलीं।

"अम्मा, वो तौलिया दे दो। तुम चिंता मत करो। तेरी बेटी शेर है, शेर।" वह हँसते हुए बाथरूम की ओर चली गई थी। लेकिन बरसात में भीगने का प्रभाव

दो ही घट बाद उसकी समझ मे आने लगा बदन भारी भारी सा हो चला और आखों में जलन। बाबूजी ने अजवाइन डालकर चाय बनाने के लिए अम्मा को आदेश दे दिया था और स्वयं बदनदर्द वाली टिकिया लेने चले गए थे। परंतु टिकिया खाने पर भी तबियत ठीक नहीं हुई थी। बुखार पूरे सप्ताह-भर रुक-रुककर आता रहा तो अम्मा ने एक सप्ताह आराम करने के लिए हठ करके उसे छुट्टी लिवा दी।

बीच में ऑफिस से तारक आया था हाल-चाल लेने। मानवी ने पिछले हफ्ते तो एक पुराना मैटर भिजवा दिया था छपने के लिए। आज फिर आया था तारक।

"क्या हाल है, बिटिया?"

"बिलकुल ठीक है, बाबा। बस, अम्मा से आज्ञा दिला दो ऑफिस जाने की।" वह हँस पड़ी।

"आराम कर लो कुछ दिन, फिर तो काम करना ही है।" तारक ने समझाया।

"ऑफिस में कोई नई बात, बाबा?"

"नहीं, वही शाहीजी भी अभी तक लौटकर नहीं आए हैं। सिटी टेबुल पर से सिंह साहब को हटाकर अर्थ-जगत में कर दिया गया। वे नाराज हो रहे थे।"

"तो सिटी टेबुल पर कौन आए हैं?"

"वही अस्थानाजी। प्रबंधकजी से कितने दिन से सिफारिश कर रहे थे।"

"अरे, नौकरी तो नौकरी है। कहीं भी रख दिया जाए, नाराज क्या होना?"

"कह रहे थे कि मानवीजी को तो एक ही कॉलम कितने वर्षों से मिला हुआ है और हम लोगों को फुटबाल की तरह..." तारक चुप हो गया।

"तो प्रबंधकजी ने क्या कहा?"

"उन्होंने कड़ा जवाब दिया, बिटिया। हां...कहा कि जिस दिन मानवी को उस कालम से हटा दें, वह बंद ही हो जाएगा। जितनी मेहनत करके वह मैटर जुटाती है, उतनी किसी में हिम्मत है भागदौड़ करने की?...इसलिए उस कॉलम की बात आप लोग न ही करें तो अच्छा है।" बताकर तारक चुप हो गया था।

अम्मा चाय ले आई थीं तारक के लिए। बाबूजी बाहर बरामदे में बैठे कोई पत्रिका पढ़ रहे थे।

"अम्मा, कल से ऑफिस जाऊं?" मानवी ने बच्चों की तरह हठ किया।

"क्यों, तबियत पूरी तरह ठीक हो गई?"

"हां, अम्मा देखो, बुखार एक हफ्ते से नहीं आया है...फिर ऑफिस में

थोडा उलट-फेर भी हुआ है। मेरा रहना जरूरी है।

"अब अपने ऑफिस की बात तो तू ही समझती होगी, बेटी। जैसा ठीक समझो, करो।" अम्मा तारक को चाय का प्याला पकड़ाते हुए बाबूजी को चाय देने बाहर चली गईं थीं।

"बिटिया, तो अगले हफ्तेवाला मैटर लेने हमें आना पड़ेगा?" तारक ने चाय की चुस्की लेते हुए कहा।

"नहीं बाबा, मैं कल ऑफिस आऊंगी। आज मैटर को सुनकर लिखूंगी।"

"अरे हां, बिटिया, डी.एम. ऑफिस से तुम्हारे लिए टेलीफोन आया था दो दिन पहले भी।" तारक को जैसे याद आया था।

"कुछ सूचना थी?" मानवी ने पूछा।

"नहीं, बिटिया। मुझे तो कुछ नहीं बताया गया। तुम घर से ही टेलीफोन करके पूछ लो।" तारक ने प्याला मेज पर रख दिया था।

मानवी को उत्सुकता हुई। आखिर डी.एम. कार्यालय से फोन क्यों आ सकता है? उस दिन वह नारी उद्धारगृह की लड़कियों का इंटरव्यू लेने के लिए डी.एम. कार्यालय से आदेश लेने गई थी तो डी.एम. ने उससे विस्तारपूर्वक इस विषय पर चर्चा की थी। बल्कि उसे आश्चर्य हो रहा था कि इतनी व्यस्तता वाली नौकरी में डी.एम. साहब उसे इतना समय क्यों दे रहे हैं। एक बार तो उसे अपना कार्य पूर्ण होने पर संदेह हुआ था, परंतु जब उन्होंने बहुत ही गंभीरता से उसके प्रार्थना-पत्र पर स्पष्ट आदेश दे दिया तो उसे तसल्ली हुई थी। वह डी.एम. आनद कुमार के व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित हुई थी। पहले तो बाहर नेम-प्लेट पढ़कर उसने किसी भारी-भरकम अधेड़ उम्र के रोबीले व्यक्तित्व की कल्पना की थी, परतु अंदर घुसते ही उसकी वह धारणा निर्मूल हो गई। सामने पैंतीस वर्ष का सुदर्शन व्यक्तित्व था—गेहुंआ रंग, मोटी पलकों वाली बड़ी-बड़ी आंखों पर शायद हलके पावर का चश्मा था, जिससे चेहरा और गंभीर लग रहा था। गेहुए रंग पर होंठ लाल न होकर कुछ जामुनी रंग के होने के कारण पूरे व्यक्तित्व को एक अलग पहचान दे रहे थे। भूरे रंग की खादी सिल्क की शर्ट पर गाढ़े कत्थई रग की टाई सुंदर लग रही थी। मानवी ने एक उड़ती नजर से डी.एम. के संपूर्ण व्यक्तित्व को परख लिया था।

"आइए, आप ही मानवी हैं?" गंभीर आवाज में एक जादुई आकर्षण था।

"जी!" वह मुसकरा उठी। एक स्वाभाविक मुसकराहट।

"बैठिए।"

"जी धन्यवाद! वो नारी उद्धारगृह के लिए..."

"याद है। मानवी नाम है शायद इसीलिए मानवीय संवेदना के इतने निकट है आप।" आनंदजी ने बात आगे बढ़ाई।

"जी...नहीं...हो भी सकता है।" वह कुछ देर के लिए असंयत हो उठी। शायद डी.एम. से उसे ऐसी सहजता की अपेक्षा नहीं थी।

"इस अखबार से कबसे जुड़ी हैं आप?"

"जी, तीन वर्ष हो गए। इसके पहले इलाहाबाद के एक दैनिक में थी मैं।" उसने संक्षेप में जवाब दिया।

"किसी परमानेंट जॉब के लिए ट्राई नहीं किया?"

"जी, एम.जे. करने के बाद इसी में आ गई। वैसे लेक्चरर पद के लिए प्रयास कर रही हूं। यू.जी.सी. का नेट दे चुकी हूं।"

"फेमिली में और कौन-कौन हैं आपके?"

"जी, मां, पिताजी, दो भाई...ये पिछले तीन अंक अपने फीचर के ले आई हूं आपके लिए। यदि समय हो, तो पढ़कर अपनी प्रतिक्रिया अवश्य दें, सर।" कहते हुए मानवी ने अपना प्रार्थना-पत्र और फीचरवाले अंक आनंद कुमार की ओर बढ़ा दिए। वह अपने बारे में इससे अधिक नहीं बताना चाह रही थी।

आनंद कुमार ने उसकी मानसिकता पढ़ ली थी। बिना कुछ बोले उन्होंने अखबार के अंक लेकर रख लिए और प्रार्थना-पत्र पर अपना आदेश लिखते हुए हस्ताक्षर कर दिए। बेल दबाते ही अर्दली आकर खड़ा हो गया था। डी.एम. साहब ने अपने हाथ से प्रार्थना-पत्र उसे पकड़ा दिया। कुछ ही देर में वह मुहर लगाकर वापस कर गया प्रार्थना-पत्र। चपरासी चाय का ट्रे लेकर कक्ष में उपस्थित हुआ। खूबसूरत क्रॉकरी में ढंग से सजाकर रखी चाय और बिस्कुट डी.एम. और मानवी के बीच में रखकर वह चुपचाप चला गया।

"लीजिए, मैडम चाय।" एक बार पुनः आनंद कुमार की गंभीर आवाज कक्ष में गूंजी थी।

मानवी कुछ असहज महसूस करने लगी थी। डी.एम. चाय की चुस्किया लेते-लेते कभी-कभार गहरी दृष्टि से उसे देख लेते। परंतु उसमें कुछ गलत भाव नही दिखाई पड़ता, क्योंकि नारी की दृष्टि पुरुष के भावों को बड़ी सहजता से परख लेती है। आनंद कुमार उसमें कुछ अधिक रुचि ले रहे थे, यह तो स्पष्ट था, परंतु भाव मलिन नहीं था।

मानवी ने मौन को तोड़ते हुए कुछ बात शुरू की—

"आपकी शिक्षा कहां से हुई, सर?"

"पटना से।"

ओह, इसीलिए यू.पी. केडर?

"हां, और अब तो शायद यू.पी. में ही रह जाऊं।"

"यह तो अच्छी बात है, सर! मतलब, हम सबके लिए...एक अच्छा ऑफिसर..." मानवी अपनी ही बात में उलझ गई थी।

आनंद कुमार उसकी उलझन पर मुसकरा उठे।

"आपका रेजीडेंस कहां है, मानवीजी?"

"जी, किराये पर, कभी यहां, कभी वहां। फिलहाल तो मैं अस्सी पर रह रही हूं...ये मेरा कार्ड है, सर।" मानवी ने पर्स से कार्ड निकालकर आनंद कुमार को पकड़ाया था। कार्ड थामने में दोनों की ऊंगलियों का स्पर्श हो गया था और मानवी ने चौंककर कार्ड छोड़ दिया था।

आनंद कुमार ने कार्ड लेकर अपनी टेबुल पर बने कार्ड वाले खाने में डाल दिया और बोले—

"इंटरव्यू में कोई दिक्कत हो तो बताइएगा। वैसे होनी तो नहीं चाहिए।"

"जी, आपके पत्र के बाद अब कोई दिक्कत नहीं होगी, सर...चलूं?" मानवी ने आज्ञा मांगी।

"ओ.के.।" कहते हुए आनंद ने उसे ध्यान से देखा और तुरंत अपनी फाइल पर झुक गए थे।

"बिटिया, मैं जाऊं अब? तुम डी.एम. ऑफिस फोन कर लेना।"

मानवी एकाएक वर्तमान में आ गई थी। डी.एम. आनंद कुमार से कुछ दिनों पूर्व की पहली मुलाकात सजीव हो उठी थी अंतर्मन में। उसने तारक को संकेत से रोक दिया और डी.एम. कार्यालय का नंबर डायल करने लगी थी।

"हैलो..."

"......"

"डी.एम. साहब से बात हो सकती है क्या?"

"......"

"जी अच्छा, मानवी नाम बता दीजिएगा। मैं फिर रिंग कर लूंगी। ओ.के. थैंक यू।" उसने टेलीफोन रख दिया।

"डी.एम. तो नहीं हैं, बाबा। बाद में फिर मिला लूंगी। कल मैं ऑफिस में भी आऊंगी। तब तक आज अगले हफ्ते वाला मैटर तैयार कर लूंगी...अब आप जाइए।"

तारक चला गया तो मानवी ने बेडरूम की खिडकी खोल ली। बाहर का छोटा-सा लॉन दिखाई दे रहा था। उसकी खिड़की के पास ही गुलाबी बोगन-

जी धन्यवाद रखू?

"ओ.के.।" और आनंद कुमार ने टेलीफोन रख दिया था।

"किसका टेलीफोन था, मनु?" अम्मा अंदर चली आई थीं।

"वो डी.एम. साहब का था। मेरा लिखा फीचर उन्हें बहुत पसंद आया था। उस दिन मैं परमिशन लेटर लेने गई थी तो दो-तीन अंक दे आई थी।" मानवी ने संक्षेप में पूरी बात बता दी अम्मा को।

अम्मा के चेहरे पर एक प्रसन्नता-भरी ज्योति क्षण-भर को जगमगाकर लुप्त हो गई थी शायद इसलिए कि मानवी के चेहरे पर कोई और भाव नहीं था। अम्मा उसके पास बैठ गई थीं।

"क्या नाम है डी.एम. का?" अम्मा ने पूछा।

"आनंद कुमार।"

"किस जाति का है?"

"क्यों, कुंडली बनाओगी क्या?" मानवी कुछ रूखी हो उठी थी। पता नही क्यों, किसी पुरुष के बारे में बात करते ही अम्मा मानवी के भविष्य को लेकर एक दीप जलाने लगती हैं, जबकि स्वयं मानवी ने वे सारे दीप फूंक मारकर बुझा दिए हैं।

"बाबूजी चाय पी चुके क्या?" उसने अम्मा का ध्यान दूसरी ओर मोड दिया।

अम्मा ऐसी बातों की अभ्यस्त हो चुकी है। मानवी के हृदय को कोई ठेस नही पहुंचाना चाहतीं। उठकर रसोई की ओर चली गई थीं। शायद दाई आ गई थी। बरतनों की खटर-पटर के बीच अम्मा उसे कुछ निर्देश देने लगी थीं।

मानवी को अपने व्यवहार पर क्षोभ हुआ। बेचारी अम्मा सभी का कितना कुछ झेलती हैं। गांव में भइया-भाभी का दुर्व्यवहार, छोटे भाई की पीड़ा, उसका अपना भविष्य और बाबूजी का स्वास्थ्य—इन सबके बीच अकेली पिसती अम्मा

मानवी ने प्रायश्चित्तस्वरूप अम्मा को आवाज लगाई—

"अम्मा, फिर चाय पिओगी? मैं बनाऊं अच्छी-सी।"

"क्यों, मैंने खराब बनाई थी क्या?" अम्मा हँस पड़ी थीं। वे समझ रही थीं कि अब मानवी उन्हें मनाने की कोशिश कर रही है। उन्हें बेटी पर प्यार आ गया था।

"तू अपना काम कर। मैं अभी बना देती हूं। जरा दाई भगोना धो दे।"

"अच्छा अम्मा, मैं जरा अगले हफ्ते वाला फीचर लिखने जा रही हूं। अभी आना तो तुम्हें भी सुनाऊंगी...तुम तो सुनकर रोने लगोगी।" मानवी ने टेप रिकार्डर

ौर केसेट पर्स मे निकाला था और बेड पर ही कागज-कलम लेकर लिखने बैठ ई—

'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता:'— अर्थात् जहां नारियों की पूजा होती ', वहां देवता रमण करते हैं। परंतु सत्य तो यही है कि पूजा तो दूर की बात ह न्हे अपने ही घर में उचित स्थान मिल जाए, सम्मानपूर्वक जीने का अधिकार मिल ाए— यही उनके लिए सौभाग्य की बात है। और यह सौभाग्य कितनों को मिल ाता है, यह एक विचारणीय प्रश्न है। शोषण, प्रताड़ना और मानवीय अधिकारो े वंचित नारियों के पग यदि आवेश के किसी क्षण में देहरी से बाहर निकल जाते ' तो क्या परिणति होती है, प्रस्तुत है एक झलक—

(सिसकियां)

ये सिसकियां हैं अपने ही मां-बाप की प्रताड़ना से ऊबकर घर से भागी ई एक लड़की कमरजहां की।

ऽमरजहां : जी, हमको हमारे पिताजी बहुत मारते थे...सौतेले पिताजी थे.. एक दिन पांच लीटर मिट्टी का तेल लेकर आए...वो मुझसे गिर गया.. डर के मारे मैं चुपके से घर से भाग आई...और यहां पहुंच आई...(सिसकियां)।

कमरजहां की तरह ही बचपन से अनाथ आशा की कहानी भी न जाने कितने दर्द और संत्रास की कहानी है।

ाशा : बड़े पापा ने हमारी शादी की थी...एक दिन क्या हुआ कि सास कही कि काफी बनाकर ले आओ...(भर्राया स्वर)...काफी बनाकर लाने को...ऊपर से सब देख रहा था...(सिसकी)...काफी बना के लाए...एक हाथ से आंचल पकड़कर सिर पर रख रहे थे...आंचल सरक गया और कप फिसलकर गिर गया...टूट गया...उसी पर झाड़ू लेकर मारने लगी और बोली कि घर से निकल जाओ तुम। बड़े पापा ने हमारे बहन को भी, छोटी बहन आरती...उसे भी हमारे साथ लगा दिए थे। हमने सोचा कि सास जब हमारा इतना दुर्दशा करती है तो हमारे बहन की भी कर सकती है.. हम साथ लेकर निकल गए...(सिसकी) तो चौकाघाट में हमारे पीछे गुंडे पड़ गए...तो गुंडे पड़ गए तो हमारा जेवर भी छीना और हमको ले जा रहे थे बेचने...तो हम सुन लिए...तो वहां पर दो दरोगा चाय पी रहे थे.. हम चिल्लाए...देखिए साहब, ये हमको बेच रहे हैं...तो वो सब...(सिसकियां)।

ससुराल के उत्पीड़न से ऊबकर अपनी बारह वर्षीया बहन को घर से लेकर निकल पड़ने वाली आशा को मंजिल के रूप मे नारी संरक्षणगृह तो मिला, पर उसकी बहन आरती को?

आशा : चौकाघाट पर मेरी बहन छूट गई...छूट गई...रो रही थी वहां पर दीदी-दीदी कहकर...(घुटी हुई सिसकियां) हमने...हम...अपनी बहन को पकड़ नहीं पाए। हमको लेकर चले गए सब वहां से। बोली कि दीदी हमको छोड़कर जा रही हो तो हम कहां रहेंगे?. चिल्ला-चिल्लाकर रो रही थी।

आशा तो बचपन से अनाथ थी इसलिए उसकी मंजिल बना नारी उद्धारगृह परतु पैदा होते ही लड़के और लड़की का भेद करने वाली इस सामाजिक संरचना मे यदि मां-बाप भी इस भेद को बढ़ावा देते हैं तो कभी-कभी अति संवेदनशील लडकियों का हश्र पूनम जैसा भी होता है—

पूनम : (रोते हुए) हिआं आराम से हम...मेरे पिताजी हमें बहुत मारते थे। कहते थे—घर से निकल जाओ। कहीं डूबकर मर जाओ, पर यहा मत आना। मां को भी मारते थे। कहते थे—दर्जन-भर लड़कियां...हमने घर में गुस्साए और निकल आए...ओकरे बाद हम दिल्ली जा रहे थे तो दिल्ली से वो डराइवर हमें यहां ले के आया...बेचने के चक्कर में...कहा कि चलो हम मिला दें...फिर यहां...(सिसकिया चिट्ठी हमने भेजा...अगर आएंगे लिवाने तो हम चले जाएंगे, माफी मांग लेंगे...रखेंगे तो रहेंगे...नहीं तो...कहां जाएंगे?

पश्चात्ताप की आंच में लगातार झुलसती पूनम किससे करे अपनी फरियाद—

पूनम : बहुत पछताते हैं कि बेकार निकले घर से...अगर मारते थे, गुस्साते थे तो मां-बाप थे, बरदाश्त कर लेते तो अच्छा रहता। मगर पछताते हैं...नहीं निकलते घर से तो अच्छा रहता (हिचकियां)।

''बेचारी बहुत रो रही है। कौन है मनु ये लड़की?'

अम्मा चाय बना ले आई थीं। वह आकर उसके पास बेड पर बैठ गई।

मानवी ने टेप बंद कर दिया और कलम उठाकर लिखे हुए पेज पर रख दिया।

''जानती हो अम्मा, इतना रो रही थी यह लड़की कि इसका चेहरा एकदम लाल हो गया था। सवाल पूछते ही फफक पड़ी थी।''

''क्या इन्हें वापस इन सबके घर नहीं भेजा जाता? जब बेचारी पछता रही है तो घर भेज देना चाहिए। बच्चों से गलती हो ही जाती है।'' अम्मा टेप रिकार्डर

की ओर ध्यान से देखने लगी थीं, जैसे अभी उसमें से पूनम का निकालकर उसके घर पहुंचवा देना चाहती हों। मानवी का भी मन आर्द्र हो उठा था।

"उसने अपना पता बताया हैं अम्मा। ज्यादा दूर की नहीं है यह। बस, यही गाजीपुर के सेमहर गांव के ठाकुर की लड़की है। मैं उसके पिताजी को चिट्ठी लिखूंगी कि वे आकर अपनी बेटी को यहां से ले जाएं। कम से कम एक तो मुक्त हो।" मानवी चाय पीते-पीते बता रही थी।

अम्मा की उत्सुकता बढ़ गई थी। उन्होंने पूछा—

"जब वहां तक तुम गई थीं तो और सभी लड़कियों का पता ले ली होतीं। एक पोस्टकार्ड ही डाल देतीं।"

"तुम नहीं समझ रही हो, अम्मा। वार्डेन वहां से हट ही नहीं रही थी। सारी लडकियां बहुत सहमी-सहमी-सी बात कर रही थीं। जैसे उन्हें इससे ज्यादा बोलने की मनाही हो।...वो तो यह वाली लड़की...पूनम रोते-रोते इतनी बेहाल हो गई थी कि अपना नाम-पता सब बता गई।" मानवी कुछ सोचने लगी थी।

"क्यों? नाम-पता बताना भी गुनाह है क्या? क्या तुम उन्हें दूसरी जगह बेच आतीं? अरे, भला ही करने तो गई थीं तुम उनका? वार्डेन को क्यों आपत्ति होने लगी?" अम्मा को वार्डेन के ऊपर गुस्सा आ रहा था।

मानवी ने आगे बताया—

"वार्डेन का भी इंटरव्यू इसमें है, अम्मा, सुनवाऊं? कहती थी कि चिट्ठियां इनके घर भेजी जा चुकी हैं परंतु समाज में अपनी बदनामी के भय से इनके मां-बाप लेने नहीं आते या चिट्ठियां वापस कर देते हैं।"

"पर तुम इस लड़की के घर जरूर चिट्ठी भेज दो। लिख देना समझाकर .. आकर ले जाएं अपनी लड़की को। बेचारी कितना बिलबिलाकर रो रही थी।"

अम्मा के चेहरे पर सहानुभूति की गहन रेखाएं उमड़ती देख मानवी ने सांत्वना दी—

"मेरे ऑफिस का एक आदमी सेमहर गांव के पास का ही है। उसी के हाथ चिट्ठी भेजूंगी, ताकि पूरी बात पता चल सके।"

"पता नहीं, क्षण-भर के आवेश में कौन-सा कदम कहां ले जाकर पटक देता है इनसान को।" अम्मा कुछ याद कर उदास हो गई थीं। मानवी को भी कुछ भूला याद हो आया था। दोनों अपने-अपने विचारों में तल्लीन चुपचाप दीवार को देखने लगीं थी।

कुछ देर की चुप्पी के पश्चात मानवी ने कलम उठाकर फीचर के पहले वाले पृष्ठ पर ऊपर शीर्षक लिख दिया था—

'आवेश का एक क्षण'

और अपना लेटर पैड निकाल पूनम के घर पत्र लिखने बैठ गई।

दस

नाजबीबी को नींद नहीं आ रही थी। बगल में सोना बेसुध सो रही थी। आजकल स्कूल से आने पर थक जाने के कारण वह जल्दी ही सो जाती है। वैसे स्कूल तो एक जुलाई से ही शुरू हो गया था। सोना का नाम लिखवाने में एक महीने की देर हो चुकी थी। पहले तो उसे स्कूल जाने में अरुचि थी, परंतु धीरे-धीरे वह अभ्यस्त होती जा रही थी। स्कूल की अपनी सहेलियों की बातें बताते और अपनी मैडम की नकल उतारते-उतारते वह अकसर नाजबीबी को व्यस्त रखती है। अभी होम वर्क अधिक नहीं मिलता है, इसलिए जल्दी ही अपना काम पूरा कर वह नाजबीबी से स्कूल की कहानी कहने बैठ जाती है। इस बस्ती से निकलकर स्कूल की दुनिया उसे अलग और मनभावन-सी लगती है। कल सोना आई शाम को तो कहने लगी—

"मम्मी, नौ तालीख को हमाले स्कूल में पेलेंट-डे हैं। सबके मम्मी-पापा आएंगे, मम्मी। तुम भी चलोगी?"

"कैसे बेटी? हम कैसे जा पाएंगे?" नाजबीबी जैसे अपने ही प्रश्न के चक्रव्यूह में उलझ गई थी।

"नहीं मम्मी, तुम चलो ना? मेली दोस्त है पूजा, उसके भी मम्मी-पापा आएंगे...सबके।" सोना उठकर बैठ गई थी।

"देखो सोना, बेवजह जिद मत करो। मेरी तबियत जरा गड़बड़ है न, बिटिया, इसलिए।"

"कहां गड़बड़ है? ठीक तो है।" सोना ने उसके माथे पर हाथ रखते हुए फिर जिद की।

"अच्छा, तेरे साथ छैलू कक्का चले जाएंगे। ठीक?"

"नहीं, छैलू कक्का को देखकल सभी लोग हँसते हैं। पूजा कह लही थी—तुम्हाले पापा कितने काले हैं। क्यों पाजामा-कुलता पहने लहते हैं? हमने कहा, धत् ये मेले पापा थोड़े ही हैं। मेले पापा तो मल गए हैं। मेली मम्मी और हम गोले-गोले हैं। ये तो कक्का हैं।" सोना ने पूरी समस्या कह सुनाई।

नाजबीबी सोच में पड़ गई थी। इस समस्या से वह कैसे निबटे? किसे भेजे

अपनी जगह? देखते ही तो सभी लोग समझ जाएंगे। सोना नादान है। कैसे समझाए वह सोना को कि उसी की जिंदगी संवारने के लिए वह इतना छिपती-छिपाती फिर रही है। अभी उस दिन वह गली के मोड़ पर चाय वाली दुकान के पास तक छैलू के साथ सोना को स्कूल छोड़ने के लिए गई थी तो एकाएक सोना अपनी किसी सहेली को देख उछल पड़ी थी। उसके मां-बाप की नजरों से स्वयं को छिपाते हुए वह झट सोना का हाथ छैलू के हाथ में थमा गली के अंदर मुड़ गई थी।

"चलोगी न, मम्मी?" सोना आशा-भरी नजर से उसकी ओर देख रही थी।

"चल, अभी तो पंद्रह दिन का समय है न, बिटिया। मैं बताऊंगी।"

सोना किलकारी मारकर हँस पड़ी थी और उछलते हुए बाहर भाग गई—

"मेली मम्मी जाएगी...जाएगी...मेली मम्मी..."

नाजबीबी की आंखें भर आईं। कितनी भोली है सोना! उसे स्कूल में पाकर वह तो कितनी खुश हो जाएगी, पर दूसरे?

नाजबीबी को अपना वह दिन याद आ गया जिस दिन राधारमण स्कूल मे वह डांस करने के लिए मंच पर गई थी। कक्षा छः में ही थी वह। सभी अभिभावक मंच के नीचे बैठे थे। वह मंच पर नृत्य करती जा रही थी और उचक-उचककर दर्शकों की भीड़ में निगाहों से मम्मी-पापा को भी खोजती जा रही थी। एकाएक मम्मी आती दिखाई दी थीं और वह डांस रोककर मंच से ही चिल्ला पडी थी—'मम्मीऽऽ मैं यहां हूं!' दर्शकों में हँसी की लहर फूट पड़ी थी। मैडम काफी नाराज हुई थीं उससे। उसके बाद से वह कभी किसी सांस्कृतिक कार्यक्रम में भाग नहीं ले सकी थी...

मम्मी-पापा की याद आते ही नाजबीबी मन बेचैन हो उठा था। ऐसी बेचैनी उसे कभी-कभी ही होती थी, और जब असहनीय हो जाती थी तभी उन्हें वह टेलीफोन करती थी। सोना के बाहर जाते ही वह अपने मम्मी-पापा के लिए तड़प उठी। इधर छः-सात महीने हो गए थे। न तो उसने पापा-मम्मी को टेलीफोन किया और न पापा ने ही। उसने पापा को सड़क की दूसरी पटरी वाली अमरजीत की दुकान का नंबर दे दिया था—

"पापा, जब कभी आपको मुझसे बातचीत करनी हो, यहां पर फोन कर दीजिएगा तो वो कुछ देर में मुझे बुला देगा।"

"अच्छा बेटा।" पापा की कातर आवाज सुनकर उसका मन मसोसकर रह गया। उसने अमरजीत को भी सहेज दिया था—

"भइया, जरा मेरा कोई फोन आए तो गली के किसी लड़के से कहलवा-

भर देना। बडी मेहरबानी होगी।''

''किसका आएगा, नाजबीबी?'' अमरजीत ने उत्सुक निगाहों से देखकर हॅंसते हुए उससे पूछा।

''है कोई।'' नाजबीबी नहीं बताना चाह रही थी कि उसके पापा का। क्योंकि उसके बाद अमरजीत की उत्सुकता और बढ़ जाती और पूछते-पूछते वह सारा भेद जान जाता। नाजबीबी नहीं चाहती थी कि कोई उसके बारे में कुछ जाने। स्वयं महताब गुरु ने भी इस बस्ती में उसके कदम रखने के बाद ही समझाया था—

''देखो, अब यही दुनिया तुम्हारी है। आज से भूल जाओ कि तुम कहां पैदा हुई। कौन-मां बाप हैं। इसी में तुम्हारी भी भलाई है, उनकी भी। नहीं तो बदनामी और दुःख छोड़ कुछ नहीं मिलेगा। बेसरा माता की शरण में आ गई हो, अगला जनम सुधारो। अपना नाम तक भूल जाओ आज से। क्या नाम है तुम्हारा?''

''नंदरानी रघुवंशी।'' उसकी पलकें रोते-रोते सूज गई थीं।

''ठीक है, आज से तुम्हें सब नाजबीबी पुकारेंगे।''

और वह नाजबीबी हो गई थी! आज लगभग पचीस वर्ष बीत गए उसे नदरानी से नाजबीबी बने। महताब गुरु ने उसके दोनों हाथों में लड्डू थमाकर और अपने आंचल के पास गिलास का दूध उसके मुंह से लगाकर उसे अपनी भावी पीढी के रूप में स्वीकार कर लिया था। वह अवाक् इस समुदाय का रीति-रिवाज देख रही थी। दूसरे जिलों से आए तथा अपनी बस्ती के कई हिंजड़ों ने उसे उपहार दिए और नाच-गाने के बीच उसे समुदाय में शामिल कर लिया गया था। उनके कानफोड़ गीत, ढोलक और तालियों से उसे घृणा और भय दोनों लग रहा था और बार-बार उसके मुंह से दबे स्वर में डर के कारण 'मम्मीऽऽ' निकल जा रहा था। वह अपने निर्णय पर मन ही मन पछता रही थी। क्यों चली आई वह इन लोगों के पास? एकाएक उसे याद आया था कि वह तो नाजबीबी है। पापा यदि फोन करेंगे भी तो नंदरानी के नाम से। उसने अमरजीत को समझाया—

''भइया, अगर नंदरानी के नाम से फोन आए तो भी मुझे बुला देना।''

''यानी नाज भी तुम हो, नंदरानी भी। एक साथ हिंदू भी, मुसलमान भी।'' अमरजीत हँस पड़ा।

नाजबीबी ने भी बात को हँसी में टाल दिया—

''जब भगवान् ने ही हमारे साथ भेद नहीं किया कि हम क्या हैं, तो हम कौन होते हैं?''

''बड़ी ऊंची बात कह दी, नाजबीबी, तुमने तो।'' अमरजीत मुसकरा उठा।

नाजबीबी चली आई थी।

"मम्मी, मम्मी, मैं तितली पकड़ने नदी किनारे जाऊँ?" सोना की आवाज से नाजबीबी वर्तमान में लौट आई तो छैलू को बुलाकर सोना को देखने के लिए कहकर स्वयं मम्मी-पापा को टेलीफोन करने पी.सी.ओ. पर चली गई। पी.सी.ओ के शीशेबंद केबिन में घुसकर उसने दरवाजा अंदर से चिपका दिया ताकि कोई दूसरा उसकी आवाज न सुन सके। शाम हो चली थी। मम्मी इस समय जरूर मिल जाएगी। जबसे नंदन भइया ने उसे बार-बार टेलीफोन न करने के लिए कहा था तबसे वह बहुत विवशता में ही फोन करती थी। भाभी को तो एकदम पसंद नहीं था कि वह उस परिवार से कोई संबंध रखे। नंदरानी को बिना देखे ही नंदन से उसके बारे में वह जान चुकी थी। घर और रिश्तेदारों में अपनी बदनामी के डर से नंदन ने भी उसे फोन पर साफ मनाकर दिया था—

"देखो, तुम्हारा बार-बार टेलीफोन करना या इस परिवार से संबंध रखना, हमारी इज्जत तो बढ़ाता नहीं, उलटे तुम्हें भी दुःख होता है और मम्मी-पापा को भी। तुम परिवार में रह नहीं सकतीं, हम रख भी नहीं सकते। इसलिए यह समझ लो तुम कि अनाथ हो। कोई नहीं तुम्हारा दुनिया में।"

"भइयाऽऽ!" आगे की बात उसके आंसुओं में डूब गई थी। अभी तक फोन का एक सहारा था कि मम्मी-पापा से बात हो जाती थी, परंतु अब वह आसरा भी भइया ने एक झटके में तोड़ दिया था। पर मम्मी-पापा को वह कैसे भुला दे? अकसर वह फोन मिलाती, लेकिन उधर से भइया या भाभी की आवाज सुनते ही चुपचाप रख देती।

एक दिन संयोग से मम्मी ने ही फोन उठाया था। नंदरानी इतने दिनों के बाद मम्मी की आवाज सुनकर फोन पर ही फफक पड़ी—

"मम्मीऽऽ, भइया ने बात भी करने के लिए मना कर दिया।"

"तुम बताया ही मत करो कि कौन बोल रही हो। हम लोगों को बुला लिया करो।" मम्मी ने एक रास्ता निकाला था।

सोचते हुए नाजबीबी ने पी.सी.ओ. के टेलीफोन से नंबर मिलाया था।

"हैलो...कौन...?" उधर से भाभी की आवाज सुनकर एक क्षण के लिए नाजबीबी का मन उदास हो गया था। पर अगले ही क्षण उसने अपनी मोटी आवाज को और भारी बनाते हुए पूछा—

"मेजर साहब से बात करनी है।"

"पापाजी, पापा...आपका टेलीफोन है।" कहते हुए भाभी ने रिसीवर रख दिया था शायद।

नाजबीबी सोच रही थी कि वह पापा से क्या पूछे ताकि वहां भाभी न समझ सकें कि फोन उसी का है।

"हैलो...कौन?"

उधर से पापा की आवाज इतने महीनों के बाद सुनकर नाजबीबी विह्वल हो उठी थी।

"पापा, मैं...मैं, तुम्हारी नंदरानी। भाभी वहीं बैठी हैं?"

"हां...जरा टेलीफोन डिस्टर्ब लग रहा है। तुम लिए रहो, मैं कॉर्डलेस से बात करता हूं।" पापा के इस वाक्य से नाजबीबी समझ गई थी कि भाभी कहीं आसपास ही हैं, इसीलिए पापा ने यह बहाना किया है।

भाभी की मद्धिम आवाज फोन से छनकर नाजबीबी के कानों तक आई थी—

"पर, अभी तो ठीक था टेलीफोन।" नाजबीबी टेलीफोन कान से सटाए पापा के कॉर्डलेस से बात करने का इंतजार करने लगी थी। एक दिन पापा ने ही फोन पर बताया था कि उन्होंने कॉर्डलेस ले लिया है जिसे वे ऊपर अपने कमरे में रखते हैं।

"हां, हैलो...बोलो बेटा, इतने दिन बाद फोन कर रही हो? तबियत तो ठीक है न?"

पापा की दबी, कमजोर आवाज नाजबीबी को अंदर तक उद्वेलित कर गई। वह भर्राई आवाज में बोली—

"हां, पापा, मैं तो ठीक ही हूं। आप कैसे हैं? मम्मी कहां हैं? कनबासी... अरे, फोन दीजिए मम्मी को।" जल्दी-जल्दी में उसके मुंह से अपना सांकेतिक शब्द 'कनबासी' निकल गया था।

"इतने दिनों से फोन क्यों नहीं किया, बेटा? एक दिन मैंने मिलाया था तीन-चार महीने पहले, तो उस आदमी ने बताया कि तुम अभी-अभी रिक्शे में किसी गिरिया के साथ गई हो? ये गिरिया कौन है, बेटा?" पापा उसके बारे में जान लेना चाह रहे थे।

नाजबीबी सकुचा उठी। क्या बताए पापा को? उसने बात संभाली—

"ऐसे ही, पापा। बस्ती का आदमी। जल्दी से मम्मी को फोन दे दो, पापा, नहीं तो कोई नीचे से फोन उठा लेगा।" नाजबीबी अपना वर्तमान भूल एक क्षण को अपने पापा की दुलारी बेटी बन गई थी।

पापा बिलख पड़े थे—

"बेटा, तेरी मम्मी...तेरी मम्मी...बहुत बीमार है...बोल भी नहीं सकती बेटा...कैंसर हो गया है...डाक्टर कहते हैं कि..." एकाएक पापा की आवाज बदल गई थी—

"ऐसा है...तुम किसी दूसरे दिन बात करना, तभी मैं कुछ कह सकने की

स्थिति में होऊंगा...अच्छा?''

और नाजबीबी समझ गई थी कि जरूर नीचे भइया या भाभी ने टेलीफान उठा लिया है, क्योंकि पापा की आवाज एकाएक मद्धिम सुनाई पड़ने लगी थी और पापा ने भी तो एकाएक बात बदल दी थी। नाजबीबी ने फोन रख दिया था। उसकी आंखें आंसुओं से छलछला आई थी। मम्मी का पूरा हाल भी नहीं ले पाई वह पापा से। उसने काउंटर पर आकर पी.सी.ओ वाले को पैसे चुकाए और थके कदमों से सड़क पर आ गई थी।

आकर उसने छैलू और सोना को बुलाया था।

''ये कैंसर क्या होता है, छैलू?''

''बहुत भयंकर बीमारी। एक बार हो जाए किसी को तो...आदमी बचता नही...मरना निश्चित है।'' छैलू ने अपने डॉक्टरी ज्ञान का भरपूर उपयोग करते हुए बताया।

नाजबीबी की आंखों के आगे अंधेरा छाने लगा।

छैलू ने ध्यान से देखते हुए पूछा—

''किसे हुआ है, नाजबीबी?''

''किसी को नहीं। ऐसे ही पूछ रही थी।'' बस्ती में किसी को नहीं पता था कि वह अभी तक अपने मम्मी-पापा से संबंध बनाए हुए है, भले ही वह टेलीफोन से ही हो। बताकर बस्ती में एक नया हंगामा नहीं खड़ा करना चाहती। वैसे ही वह बस्ती में अपनी अलग-थलग रहन-सहन और सोच के लिए चर्चित है।

छैलू चला गया था और वह बिस्तर पर लेटी मुंह ढंके सुबकती रही थी। बार-बार मम्मी का चेहरा आंखों के सामने नाच उठता। नाजबीबी ने करवट बदली। सोना कुनमुनाकर उसकी पीठ से चिपक गई।

नाजबीबी की आंखों से आज रात भी नींद दूर थी। उसने खिड़की खोलकर बाहर झांका। चारों ओर सन्नाटा था। कुछ दूर वरुणा के किनारे खेतों की ओर से कुत्तों के रोने की आवाज आ रही थी। अपशकुन से घबड़ाकर उसने खिड़की बद कर दी और सोना को कसकर सीने से चिपका लिया था। मन में एक निर्णय उठा था— कल सोना को दो दिन के लिए महताब गुरु के पास छोड़कर वह मम्मी को देखने जरूर जाएगी। भले ही घर में अपमान हो, पर अब मम्मी से मिले बिना उसे चैन नहीं आएगा। एक बार गले से लिपटकर रो लेगी तो संतोष हो जाएगा। मम्मी की विदा होने वाली आत्मा से वचन ले लेगी कि अगले जन्म में भी वही उसकी मा बने...पर इस तरह उससे अलग रहने के लिए नहीं...अपने साथ रखे मम्मी उसे ..अपने आंचल की छांह में। बहुत धूप लगती है अलग रहकर...

नाजबीबी की आंखों से आंसू बह-बहकर तकिये को भिगोने लगे थे।

ग्यारह

परतु नाजबीबी दूसरे ही दिन नहीं जा पाई थी। सोना उसे छोड़कर रुकने को कत्तई तैयार नहीं थी और उसे अपने साथ लेकर नाजबीबी जा नहीं सकती थी। रास्ते मे न जाने क्या मुसीबत आ पड़े? कौन है यह लड़की? तुम्हारे साथ कैसे? कही भगाकर या चुराकर तो नहीं लाई? तमाम तरह की समस्याएं उसकी कल्पना मे उभरतीं और घबड़ाकर वह सोना को साथ ले जाने का मन बिलकुल न बना पाती।

महताब गुरु और छैलू ने सोना को बहुत फुसलाया, घुमाने का वादा भी किया, परंतु सोना एक ही रट लगाए थी—मैं भी मम्मी के संग जाऊंगी। नाजबीबी ने कब से जोड़कर रखे थे कुछ रुपये, जिसमें वह मम्मी के लिए एक साड़ी पापा के लिए एक गरम शाल खरीदकर ले जाना चाह रही थी। उसमें से कुछ रुपये निकालकर सोना के लिए एक फ्राक और चाभी भरने पर झांझ बजाने वाला एक खिलौनेवाला बंदर खरीद कर दिया, तब सोना ने दबे स्वर में अपनी स्वीकृति दी—

"जाओ, लेकिन शाम तक वापस आ जाना।"

महताब गुरु ने धीरे से नाजबीबी को समझाया—

"तू जा अपने गिरिया से मिल आ। रात में सोना तो सो जाएगी। दूसरे दिन स्कूल से लौटने में ही उसे शाम हो जाएगी, तब तक तू लौट आएगी।"

नाजबीबी सोना को दुलरा-पुचकारकर महताब गुरु और छैलू की देखरेख मे छोड़ बस स्टेशन पर चली आई थी। महताब गुरु ने कहा भी कि छैलू तुझे बस पर चढ़ा आएगा, किंतु नाजबीबी ने ही मना कर दिया, क्योंकि वह नही चाहती थी कि छैलू भी जाने कि वह किस शहर जा रही है।

कानपुर की बस में बैठते ही उसका हृदय एक दुःख-मिश्रित खुशी से धडक रहा था—मम्मी से मिलने की खुशी! पर भाभी-भइया की मनाही और मम्मी की बीमारी से मन आगे-पीछे हो रहा था। उधर सोना की भी याद आ रही थी—रात में कहीं उठकर उसे ढूंढ़ने न लगे? पहली बार उसे छोड़कर वह रात-भर के लिए कहीं जा रही है। एक रात क्या, दो रातें भी हो सकती हैं। कहीं मम्मी ने प्यारवश जिद करके रोक ही लिया तो वह उनका दिल थोड़े ही तोड़ेगी। सोना रह ही लेगी किसी न किसी तरह। आने पर उसे वह मना लेगी।

नाजबाबी ने सिर का झटका दिया और खिड़की का शीशा थोड़ा खोल बाहर देखने लगी थी। सुबह के सूरज की सुनहरी किरणें उसके माथे पर पड़ रही थी। बस चल पड़ी तो उसने आगे और पीछे मुडकर एक सरसरी निगाह यात्रियो पर डाली थी। बस खचाखच भरी हुई थी। तीन-चार लोग खड़े भी थे छड़ पकड़कर। नाजबीबी ने अपने बगल की सीट को हाथ से पोंछते हुए खड़े एक यात्री से कहा—

''आप यहां बैठ जाइए, बाबूजी।''

''नहीं, नहीं, ठीक है। मुझे कुछ ही दूर पर उतरना है।'' वह यात्री कुछ घबराहट और उपेक्षात्मक लहजे में बोल उठा। उसके पीछे खड़े दो-तीन लोग मुसकरा रहे थे नाजबीबी के प्रस्ताव पर।

नाजबीबी को एक बार मन में आया कि कहे—

'क्या शैतान हूं, जो पास बैठने में डर लग रहा है...' पर अगले ही पल उसने अपने मन को समझा लिया था—शायद मेरे बगल में बैठने पर उसकी बेइज्जती हो।

और वह दोनों सीटों पर फैलकर बैठ गई। अपना सफेद दुपट्टा उसने सिर से ओढ़ लिया। आज मम्मी-पापा के सामने वह अपने हिंजड़ों वाली वेशभूषा म नही, बल्कि उनकी बेटी के रूप में जाना चाहती थी, इसलिए खूंटी पर टंगे सफेद समीज-सलवार को धोबी के यहां से धुलवाकर मंगाया था। कानों में छोटे टॉप्स और गले में एक पतली चेन पहन, हाथों में केवल एक-एक सफेद कड़े डाल दिए थे। दाढ़ी-मूंछ को नए ब्लेड से खूब रगड़कर बनाया था, ताकि अगले दो दिन तक ठीक रहे। माथे पर लाल बिंदी और होठों पर हलकी लिपिस्टक लगा ली थी।

बस हिचकोले खाती कानपुर की ओर बढ़ी जा रही थी और नाजबीबी का मन अपने विचारों में हिचकोले खा रहा था।

नाजबीबी ने महताब गुरु से फिर झूठ बोला था कि वह अपने गिरिया से मिलने दूर शहर जाना चाह रही है—सोना की फीस और आने वाले जाड़े के कुछ गरम कपड़े वगैरह खरीदने के लिए पैसे चाहिए। इधर बीच कोई धंधा भी नही है। दो-तीन घरों में बच्चा होने वाला भी है तो जाड़े के आखरी महीनों तक। मम्मी से मिलने की बात वह जानबूझकर छिपा गई थी। महताब गुरु उसे समझा चुके थे कि वहां का मोह पालने से तुम्हारी दुनिया में रहने वालों का सारा भेद इनसानी समाज को तो मिलेगा ही, साथ ही साथ तुम्हें और तुम्हारे परिवारवालों को दुःख भी होगा। यह बात उन्होंने आज से पंद्रह-बीस वर्ष पहले तब कही थी जब

नाजबीबी को इस दुनिया में आए मात्र चार-पांच वर्ष ही हुए होंगे। दिन-रात मम्मी-पापा को याद कर बिसूरती नाजबीबी ने एक दिन मन के हाथों विवश हो कानपुर अपने घर टेलीफोन मिला दिया था—

"हैलो मम्मी..."

मम्मी की आवाज सुनकर वह टेलीफोन पर ही रो पड़ी थी। कुछ देर तक तो मम्मी समझ ही नहीं पाईं।

"हां, कौन, आप कौन...बेटा?" उन्हें लग रहा था जैसे नंदन का कोई दोस्त बोल रहा है, क्योंकि इतने दिनों में नाजबीबी की आवाज पुरुषों की तरह मोटी भी हो चुकी थी। चेहरे पर श्यामवर्ण रोएं अब घनी दाढ़ी-मूंछ का रूप ले चुके थे और स्तन भी काफी उभर आए थे।

"नहीं, मम्मी...मैं हूं तुम्हारी नंदरानी!" नाजबीबी ने आंसुओं से रुंधे स्वर मे बताया तो उधर से मम्मी रोते-रोते टेलीफोन का रिसीवर चूमने लगी थीं।

"मेरी बच्ची, तुम कहां चली गई थीं?" मम्मी रिसीवर पर चुंबनों की झड़ी लगाती जा रही थीं, जैसे वह उनकी खोई हुई नंदरानी का माथा हो, और वे उसे अपने सीने में भर लेना चाह रही हों।

"मम्मी, मैं आप लोगों की बदनामी के कारण अपनी दुनिया में चली आई...हिंजड़ों की दुनिया में...मेरा हाथ-पैर अपंग होता, दिमाग खराब होता, तो भी शायद तुम रख सकती थीं लेकिन..." नंदरानी भावुकता में रो पड़ी थी।

मम्मी के पास भी रोने के अलावा कोई जवाब नहीं था। उन्होंने टेलीफोन पर उसका पता मांगा था और एक दिन पूछते-पूछते पापा के साथ उसकी बस्ती मे चली आई थी। पहले तो बस्ती के लोगों ने सोचा कि कोई यजमान होगा या फिर वरुणा के किनारे की जमीन का पट्टा कराने वाला ठेकेदार, क्योंकि यजमान तो बहुत कम ही आते थे उधर की तरफ। कभी-कभी ही किसी के घर बहुत आस-मुराद के बाद बेटा हुआ तो वह स्वयं उन लोगों को बुलावा देने आ जाता था गाने-बजाने के लिए। इसी बहाने एक दान-पुण्य कर, बच्चे की लंबी उम्र का आशीष इकट्ठा कर अपने मम को संतुष्ट करता था।

नाजबीबी स्वयं भी कल्पना तक नहीं करती थी कि मां की ममता मम्मी को बेटी से मिलने के लिए हिंजड़ों की बस्ती तक खींच लाएगी। धंधे पर से आकर अभी-अभी वह चारपाई पर लेटी थी। पैर के पास पड़ी पुरानी रजाई को खीचकर उसने सिर तक ढंक लिया। जाडे की धूप ढलकर वरुणा के कछारो मे चमक रही थी। उसने लेटे-लेटे खिड़की बंद कर दी। दरवाजा वह पहले ही उढका आई थी। कोठरी के एक कोने में स्टोव पर दालवाली अल्युमिनियम की बटुली

धुए से काली पड़ी रखी थी। आटा-गुंधी टिन की थाली में परथन के ऊपर जूठा बेलन और चौका औंधा पड़ा था। लोहे की बाल्टी में पानी भरा था, जिसमें स्टील का एक लोटा तैर रहा था। कोठरी की दीवारें कच्ची और फर्श पर सीलन-भरी बदबू थी। कुछ पैसे इकट्ठा कर लेने के बाद इसी मकान को नाजबीबी खरीदकर पक्का बनवा लेना चाह रही थी। वैसे भी यहां धीरे-धीरे हिंजड़ों की बस्ती बस जाने के बाद इधर के मकान या जमीन मालिक अपना मकान और जमीन बेचकर दूसरी जगह खरीद ले रहे थे, क्योंकि न बेचने पर उस पर अनधिकार कब्जा हो जाने का डर था और फिर कौन करता हिंजड़ों से कोर्ट-कचहरी?

दरवाजे की सांकल बजी थी तो नाजबीबी ने मुंह ढके-ढके ही पूछा—

"कौन है?"

"नाज, देखो तुमसे कोई..." बाहर से शबनम की आवाज सुनाई दी।

नाजबीबी ने समझा, वह मजाक कर रही है। उसे सोने नहीं देना चाहती। उसने रजाई को और ऊपर तक खींचते हुए कहा—

"ए मुरत, सांतरा बिहारी करके ए जो कि ममबी कर खुर चटका[1]।" और उसने हँसकर मुंह रजाई में छिपा लिया। अब तक नाजबीबी अपने हिंजड़ा समुदाय की सांकेतिक भाषा समझने और बोलने लगी थी।

"ए कड़े कर! ये जो चीसी जतवाई तेरा सुड्डी-मुड्डा लालगी[2]।" शबनम ने ऊंची आवाज में कहा।

नाजबीबी उछलकर चारपाई पर खड़ी हो गई थी। एक नजर उसने कोठरी मे बिखरे सामान पर डाली और जल्दी से ढोलक और घुंघरू को चारपाई के नीचे ढकेल दिया था। ढोलक से टकराकर घुंघरू छनछना उठे। उसने घबड़ाकर अपना माथा ठोंक लिया। साड़ी का पल्लू ठीक कर वह दौड़ती हुई दरवाजे तक गई थी। सामने सचमुच मम्मी और पापा को सचमुच खड़ा देख उसके सब्र का बांध टूट पडा था और वह मम्मी के सीने से चिपककर रो पड़ी थी।

मम्मी अपनी नंदरानी का यह नया स्वरूप देख जैसे काठ की हो गईं थीं। न उनसे रोते बन रहा था और न बोलते। बस, वे सीने से चिपकी नंदरानी का सिर सहलाती जा रही थीं और एकटक उसकी धुएं से काली कोठरी को निहारती जा रही थीं। किस्मत ने कहां से कहां ला पटका उनकी बेटी को! कहां साफ-सुथरे हवादार कमरे में रोज चादर बदलकर सोने वाली उनकी बिटिया और कहा सीलन-भरी दमघोंटू यह कोठरी। मम्मी की चुप्पी से घबड़ाकर नंदरानी ने अपना

---

1 मेरी साथी, उसके सामने नंगी होकर ताली बजा और नाच।

2 चुपकर। ये जो ऊंची कौम के हैं और अपने को तुम्हारे माता-पिता बताते हैं।

आसू भरा चेहरा उठाया था मम्मी का चेहरा पीड़ा और बेबसी के कारण लाल हो रहा था, परंतु आंखों से आंसू नहीं निकल पा रहे थे। बस वे अपना होंठ जोर-जोर से काटकर अपने को रोकने का प्रयत्न कर रही थीं। पापा भी भौंचक्के-से अपनी बेटी का रहन-सहन देख रहे थे। नंदरानी ने मम्मी को संभालकर चारपाई पर बैठाना चाहा तो वे एकाएक लुढ़ककर बेहोश हो गईं थीं। वह चिल्ला पड़ी थी—

"पापा, मम्मी को क्या हो गया?"

"घबड़ाओ मत, बेटी। एक गिलास पानी दो। अभी ठीक हो जाएंगी...जब से तुम घर छोड़कर आई हो तब से इन्हें अकसर ऐसा हो जाता है...जरा-सा कुछ सोच-भर लें..."

पापा की बातें सुनते हुए ही वह दौड़कर बालटी में तैर रहे लोटे को डुबाकर पानी ले आई थी। पापा-मम्मी के मुंह पर छींटे मार रहे थे और वह मम्मी के पैर के तलवे सहलाते हुए रोती जा रही थी—

"मम्मी...मम्मी...आंखें खोलो! आंखें खोलो मम्मी...मेरी वजह से तुमको कितना..." वह अपनी आंखों पर आंचल रख सिसक पड़ी थी।

"इनके सामने ज्यादा मत रोना, बेटी, नहीं तो..." पापा ने उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा। वे मम्मी के होश में आने की प्रतीक्षा कर रहे थे।

नाजबीबी अधीर होकर बोली—

"मैं क्या करूं, पापा? आप लोगों के बिना मैं भी नहीं जी सकती थी, पर आपको लोग नहीं जीने दे रहे थे। हारकर मैं इन लोगों के पास..."

नाजबीबी रोए जा रही थी और पापा सिर पर हाथ धरे कुछ सोच रहे थे।

नाजबीबी उठकर मम्मी का सिर सहलाने लगी थी।

"एक चम्मच है, बेटी?" पत्नी को अभी तक होश न आता देख पापा ने पूछा।

नाजबीबी का पूरा चेहरा आंसुओं से तर था। उससे रोते हुए कहा—

"पापा, चम्मच तो नहीं है। चाकू दूं?"

"लेकिन चाकू से चोट का डर...ऐसा करो, बेटा, वो कलछी दे दो...उसके डडे से..."

वह दौड़कर कलछी ले आई थी। उसके पिछले वाले चपटे भाग से पापा ने मम्मी के जकड़े दांतों को खोलते हुए उनके मुंह में पानी की कुछ बूंदें टपकाईं।

पानी गले में पहुंचते ही मम्मी ने आंखें खोल दी थीं। कुछ देर तक वे अजनबी आंखों से उसे निहारती रहीं मानो पहचानने का प्रयास कर रही हों। उनका

चेहरा अब पीला पड़ चुका था और उस पर पानी की बूंदें चमक रहीं थी। ठंड न लगे, इसलिए नाजबीबी अपने आंचल से उनका चेहरा पोंछने लगी। एकाएक मम्मी ने नाजबीबी का चेहरा अपनी दोनों हथेलियों में भर लिया और उसे अपने सीने पर चिपकाकर, हिलक-हिलककर रोने लगीं। नाजबीबी भी बच्चों की तरह उनके सीने में दुबकी रोए जा रही थी।

पापा ने भी अपने मफलर से अपनी आंखें ढंक लीं थीं। कोठरी का दृश्य बहुत ही उदास और कारुणिक हो उठा था।

"नाज, नाज...कौन आया है?" कोठरी में प्रवेश करते हुए महताब गुरु ने पूछा तो नाजबीबी कुछ अपराधी भाव से लज्जित हो कभी मम्मी-पापा को तो कभी महताब गुरु को देखने लगी थी। उसे समझ में नहीं आ रहा था कि वह किससे क्या कहे? मम्मी-पापा उसके इस नए नाम को सुनकर क्या सोच रहे होंगे? अभी महताब गुरु के पीछे-पीछे हिंजड़ा बस्ती के और लोग भी उत्सुकता वश कोठरी में भर जाएंगे। फिर पापा-मम्मी के मन पर क्या बीतेगी? जिन्हें देखकर सभ्य समाज में लोग हँसते हैं, उपहास करते हैं, उन्हीं के बीच उनकी बेटी की दुनिया है! उधर महताब गुरु क्या सोचेंगे? उनके मना करने के बाद भी नाज ने हिजड़ा समुदाय के नियमों को एक ओर कर अपने मां-बाप से संबंध बनाए रखा चुपके-चुपके!

"ये कौन हैं?" पापा जानते हुए भी अनजाने में पूछ बैठे।

"जी ये हमारे गुरु हैं। महताब गुरु। हम सब लोग इन्हीं के चेले होते है। यहीं बस्ती में ही, कोनेवाला मकान इन्हीं का है। बहुत मानते हैं हमें...आइए गुरुजी, बैठिए। ये हैं मेरी मम्मी और ये हैं पापा।" नाजबीबी ने दबे स्वर में परिचय कराया।

परिचय देते समय एकाएक उसके हाथ की ताली स्वाभाविक मुद्रा में बज उठी। वह खिसिया उठी अपनी आदत पर। इन चार-पांच वर्षों में हिंजड़ों की स्वाभाविक आदतें और हाव-भाव उसमें स्वयमेव आ गए थे। पापा की ओर कनखी से देखते हुए वह महताब गुरु के लिए चारपाई पर ही जगह बनाने लगी थी।

महताब गुरु अभी आकर चारपाई पर बैठे ही थे कि ढोलक पर थाप और तालियों से ताल मिलाते हुए, चमेली, कमला, मंजू और अकरम गाते हुए कोठरी में आकर ऊधम मचाने लगे थे—

"अरे मोरे रामा हो...तो बाबुल मोर...सुधि लीनो हो...अंचरे से खोरिया बटोरी त..."

चुप्प...: महताब गुरु की कड़कती आवाज सुनकर एकाएक उनका गाना-बजाना रुक गया था।

चमेली ताली पीटकर कमर लचकाते हुए महताब गुरु से बोली—

"अरे गुरुजी, रोज दूसरे के घर खुशी में गाते हैं। आज अपने घर में गा लेने दो। नाज के सुड्डा-सुड्डी को देखकर अपना भी कलेजा जुड़ा लेने दो न।" और पुनः उसने अकरम की ओर इशारा किया। अकरम ने ढोलक पर एक जोरदार थाप मारी और चमेली नाज के मम्मी-पापा के सामने अपना घूंघट निकाल नाचने का उपक्रम करने लगी।

"सासू कहेली बहुअर बाझिन हो, ननद बिरजवासिन हो..." मंजू और कमला ने अभी अपनी मोटी आवाज को एक लापरवाह अंदाज देते हुए गाना शुरू ही किया था कि महताब गुरु ने पुनः एक डांट लगाई—

"तुम लोगों का दिल भी बांझ हो गया है क्या? किसी की आंख में आसू नही दिखाई देता? देख नहीं रहे हो ये चीसी जतवाई के लोग अल्लाह की एक नाइसाफी पर किस तरह खून के आंसू रो रहे हैं? हमारी इस नापाक बस्ती में इन्हे यही मजबूरी खींच लाई न?"

नाजबीबी ने पापा के चेहरे की ओर देखा। आंखें पीड़ा और बेबसी की यात्रा करते-करते लाल हो रही थीं। मम्मी भी चारपाई पर उठकर बैठ गई थीं। बेटी की इस विचित्र दुनिया में वे अपनी कोख को ही अपराधी मान मन ही मन कोस रही थी। अपना माथा पकड़ वे चमेली और मंजू की ओर अपलक ताके जा रही थी।

गाना-बजाना रुक गया था। एक क्षण को कोठरी में एक दमघोंटू सन्नाटा फैल गया। चमेली लपककर मम्मी के पैरों के पास बैठ गई थी और अपने हाथो से उनके दोनों घुटनों को पकड़कर माफी मांगने लगी थी—

"मावा, हमें माफ कर दो...आपका दिल दुखाने के लिए हम ये सब नही कर रहे थे। हमारे लिए तो वह बहुत बड़ी बात है कि हमारी बस्ती में मां-बाप के पैर पड़े। धन्य भाग हमारे, मावा! कहां जाएंगे ये पैर? भगवान का कहर कि अपने मां-बाप को छोड़ हम जिंदगी-भर के लिए इस बस्ती में आ गए। अब वे जिंदा हैं या मुरदा, पता नहीं.,.आप लोगों ने सुधि ली, हम धन्य हुए, मावा।"

चमेली भावुकता में मम्मी के घुटनों पर सिर रख रोने लगी थी। मंजू, कमला और अकरम हतप्रभ-से इस दृश्य-परिवर्तन को देख रहे थे। मम्मी का हाथ एकाएक स्नेह से उठकर चमेली के सिर पर आ गया था और उसे धीरे से सहलाते हुए वे बोल पड़ीं—

"तुम्हारे मां-बाप कभी नहीं आए, बेटी?" मम्मी को उन सभी से

सहानुभूति-सी हो रही थी। उन्हें सबके चेहरे में अपनी बिछुड़ी नंदरानी दिखाई दे रही थी।

मम्मी का स्नेहिल स्पर्श और ममता-भरे बोल सुन चमेली विह्वल हो उठी थी। आज तक हँसी-मजाक या भद्दे इशारों के अलावा उन सबके जीवन में दूसरी भावनाओं ने लगभग दम-सा तोड़ दिया था, परंतु स्नेह-भरी मां की आवाज जैसे तपते रेगिस्तान में एकाएक झमककर हुई बरसात की तरह आंसुओं से सराबोर कर गई चमेली को। उसने आंचल से आंसू पोंछते हुए कहा—

"कहां, मावा? मां-बाप से दुबारा नहीं मिल सके हम। सोचते थे...क्या दुःख दें उन्हें?"

"उनकी याद नहीं आती?" मम्मी की उत्सुकता उन लोगों में थोड़ी बढ रही थी।

"क्यों नहीं आएगी याद? आती है तो रो लेते हैं...फिर अपने ही चुप हो जाते हैं।"

महताब गुरु भी चुप न रह सके और मम्मी से मुखातिब हो बोल पड़े—

"आखिर मां-बाप हैं। याद तो आएगी ही।"

"मां-बाप भी कोई भूलने वाली चीज है? पर मजबूरी में भूलना पडता है ऐसा न भगवान किया होता तो क्यों ये दिन देखते हम?" मंजू भी बोले बिना न रह सकी। सभी की आंखों में खारा समुद्र हिलकोरे लेने लगा था।

नाजबीबी को थोड़ी राहत महसूस हुई। वह कुछ सामान्य हो चली थी। उसने अकरम को हाथ में लोटा पकड़ाते हुए पांच का नोट अपने खूंट से खोलकर थमाया था—

"जा जल्दी से नुक्कड़वाले मल्लू साव की दुकान से चाय ले आ। स्पेशल बनवा लेना...और हां, पीने के लिए पुरवा भी ले लेना तीन-चार।"

अकरम ने अपने गले में से ढोलक उतारकर कोठरी में एक कोने में रख दी और लोटा लेकर बाहर निकल गया था। कुरते की बांह से आंसू पोंछते हुए उसे केवल नाजबीबी देख सकी थी।

"मावा, कानपुर में कहां रहती हो?" चमेली और मंजू के तमाम प्रश्न मम्मी को इधर-उधर से घेर रहे थे।

कमला चुपचाप बैठी बस, पापा और मम्मी को निहार रही थी।

"अम्मा, आप नाजबीबी को ले जाओगी अपने साथ?" कमला ने इस प्रश्न मे जहां एक ओर हसरत और उत्सुकता थी वहीं मम्मी के लिए यह प्रश्न एक चक्रव्यूह की तरह अभेद्य था।

नाजबीबी भी चौंककर मम्मी की ओर देखने लगी थी। मम्मी क्या उत्तर देगी, इस पर उसका ध्यान केंद्रित हो उठा।

स्वयं को उलझा पाकर मम्मी ने "नाज कौन?" के पहचाने प्रश्न को उछालकर अपने मन में निर्णय लेने हेतु थोड़ा अवकाश पा लिया था।

"यही, आपकी बेटी...अपने रीति-रिवाज के कारण हम नाम बदल देते हैं...यह बड़े नाज के साथ नाचती है, इसलिए इसका यह नाम अच्छा लगता है।" महताब गुरु बता रहे थे।

नाजबीबी पापा के सामने अपने नाचने की बात सुनकर अपमान से लज्जित हो रही थी।

"हम ले जाना तो चाहेंगे, पर यदि नंदरानी चलना चाहे तो..." पापा ने मम्मी से पहले ही एक उलझा-सा उत्तर नाजबीबी और सभी के सामने फेंक दिया था।

नाजबीबी के अंतर में टिमटिमाता दीया मद्धिम-सा हो उठा। पापा जिद करके ले जाते तो क्या...? कहीं न कहीं से उसे अपने साथ रखने में उन्हें हिचकिचाहट तो है, तभी न...

महताब गुरु ने तुरंत पापा का मनोविज्ञान समझ लिया। उन्होंने बहुत संयत स्वर में जवाब दिया—

"आप इस बस्ती में रह नहीं सकते बाबूजी, और अपनी बेटी को अपने साथ रख भी नहीं सकते...दुनिया में बदनामी और हँसी-हँसारत के डर से। हिंजड़ी के बाप कहलाना न आप बरदाश्त कर पाएंगे और न आपके परिवार के लोग। लूली-लंगड़ी होती यह, कानी-कोतर होती, तो भी आप इसे अपने साथ रख सकते थे...इसलिए इसे अब इसके हाल पर छोड़ दीजिए। यही उसका भाग्य था, यही बदा था...सोच लीजिए, मर गई, सब्र कर लिया।"

"नहीं, मत कहो ऐसा। जीते-जी मेरी बेटी को मत मारो...आखिर उसका क्या कसूर हैं इसमें?" अब तक चुप बैठी मम्मी कातर स्वर में लगभग रो ही पड़ी थीं।

नाजबीबी भी अपने आंचल में मुंह छिपा रो पड़ी।

"आखिर आप ही बताइए माताजी, ले जाएंगे इसे अपने साथ? नहीं न? आपके पड़ोसी हँसेंगे, रिश्तेदार ताना मारेंगे। आपके मरने के बाद कौन देगा दाना-पानी इसे?" महताब गुरु ने समझाया।

"मैं इसे पढ़ा-लिखाकर अपने पैर पर खड़ा कराऊंगी। किसी के भरोसे नहीं रहना पड़ेगा इसे।" मम्मी का तर्क कुछ कमजोर था।

महताब गुरु बेचारगी से हँस पड़े थे—

"यह आप नहीं, आपका प्रेम बोल रहा है, माताजी। किसी स्कूल में आज तक किसी हिंजड़ा को पढ़ते-लिखते देखा है? किसी कुरसी पर हिंजड़ा बैठा है? पुलिस में, मास्टरी में, कलेक्टरी में...किसी में भी?...अरे इसकी दुनिया यही है, माताजी...कोई आगे नहीं आएगा कि हिंजड़ों को पढ़ाओ, लिखाओ, नौकरी दो, जैसे कुछ जातियों के लिए सरकार कर रही है। हमारे लिए तो वो भी नहीं। माता-पिता, घर-परिवार-सबसे छुड़ाकर इस बस्ती में नाचने-गाने के लिए फेंक जाती है हमारी किस्मत। कोई कुछ नहीं करता। समाज भी नहीं, सरकार तो अपना वोट मागने के लिए उन्हीं के सामने चारा फेंकेगी न, जो रोज मुर्गियों की तरह अंडे देकर आबादी बढ़ाएंगे। हम कौन-से अंडे देने वाले हैं! अल्लाह मियां ने तो हमें वह नेमत दी ही नहीं।"

"अच्छा इसके लिए कहीं कोई और कमरा...साफ-सुथरा...किराये पर ही .हम हर महीने खर्च भेजते रहेंगे।" पिताजी ने महताब गुरु की बातों को बीच मे विराम देते हुए पूछा।

"अरे बाबूजी, कोई इनसान जल्दी अपने घर में किसी हिंजड़े को किरायेदार नही बनाता। वो एक जमाना था जब कुछ राजे-महाराजे अपनी रानियों की रखवाली के लिए अपने हरम में हम हिंजड़ों को रखते थे। रानियों के साथ हिंजड़े क्या कर पाते?...पर अब तो जमाना वो आ गया कि आजकल के इनसान हिंजड़ों तक को नही छोड़ते। रात में कभी-कभार हमने अपने बस्ती वालों को कई बार ट्रकवालो और पुलिसवालों के साथ पकड़ा भी है। बेचारे बीबी-बच्चे छोड़कर दूर रहते है तो क्या करें?" महताब गुरु फिर भटक गए थे मुख्य बात से।

नाजबीबी अंदर ही अंदर कुढ़ रही थी महताब गुरु पर। न जाने क्या पूरी पोथी बांचने लगे बस्तीवालों की? पापा क्या सोच रहे होंगे उसके बारे में?

"तो, इसी कोठरी को यदि खरीदकर पक्का बनवा लिया जाए तो..." पापा जैसे महताब गुरु की बात नहीं सुन रहे थे।

और पापा उसी दिन अपनी नंदरानी को दस हजार रुपये थमा तथा भविष्य मे भी भेजते रहने और इस कोठरी को पक्का बनवाने का आश्वासन दे चले गए थे।

जाते समय मम्मी बिलख-बिलखकर रो रही थीं।

"मेरी नंदरानी का खयाल रखिएगा आप। इसे कोई तकलीफ न हो। फूल की तरह पाला है मैंने।" कहते हुए मम्मी भावुकता में महताब के पैरों की ओर झुकीं थीं तो महताब गुरु चिहुंककर पीछे हट गए थे—

"अरे माताजी, आप भी दोजख में भेज रही हैं? अरे, हम तो खुद ही डरते हैं कि कहीं हमसे किसी का दिल न दुःख जाए। एक चींटी भी पैर के नीचे पड़ जाती है तो सोचते हैं कि इसके अंडे होंगे, बच्चे होंगे...आप निश्चिंत होकर जाइए, माताजी। पैसे-रुपये की भी चिंता मत करिए। बेसरा माता इतना दे ही देती हैं जजमानों के यहां से कि कोई खाने-पहनने की कमी नहीं। बाकी क्या बनाना है? किसके लिए? न आगे, न पीछे।" महताब गुरु का भी स्वर भीग गया था। सभी लोगों की आंखें छलछला आईं थीं।

नाजबीबी मम्मी के कंधे पर सिर रख कर सिसक पड़ी थी...

एकाएक बस झटके से रुकी तो नाजबीबी का वर्षों फैला अतीत सिमटकर वर्तमान बन गया। उसने हथेलियों से अपनी आंखें रगड़ीं। मम्मी के कंधे पर की सिसकियां आंखों में सागर की तरह अब भी लहरा रही थीं। उसने दुपट्टे के कोने से सागर सुखाया और बाहर की ओर देखने लगी। अभी बस बारीगंज तक ही पहुंची थी। कानपुर वहां से दूर है। शाम नहीं तो दोपहर तो हो ही जाएगी पहुंचने में। कानपुर उतरकर घर भी ढूंढ़ने में तो समय लगेगा। उसके घर छोड़कर चले आने के बाद बदनामी के भय से पापा ने दूसरी जगह घर ले लिया था। महानगर की भीड़ में कौन किसे पूछता है? फिर भी संस्कारी क्षत्रिय खून अपनी बदनामी की आशंका मात्र से उद्वेलित था। एक दिन टेलीफोन पर उसने पापा से नया पता पूछा था तो पापा ने हिदायत दी थी—

"बेटा, तुम्हारे भइया का स्वभाव अब पहले जैसा नहीं है। भाभी भी उसी जैसी है। इसलिए टेलीफोन से बात कर लिया करो। मैं तुम्हारी मम्मी को लेकर जल्दी ही आऊंगा।"

नाजबीबी समझ गई थी कि पापा नहीं चाहते कि वह उनसे मिलने जाए। स्वयं पापा भी तो तब से दो ही बार मिलने आए। वह भी एक बार मम्मी के साथ और एक बार अकेले। यानी इन पच्चीस वर्षों में मम्मी से दो और पापा से तीन मुलाकातें।

एक दिन उसने मंजू से पूछा था—

"क्या तुम्हें अपने मां-बाप याद नहीं आते?"

"क्यों नहीं? पर धीरे-धीरे न मिलने-जुलने से ममता फट जाती है। आदमी सब्र कर लेता है। वो तो जितना पास रहो, उतनी ही ममता-माया घेरती है।" मंजू ने अपने तन की तरह ही सपाट मन से उत्तर दे दिया था।

बस फिर चल पड़ी थी। नाजबीबी ने झोले में से पतावाला कागज निकाला

ओर ध्यान से पढ़ने लगी थी। मम्मी से एक दिन फोन पर पूछ लिया था उसने पता—बी-18, दिलदार नगर, कानपुर। अभी वह ठीक से पढ़ भी नहीं पाई थी कि एकाएक खुली खिड़की से एक तेज हवा का झोंका आया और उसके हाथ से कागज का टुकड़ा छीन ले गया था। वह अवाक्-सी पल-भर में अपने घर को उड़कर पीछे धूप और हवा के भंवर में चक्कर खाते देखती रही थी। अगले ही पल उसे होश आया तो उसने जोर से चिल्लाकर कहा—

"ऐ ड्राइवर रोको। बस रोको।"

"क्या हुआ? यहीं उतरना है क्या?" कंडक्टर ने उसके पास आते हुए पूछा।

वह झल्ला उठी—

"तुम्हारी सुड्डी के...रोको जल्दी।"

"अरे भाई क्यों?...क्यों सारे पैसेंजरों को परेशान करने के लिए ऐसी सवारियां बैठा लेते हो?" एक यात्री कंडक्टर को देखते हुए गुस्से में बोल उठा।

पीछे से दूसरे यात्री की आवाज आई—

"अरे, पैसा निकलने से इन्हें मतलब है। भैंस भी रास्ते में सिर हिला देगी तो ये बैठाने के लिए रोक लेंगे। यही तो कमी है प्राइवेट बसों की।"

"अरे भाई, कुछ बोलोगी भी, क्यों रोकना है?" कंडक्टर सबकी छींटाकशी से परेशान हो उठा था।

इतनी देर से पीछे दूर छूट चुके अपने कागज के लिए हताश हो चुकी नाजबीबी ने दयनीय स्वर में कहा—

"वो मेरे घरवाला पता...पतेवाला कागज पीछे उड़ गया, बाबूजी।"

"घर का पता? अपना घर नहीं जानती कि कहां से आ रही हो?" कहते हुए कंडक्टर ने बस रोकने के लिए सीटी बजा दी थी। बस रुकते ही नाजबीब उतरकर तेजी से पीछे की ओर दौड़ी थी—चारों तरफ देखते हुए, कहीं से वह कागज का टुकड़ा मिल जाए। सड़क पर पड़े एक-दो टुकड़ों को उठाकर देखा भी, पर वे नहीं थे। शायद इतनी बातचीत के दौरान वह टुकड़ा दूर कहीं पीछे उड गया था। उतनी दूर तक ढूंढ़ने का समय बस कंडक्टर नहीं देगा।

हताश कदमों से वह लौट आई थी। दिलदार नगर तो याद ही है। कोई भी रिक्शावाला पहुंचा देगा। वहां पहुंचकर वह पापा का नाम पूछते-पूछते पहुच जाएगी। थके कदमों से आकर वह अपनी सीट पर निढाल होकर बैठ गई थी।

बस फिर चल पड़ी थी। लोग आपस में कानाफूसी कर रहे थे और मुसकरा रहे थे।

बारह

''हा, आ जाइए अंदर।''

मानवी ने अपनी मेज पर सिर झुकाए हुए ही कहा। उसके कमरे के बाहर खड़ा कोई उससे अंदर आने की आज्ञा मांग रहा था। बीमारी के बाद अब वह ऑफिस आने लगी थी। इस समय भी वह अपनी अनुपस्थिति में आई चिट्ठियां पढ़ रही थी।

''जी, मैं राजवंश हूं। सेमहर गांव से आ रहा हूं। आपकी वो चिट्ठी मिली थी .उसी सिलसिले में आपसे कुछ...'' आगंतुक कुछ अटक-अटककर बोल रहा था।

मानवी ने चौंककर उसकी ओर देखा था। उम्मीद के बिलकुल विपरीत, उसके पत्र के आधार पर ही नारी उद्धारगृह की. पूनम का पिता...फिर भी मानवी ने शंका का समाधान कर लेना उचित समझा—

''आप ही पूनम के पिताजी...?''

''जी हां, मेरी लड़की पूनम घर से गायब तो है, पर पता नहीं आपसे वही मिली थी या...?'' आगंतुक ने अपनी शंका मानवी के सामने रख दी।

''बैठिए, बैठिए आप। उसकी आवाज तो पहचान जाएंगे न आप?'' मानवी ने उसकी शंका के समाधान के लिए पूछा।

''जी...।'' आगंतुक का स्वर कुछ दबा-सा था मानो वह आवाज पहचानने के झंझट में नहीं फंसना चाह रहा हो।

''आपका-नाम पता किसी दूसरे की लड़की को तो नहीं ही मालूम हो पाएगा न, राजवंशजी। फिर भी मैं आपको उसकी आवाज सुनवा देती हूं। इंटरव्यू लिया था मैंने...बहुत रो रही थी। पछता भी रही थी अपने इस मूर्खतापूर्ण कदम पर।'' मानवी पत्र छोड़कर कुरसी से उठ खड़ी हुई। अपनी अलमारी में वह कैसेट ढूढते हुए बोली—

''...अब बच्चों से ऐसी गलतियां हो जाएं तो उन्हें क्षमा कर देना चाहिए। यह अवस्था ऐसी है कि छोटी-सी बात भी तीर की तरह लगती है। और यदि सही मार्ग बताने वाला न मिले तो कदम भटक भी सकते हैं।''

मानवी कैसेट निकालकर पुनः अपनी कुरसी पर बैठ गई थी। इतनी देर से आगंतुक चुपचाप बैठा केवल उसकी बातें सुन रहा था। मानवी ने देखा, उसकी आखों में एक शून्य-सा तैर रहा था। बड़ी-बड़ी आधी सफेद मूंछों और भरे-भरे रोबीले चेहरे पर उथल-पुथल का भाव मंडरा रह था। धोती-कुरता के ऊपर पहने जैकेट और उस पर लटकते गमछे की दशा से वह मध्यम वर्गीय परिवार का, किंतु सभ्रांत व्यक्ति लग रहा था।

"देखिए राजवंशजी, वह फीचर पेपर में छपा हुआ है.. मैंने जानबूझकर सभी लड़कियों के साथ पूनम का पता प्रकाशित नहीं किया। अन्य लड़कियों ने तो अपने घर का पता बताया ही नहीं.. शायद वार्डेन ने मना किया हो या फिर.. बस सभी का एक ही उत्तर था— क्या करूंगी लौटकर? घरवालों की बदनामी होगी...पता नहीं अब इसके पीछे क्या कारण हो सकता है?" मानवी मानो स्वय से बोल रही थी।

"ठीक ही तो सोच रही थीं वे। उनके लौट आने से घर का नाम उजागर तो नहीं होगा। बल्कि दबी आग को हवा मिल जाएगी।" अब तक चुप बैठा राजवंश बोल पड़ा।

मानवी ने आश्चर्य से उसे देखते हुए पूछा—

"क्या आप भी ऐसा ही सोचते हैं? उन लड़कियों ने घर के बाहर कदम रख दिया तो इतना बड़ा अपराध कर दिया? क्या लड़के भागकर नहीं चले जाते? दस-पांच वर्ष बाद जब वो लौटकर आ जाते हैं तो क्या मां-बाप उन्हें सीने से नहीं लगा लेते?...फिर लड़की का यही अपराध इतना अक्षम्य?"

"देखिए बहनजी, लड़के और लड़की में यही तो फर्क है। लड़की लाज के साथ ही सुरक्षित मानी जाती है। लड़कों का क्या? वे तो बहता पानी हैं। लाख ढिंढोरा पीट लो, बहनजी, लेकिन लड़का-लड़की का भेद हमारे समाज से खत्म होने वाला नहीं। एक भी धब्बा उसके दामन पर लगा नहीं कि पूरी जिंदगी तबाह उसकी।" राजवंश शब्दों को चबा-चबाकर बोल रहा था।

मानवी को लगा जैसे सामनेवाला व्यक्ति उसे ताने मार रहा हो। उसने राजवंश की ओर तीखी दृष्टि से देखते हुए टेप का प्ले दबा दिया। पूनम की सिसकियों के बीच अस्फुट स्वर से कमरा भर उठा—

"बहुत पछताते हैं...क्यों घर छोड़कर आए...चिट्ठी भेजी थी पर लौट आई...मां...पिताजी रखेंगे तो चले जाएंगे, नहीं रखेंगे तो...तो फिर...(सिसकियां) कहां जाएंगे...?"

"बंद कर दीजिए, बहनजी, इसे।" राजवंश लगभग चीख-सा पड़ा था।

उसका चेहरा लाल हो उठा था और आंखों में आंसू छलछला आए थे। उसने गमछे से अपनी आंखें छिपाते हुए हथेली माथे से टिका ली।

मानवी ने टेप बंद कर दिया। और उसे सांत्वना देने वाले स्वर में बोल पड़ी—

"कितनी दुखी है आपकी लड़की? उसके इसी पश्चात्ताप वाले भाव और अपनी वॉर्डेन से छिपकर धीरे से अपना पता मुझे बता देने की भावना मेरे मन को छू गई थी, इसीलिए आपको पत्र लिखकर बुलवाया...जाइए, आप अपनी लड़की को उस उद्धारगृह से घर वापस ले जाइए। मेरे इस अखबार में फीचर लिखने का इससे बड़ा पुरस्कार दूसरा कोई नहीं।" मानवी का स्वर भावुक हो उठा।

राजवंश कुछ देर सिर नीचा किए, बिना बोले बैठा रहा। मानवी उसकी मनःस्थिति समझ रही थी। उसने बेल दबाई तारक उपस्थित हुआ था—

"क्या है, बिटिया?"

"बाबा, जल्दी से चाय पिलवा दीजिए...अच्छी-सी।" तारक बाहर चला गया। मानवी ने कैसेट निकालकर आलमारी में रख दिया और पुनः कुरसी पर बैठकर, चिट्ठियों को उलट-पुलटकर देखने लगी। वह राजवंश को संयत हो निर्णय लेने का पूरा अवसर देना चाह रही थी।

राजवंश दोनों कुहनियों को मेज पर टिकाए, हथेलियों में सिर थामे गुमसुम बैठा था।

चाय आ गई तो मानवी ने चाय का कुल्हड़ राजवंश की ओर बढ़ाते हुए कहा—

"लीजिए, चाय पीजिए...इसमें ज्यादा सोच-विचार करने की जरूरत ही क्या है? आपकी बच्ची है, एक गलत कदम भावावेश में उठा लिया तो पूरी जिंदगी उसकी अभिशप्त क्यों की जाए?" मानवी ने प्रश्नवाचक दृष्टि से राजवंश की ओर देखा।

"मुझे अभी सोचने का मौका दीजिए, बहनजी। इस तरह एकाएक मैं उसे घर कैसे ले जा सकता हूं? हमारी इज्जत है, मान-सम्मान है समाज में। कहीं थू-थू होने लगे तो? ऐसे तो हमने लोगों में यही फैला दिया है कि कहीं मर-बिला गई होगी। अब एकाएक साथ लेकर पहुंचूंगा तो लोग क्या कहेंगे?"

राजवंश ने एक सांस में चाय खत्म कर कुल्हड़ को जमीन पर लुढका दिया।

मानवी को गुस्सा आ गया राजवंश पर।

"कैसे बाप हैं आप? लड़की को घर मे मारते-पीटते थे, कभी नाराज होकर निकल ही गई तो अब उसे वापस रखने में समाज की आज्ञा लेंगे, तब रखेंगे?"

"घर में और भी तो लड़कियां हैं, बहनजी? वे क्यों नहीं निकल गई? अब जैसा किया है उसका फल वही भोगे...औरों को उसका फल क्यों भुगतना पड़े?"

"क्या मतलब? उसका फल औरों को कैसा?" मानवी ने कुछ व्यंग्य से पूछा।

"और क्या? दूसरी लड़कियों के शादी-ब्याह में कितनी अड़चन आएगी इसे आप क्या समझेंगी? आप तो सोचती हैं कि आपने जो छाप दिया तो वही तसवीर हो गई समाज की। अरे, उस तसवीर को पलटकर भी तो देखिए। कौन करेगा ऐसे घर में रिश्ता जिसकी एक बेटी भाग गई हो? आप करेंगी?" राजवश भी गुस्से में बोल रहा था।

मानवी ने शांत होते हुए कहा—

"आपकी लड़की है। यदि आप ही नहीं ले जाना चाह रहे हैं तो मैं क्या कह सकती हूं? मैंने तो बस मानवतावश आपको पत्र लिख दिया था कि आपको ले जाना हो तो ले जाएं आकर। वैसे तो वह पड़ी ही है उद्धारगृह में।"

"जी...मैं तो यही निवेदन करने आया था, बहनजी कि अब मेरे घर दूसरा पत्र मत लिखिएगा। उसकी मां ने जबसे पढ़ा है आपका पत्र, तब से दिन-रात रोती है। मैं हारकर यहां उससे यह कहकर आया कि जा रहा हूं पता करने। अगर अपनी पूनम हुई तो जरूर लेता आऊंगा।"

राजवंश की आंखें छलक आई थीं। कुरते की बांह से उसे पोंछते हुए उसने भर्राई आवाज में पुनः कहा—

"जाकर पूनम की अम्मा से झूठ बोल दूंगा कि वह अपनी पूनम नही थी .कोई और थी...बस, आप दूसरा पत्र न लिखना, बहनजी।" कहते हुए राजवश कमरे से निकलने लगा था।

मानवी को दया के साथ-साथ पूनम के दुर्भाग्य पर तरस भी आया। उसने जाते हुए राजवंश को रोककर पुनः कहा—

"ठीक है, मैं नहीं लिखूंगी पत्र। पर एक बार फिर अपने निर्णय पर आप विचार कीजिएगा, राजवंशजी!...हो सके तो एक बार उद्धारगृह जाकर उससे मिल आइए। तसल्ली तो हो जाएगी उसे।"

"क्या फायदा? मोह बढ़ेगा।" आंसुओं से रुंधे गले से बस इतना ही कह सका राजवंश और बाहर निकल गया।

मानवी थका-थकी-सी कुरसी पर पीछे टेक लगाकर बैठ गई थी। दोनो हाथों को पीछे ले जाकर उसने अपना सिर हथेलियों की जकड़न पर टिका लिया था और ऊपर छत की ओर देखते हुए पूनम और राजवंश की अलग-अलग स्थितियों पर विचार करने लगी थी। राजवंश उसे अधिक निरीह और परेशान लगा। मानवी को लगा जैसे उसने राजवंश को पत्र लिखकर ठीक नहीं किया। उसके शात पड चुके जीवन-सर में एक कागज का टुकड़ा फेंककर उसे आंदोलित कर दिया था उसने।

"बिटिया, तीन आदमी तुमसे मिलना चाह रहे हैं।" तारक ने मानवी के विचारों की शृंखला भंग की।

"भेज दीजिए, बाबा।" मानवी ने एक लंबी सांस खींचते हुए कहा। अपनी कुरसी पर वह सावधान की मुद्रा में बैठ गई।

तीन हट्टे-कट्टे नौजवानों ने उसके कमरे में प्रवेश किया था और बिना औपचारिकता के कुरसियों पर बैठ गए। मानवी को अच्छा नहीं लगा था और उसने अप्रिय लगने वाली ही एक सरसरी दृष्टि उन तीनों पर डाली थी। सबसे किनारे वाली कुरसी पर तीस-पैंतीस वर्ष का एक स्वस्थ युवक खद्दर का कुर्ता-पाजामा और जैकेट पहने, माथे पर लाल रंग का लंबा टीका लगाए बैठा था। वह बहुत ध्यान से मानवी को देख रहा था। मानवी ने झट उसके ऊपर से अपनी दृष्टि हटा ली और बीचवाले व्यक्ति को देखने लगी। पैंट-शर्ट पहने उस सांवले व्यक्ति की आखें आवश्यकता से अधिक लाल लग रही थीं। ऐसा लग रहा था जैसे वह नशे मे धुत हो। मानवी अंदर से थोड़ी सिहर गई थी। तीसरे व्यक्ति को बिना ध्यान से देखे ही उसने एक उड़ता-सा प्रश्न सबकी ओर उछाल दिया—

"जी, कहिए।"

"आप ही मानवीजी हैं नऽऽऽ?" खद्दरधारी युवक ने अपने 'न' को कुछ लबा खींचते हुए पूछा।

"जी हां। क्या काम है आपको?" मानवी ने अपने स्वर को थोड़ा नरम बनाने की कोशिश करते हुए पूछा।

"बोलती तो आप मीठा हैं, पर उसमें करेला का भी बास आ रहा है।" दूसरे कोनेवाले व्यक्ति ने जब व्यंग्य से कहा तो मानवी ने कुछ क्रोध से उसे देखा।

चेहरा कुछ जाना-पहचाना-सा लगा—गाढ़ा तांबई रंग, घुंघराले काले बाल और आवश्यकता से अधिक मोटे होंठों के किनारों से बहती पान की पीक। पैंतीस-चालीस वर्ष के उस युवक ने स्लेटी रंग की सफारी पहन रखी थी। मानवी

अपने मस्तिष्क पर जोर दे रही थी, परंतु याद नहीं आ रहा था कि उसे कहां देखा है।

तभी वह बोल पड़ा—

"हमें तो पहचान ही लिया होगा, मानवीजी, आपने? वही हरींद्र...कहा है आजकल आपका वह छोटा भाई मधुकर? हमने सुना था, वह भी नैनी से ट्रांसफर होकर यहीं शिवपुर में आ गया है?" कहते हुए हरींद्र व्यंग्य से हँस पड़ा।

मानवी को लगा जैसे वह चक्कर खाकर गिर पड़ेगी। इतने वर्षों बाद यह आदमी यहां बनारस में कैसे प्रकट हो गया? उसने अपने ऊपर नियंत्रण करते हुए साहस करके पूछा—

"तुम...आप यहां कैसे?" मानवी अपने ही प्रश्न में लड़खड़ा उठी थी। उसके भीतर घटनाओं का जैसे बवंडर-सा उठ रहा था।

मानवी के प्रश्न का सीधा उत्तर न देकर हरींद्र ने खद्दरधारी युवक की ओर इशारा करते हुए कहा—

"ये संतोष सिंह हैं। मन्नाबाबू मिनिस्टिर का नाम तो आप जानती ही होंगी? उन्हीं के चचेरे भाई...और ये हम लोगों के दोस्त साहब सिंह।"

"तुम तो पहले से ही परिचित निकल गए, भाई हरींद्र।" साहब सिंह बोल पडा।

"वो क्या था, साहब भइया कि सोचे हम भी नहीं थे कि इनसे ही हमारी मुलाकात हो जाएगी। बस, इसी को भाग्य कह लीजिए या दुर्भाग्य, क्यो मानवीजी? कहां के मिले, कहां बिछुड़े और फिर कहां आन मिले!"

हरींद्र बेहयाई वाली हँसी हँस रहा था।

मानवी यथासंभव सामान्य बने रहने की कोशिश करते हुए बोली—

"जी अकसर ऐसा होता है कि हम जिन्हें जहां उम्मीद करते हैं, वहां नही पाते और ऐसे ही अकस्मात् कहीं भेंट हो जाती है।"

"नहीं मानवीजी, मधुकर की तो पूरी खोज-खबर हम रखते हैं। कब नैनी मे था और कब बनारस आ गया? पर आप लोग भी प्रतापगढ़ छोड़कर बनारस आ गए हैं, इसकी तो हमें खबर ही नहीं।" हरींद्र के चेहरे पर कुटिल मुसकराहट नाच रही थी।

खद्दरधारी युवक को इन सबकी बातचीत अच्छी नहीं लग रही थी। उसने मुख्य मुद्दे पर आते हुए कहा—

"आप नारी उद्धारगृह गई थीं, कोई इंटरव्यू वगैरह लेने?"

"हां, वह तो प्रकाशित भी हो चुका।" मानवी ने कुछ सशंकित होते हुए

कहा।

"यह तो ठीक नहीं।" साहब सिंह ने लापरवाही से कहा।"

"क्या ठीक नहीं?" मानवी ने भय पर नियंत्रण रखते हुए पूछा।

उसके प्रश्न के उत्तर में खद्दरधारी युवक ने से ध्यान से घूरते हुए कहा—

"अरे मैडम, दूसरों को भी जीने-खाने दीजिए। अखबार में नौकरी करने का क्या मतलब कि आप तोप हो गईं और अगला उसका निशाना? यह ठीक नही है। आइंदा रीता देवी के पास परेशान करने मत जाइएगा और हां, वो डी.एम - वी.एम. का लेटर लेकर भी नहीं। आप तो जानती ही हैं कि बड़े-बडे अफसर भी मंत्रियों की जेब में रहते हैं। समझ गई न? यह ठीक नहीं है।"

मानवी समझ गई थी कि उसे नारी उद्धारगृह की लड़कियों का इंटरव्यू लेने और उसे छापने के बारे में धमकी दी जा रही है। उसका खून खौल उठा, परतु स्वयं को नियंत्रित रखते हुए उसने उन लोगों की ओर उन्मुख होकर पूछा—

"मैं यह तो नहीं समझ पा रही हूं कि आप ऐसा क्यों बोल रहे हैं? बस इतना जानती हूं कि रीता देवी भी समाजसेविका हैं और मैंने भी उन लड़कियों का हित चाहते हुए ही उस फीचर के लिए इंटरव्यू लिया था। कोई दुर्भावना तो नही थी। फिर भी यदि रीता देवी को कोई कष्ट हुआ हो तो क्षमा करें।"

"आपने क्षमा मांग लिया.. ठीक है। हम आगाह करने आए हैं कि आग मे कूदने से पहले अपने कुंदन-से शरीर का ध्यान रखिएगा। यह फौलाद का तो नही बना है!" साहब सिंह नशे से धुत आवाज में न जाने क्या बकता जा रहा था।

मानवी का क्रोध आपे से बाहर हो उठा। उसने तड़पकर कहा—

"क्या बकवास कर रहे हैं आप? मेरी विनम्रता का अर्थ अगर कायरता से ले रहे हों तो भूल जाइए, मिस्टर! जुबान को नियंत्रित रखकर ही बोलिए।" अत्यधिक क्रोध के आवेश में मानवी जितना कड़ा बोलना चाह रही थी शायद उतना नहीं बोल पाई थी। अक्सर क्रोध के क्षणों में विवेक के साथ भाषा भी साथ छोडने लगती है।

"हे मैडम, ज्यादा तैश में न बोलो! औरत हो, औरत की तरह रहो। लक्ष्मीबाई बनने की कोशिश न करो।" खद्दरधारी युवक व्यंग्य से बोल रहा था।

हरींद्र ने कुटिलता से मुसकराते हुए कहा—

"मानवीजी, तेवर आज भी नहीं बदले आपके। इसी का तो मैं फैन था शुरू से। पर रीता देवी और नारी उद्धारगृह की ओर अब मुंह मत करिएगा। यह ठीक नही होगा। क्या समझीं? ठीक?"

और तीनों कमरे से बाहर निकल गए थे।

मानवी हतप्रभ और क्रोध से तिलमिलाती कुछ देर खड़ी रही, फिर निढाल होकर कुरसी पर बैठ गई। हरींद्र का चेहरा बार-बार सामने नाच उठता। यह कैसे यहां आ पहुंचा? क्या फिर उसे यह शहर छोड़कर जाना होगा? पर कहां और कब तक? क्यों वह हरींद्र से डरती और भागती रहे? फिर मधुकर भी तो यहीं है। उसका अपना छोटा भाई। उसे क्या बताएगी? क्या बीतेगी उसके दिल पर? हरींद्र और उसके मित्रों की नीयत बहुत अच्छी नहीं थी। नारी उद्धारगृह को लेकर उसे धमकियां देने आए थे। कहीं जरूर कुछ गड़बड़ है! इस शहर में अकेली वह नौकरी नहीं कर रही है। बूढ़े मां-बाप को यह सब वह कैसे बताए? कितना असहाय महसूस करेंगे वे? बड़े भइया-भाभी के उस दुर्व्यवहार के बाद वह उन्हें किसी भी प्रकार का तनाव नहीं देना चाहती।

मानवी के मस्तिष्क में विचारों का मंथन तेजी से चल रहा था— उसे डी.एम. आनंद कुमार से मदद लेनी चाहिए? पर उन लोगों ने तो डी.एम. की मदद न लेने की भी परोक्ष धमकी दी है। तो क्या वह अकेली हरींद्र और उसके उच्छृंखल दोस्तों की अनर्गल बातें सुनती रहे और घुटती रहे। फिर इस तरह ब्लैकमेल होते हुए तो उसका जीवन और कैरियर दोनों ही बरबाद हो जाएगा। उसे आनंद कुमार को सब कुछ बता देना चाहिए।

पर अपने बारे में वह सब कुछ उन्हें कैसे बताए?

मानवी संकुचित हो उठी, पर अगले ही पल उसने अपने मन से तर्क किया— किसी अजनबी लड़की के साथ कोई भी हादसा हो सकता है, उससे डी.एम. का व्यक्तिगत क्या नाता? वह आनंद कुमार के लिए तो शहर की एक सामान्य लड़की मात्र है और प्रशासनिक अधिकारी के रूप में उसकी सुरक्षा उनका कर्तव्य है। इसके अलावा आनंद कुमार से उसका क्या संबंध जो वह संकोच करे?

मानवी ने टेलीफोन मिलाकर अर्दली से डी.एम. से बात करवाने का निवेदन किया था।

''हैलो! आनंद कुमार इज हियर।'' आनंद कुमार की भारी-भरकम आवाज सुनाई पड़ी तो मानवी का मन हुआ कि वह इन स्वरों की गहराइयों में छिपकर सुरक्षित हो जाए। उसका स्वर भावुक हो उठा।

''जी, मैं मानवी।''

''हां, हां, बोलिए, मानवीजी!''

''जी, वो मुझे आपसे कुछ व्यक्तिगत बात करनी है। पर...''

''व्यक्तिगत...? बोलिए।'' आनंद कुमार फोन पर ही आश्चर्यचकित प्रतीत

हा रहे थ।

"जी, क्या आप मुझे थोड़ा समय देंगे? मैं बहुत परेशान हूं। आपके सामने बैठकर ही बता पाऊंगी।" मानवी ने किंचित् संकोच के साथ कहा।

"ठीक है। कल तो आवश्यक मीटिंग है लखनऊ में मुख्यमंत्रीजी के साथ। परसों सुबह आप मुझसे बंगले पर मिल लें, आठ से नौ के बीच।"

"जी, ठीक है। धन्यवाद, सर।"

और दोनों तरफ से टेलीफोन रख दिया गया था।

मानवी की आंखों में अपनी असहायता पर आंसू झिलमिला उठे थे। आज वह जल्दी घर पहुंच जाना चाहती थी।

तेरह

दिलदार नगर पहुंचकर नाजबीबी ने रिक्शेवाले को पैसे देकर छोड़ दिया और पैदल ही गली में घुस गई थी। गली क्या, पूरी पक्की और साफ सड़क। नाजबीबी ने मन ही मन अपनी बस्ती की गली से अपने पापा के घरवाली गली की तुलना की और गर्व से भर उठी। उसके पापा मेजर हैं। पर अगले ही क्षण उसका मन बुझ गया। वह क्या है अब? फिर पापा भइया की धन-संपत्ति से उसका क्या लेना-देना? संबंध तक तो रख नहीं सकती। मम्मी-पापा के बाद सब खत्म।

उसका मन मसोस उठा। उसने अपने विचारों को परे धकेलते हुए सामने के घर का लोहे का बड़ा दरवाजा खटखटाया। एक महिला ने अंदर से झांककर रुखाई से पूछा—

''क्या है?''

''वो आंटीजी...'' नाजबीबी ने अपने स्वर में संबंध की मिठास घोलने की कोशिश करते हुए कहा।

''क्या कहा? आंटीजी?...अरे, तुम्हें भी मैं आंटीजी लग रही हूं?'' महिला भड़क उठी थी।

नाजबीबी ने ध्यान से महिला को देखा। सचमुच पैंतीस-चालीस साल से ऊपर उम्र नहीं रही होगी उसकी। नाजबीबी ने स्वयं को सुधारते हुए कहा—

''माफ करिएगा, बहनजी, वो मेजर साहब का घर आप जानती हैं?''

''कौन मेजर?...आगे जाकर पूछो। यहां कोई मेजर-वेजर नहीं।'' कहते हुए महिला अंदर चली गई।

नाजबीबी आगे बढ़ चली। किसी-किसी मकान के बाहर लगे नेम-प्लेट को भी वह पढ़ने का प्रयास करती, परंतु पापा का नाम कहीं दूर-दूर तक नहीं दिखाई दे रहा था। उसका दिल रह-रहकर धड़क उठता। पापा ने मना किया था आने को। नंदन भइया से डर से शायद...शायद अपनी भी बदनाम के डर से...पर मम्मी अब बोल भी नहीं पा रही हैं बीमारी के कारण...आखिर कैसे न आती वह? उसका कलेजा पत्थर का तो नहीं हो गया! मजबूरी में वह अपने परिवार से दूर रहने को विवश है।

"ए भइया, इधर कोई मेजर साहब रहते हैं?" उसने बगल से गुजर रहे एक सज्जन से पूछा।

"हम स्वयं ही बाहर से आए हैं।" वह व्यक्ति जल्दी से उत्तर दे तेज कदम बढ़ाता चला गया था।

नाजबीबी समझ गई थी कि कोई भी उसके प्रश्न का उत्तर क्यों नहीं देना चाह रहा है? अकसर एक जजमान के यहां बच्चा होने की खबर दूसरे जजमानो के यहां बहुत हँसी-ठिठोली करने के बाद ही पता चलती थी। शायद इस गली मे भी लोग यही सोच रहे होंगे कि वह किसी जजमान के यहां वसूली करने जा रही है नाच-गाकर। नाजबीबी ने पल-भर रुककर अपने को नीचे से ऊपर तक निहारा था। सब ठीक तो था। न डामरी[1], न छमकने[2]। कपड़ा भी ठीक-ठाक। उसने सिर झटकते हुए दुपट्टे को फिर से आगे फैलाकर ले लिया था और पर्स को बगल में दबाकर चलने लगी थी।

"ओ माताजी, यहां कहीं मेजर साहब रहते हैं?" नाजबीबी के प्रश्न पर आगे चल रही बूढ़ी औरत ने पीछे पलटकर देखा।

"पर उनके यहां तो..."

बूढ़ी औरत के चेहरे पर उलझन की रेखाएं देखते ही नाजबीबी को लगा जैसे वह अपनी मंजिल के पास पहुंच गई है। उसने झट बात संभाली थी—

"वो माताजी, कोई वैसा कारण नहीं है। बस उनसे मिलना, है...मिलना "

"वो सामने वाला तीन मंजिला फ्लैट है न? उसी में रहते हैं शायद।" बूढी औरत ने उंगली से इशारा किया और चली गई थी। नाजबीबी ने एक बार उस फ्लैट को नीचे से ऊपर तक निहारा था। मानो उसकी मम्मी उसके सामने खडी हो और वह उन्हें हसरत से निहार रही हो। उसे फ्लैट पर प्यार आ गया था और उसने वहां खड़े-खड़े हवा में ही उसकी बलैया लेकर दोनों हाथों की उंगलियो को माथे से लगाकर चटकाया था। एकाएक दो जोड़ी आंखें उसके पूरे शरीर मे बर्छी की तरह चुभने लगी थीं...ये आंखें भइया-भाभी की थीं जो कह रहीं थीं कि तू किससे पूछकर हमें बदनाम करने इस मुहल्ले में भी आ गई...मम्मी की आखो मे आंसू उमड़ रहे थे और वे विवशता में उसे लहूलुहान होते देख रही थीं। पापा ने दुखी हो दीवार की ओर मुंह फेर लिया था। वह तड़प रही थी और बर्छियां सीने को पार करती चली जा रही थीं...एकाएक पापा पलटे थे और जोर से दहाडे थे—'खबरदार! जब तक मैं हूं, कोई मेरी बच्ची को छू नहीं सकता। मेरे न रहने पर वह नहीं आएगी...और वह दौड़कर मम्मी के सीने से चिपक गई थी। सीने

---

1 ढोलक, 2. घुंघरू

से रिसता खून मम्मी के आंचल पर सूखने लगा था...

नाजबीबी ने एक ठंडी सांस लेकर अपने विचारों को फिर एक पटकनी लगाई थी, जिन्होंने एकाएक फ्लैट देखने में उलझी उसको आकर सहसा दबोच लिया था। उसने माथे पर छलक आए पसीने को दुपट्टे से पोंछा था और धड़कते हृदय से फ्लैट की ओर बढ़ चली।

"मेजर साहब यहीं रहते हैं?" फ्लैट के निचले हिस्से में रहने वाली एक महिला से उसने डरते-डरते पूछा।

"वो, जिनके लड़के वन विभाग में हैं?" महिला ने उलटे उसी से प्रश्न कर दिया था।

एक क्षण को नाजबीबी अचकचा गई थी। आज तक उसे यह तो पता ही नहीं था कि जिस भइया को वह इंटर में पढ़ता छोड़ गई थी वह अब किसी नौकरी में भी होगा। पापा से भी कभी इस विषय में बात नहीं हो सकी थी। शायद बातचीत में उन्होंने बताया भी...तो इतना याद ही नहीं आ रहा था कि किस विभाग में? उसने झट उत्तर दिया था—

"जी, नंदन नाम है उनका।"

महिला ने ऊपर सीढ़ी की ओर इशारा करते हुए बताया—

"ऊपरवाली मंजिल रहते हैं। पर इस मौके पर भी...?" महिला के अंतिम वाक्य पर ध्यान दिए बिना ही नाजबीबी लंबे-लंबे डग भरते हुए सीढ़ियां चढ़ने लगी थी। ऊपर मंजिल पर चढ़कर वह दरवाजे के सामने एक क्षण को ठिठक गई थी। सामने दीवार पर 'नंदन रघुवंशी' का सुनहरा नेम प्लेट ढलते सूरज की पीली किरणों से जगमगा रहा था। उसने अपने मन को संयत करने का प्रयास किया। आज इतने दिनों बाद अपने घर के सामने खड़ी होकर भी उसकी हिम्मत अंदर घुसने से जवाब दे रही थी। बार-बार भर आ रही आंखों को पोंछते हुए वह सभी के प्रश्नों के उत्तर के उत्तर मन ही मन दुहरा रही थी।

'पापा, मैं आपकी बात नहीं मान सकी।'

'मम्मी...कुछ तो. बोलो...देखो, मैं केवल तुम्हारे लिए इतनी मुश्किलें झेलकर आ गई हूं...बस एक बार अपनी नंदरानी को आशीर्वाद दे दो.. पता नहीं फिर इस जन्म में भेंट हो कि न हो, मम्मी...'

'भइया, आपकी बदनामी नहीं होगी। मैं बस, मम्मी को देखने आई हूं। मुह-अंधेरे चली जाऊंगी।'

'भाभी, नाराज मत होना। तुम्हें भी तो नहीं देखा था कभी। मम्मी के बहाने ही ..'

नाजबीबी ने फिर भर आई आखो को दुपट्टे से रगड़कर पोछा था और दरवाजे पर दस्तक दी। कुछ देर बाद पांच-छः वर्ष के बच्चे की आवाज आई—

"कौन है?"

नाजबीबी को एकाएक सोना की याद आ गई थी। उसने प्यार से कहा—

"बेटा, खोलो। मैं हूं..."

बच्चे ने दरवाजा खोला तो सामने नाजबीबी को देखकर चौंक गया और भयभीत-सा पीछे की ओर भागा।

"मम्मीऽऽऽ..." उसकी आवाज गले में फंसी रह गई थी।

"क्या है, गोलू? कौन है?" एक तीस-पैंतीस वर्ष की महिला सामने से दौडती हुई दरवाजे की ओर आई थी।

नाजबीबी खिसियाई-सी खड़ी थी।

"क्या बात है? तुम लोगों को वक्त-बेवक्त भी अब नहीं सूझता?" महिला झल्ला पड़ी थी। उसके बाल उलझे थे और आंखें कुछ सूजी हुई लाल-लाल थीं। लग रहा था जैसे वह कुछ देर पहले ही सोकर उठी हो।

"नाराज मत होइए...आप नंदन भइया की बीवी हैं?"

"तुम इतना इतिहास-भूगोल जानकर क्या करोगी? जाओ, अभी जाओ. इस मौके पर भी अब तुम लोग पहुंचने लगीं...हद हो गई।" लगभग चीखते हुए वह महिला दरवाजा बंद करने के लिए आगे बढ़ी।

नाजबीबी कुछ दृढ़ता से आकर दरवाजे के बीच में खड़ी हो गई। हाथ जोडकर बोली—

"भाभी, आप मुझे नहीं पहचानतीं, पर मैं आपके बारे में सुन चुकी हू इसलिए जानती हूं। पहचानती मैं भी नहीं थी। मेरी विनती सुन लो, भाभी।"

नाजबीबी गिड़गिड़ा रही थी। महिला ने आश्चर्य से उसे देखा। आज तक हिजड़ों को गाली-गलौज, जोर-जबरदस्ती करके नाचते-गाते, नेग लेते ही देखा था उसने, पर यह तो गिड़गिड़ा रही थी।

"आप नंदन भइंया की बीबी ही हैं न?" वह पूछ रही थी।

"हां, क्यों?"

"भाभी, मैं आपकी छोटी ननद हूं...नंदरानी। शायद भइया ने आपको बताया हो?"

"ननद? और तुम? मुझे तो नहीं मालूम।" वह हैरान थी।

चौंककर अगल-बगल देखा उसने कहीं कोई सुन तो नहीं रहा है? कितना हँसेगे लोग? मजाक उड़ाएंगे कि एक हिंजड़ी उसकी ननद। उसने जोर से उसे एक

झिड़की दी—

"यह कौन-सी बदतमीजी है? शर्म नहीं आती इस समय मजाक करते हुए? मेरे घर में मौत हुई है और तुम्हें हँसी-मजाक सूझ रहा है? यह भी कोई मौका है आने का?"

नाजबीबी का हृदय किसी बुरी घटना की आशंका से कांप उठा। उसकी आंखों के सामने अंधेरा-सा छाने लगा। उसने सहमी-सी आवाज मे पूछा—

"भाभी, क्या मम्मी..?"

"हां, मेरी सास बीमार थीं, कई महीनों से...आज दोपहर में ही...लोग एक घंटे पहले ही रामघाट लेकर गए हैं।"

वह फिर रो पड़ी थी।

नाजबीबी अपना सिर थाम वहीं जमीन पर बैठ गई थी। उसे चक्कर जैसा आ गया था। हाथों की ओट में झुकी पलकों के नीचे का ज्वार उसकी भाभी नही देख सकी थीं और उसकी बात को एक हिंजड़े का मजाक समझ दरवाजा बंद कर अंदर चली गई थीं।

दरवाजा बंद होने की आहट से नाजबीबी ने आंसू-भरा अपना चेहरा ऊपर उठाया था। सामने सूनी-सूनी पत्थर की दीवार पर उसके भइया का नाम जड़ा दिखाई पड़ा था।

"मम्मीऽऽऽ...तुम छोड़कर चली गईं मुझे?...अब किसका आसरा करूंगी मम्मीऽऽऽ...किससे बात करके मन को तसल्ली दूंगी?...तुम चली गईं, मम्मी...अब किसे मम्मी कहकर पुकारूंगी?...अपनी ठोकर खाती नंदरानी को आशीर्वाद भी देकर नहीं गईं कि अगले जनम में भी मैं तुम्हारी ही कोख से पैदा होऊं?"

घुटी-घुटी सिसकियों के बीच नाजबीबी बुदबुदा उठी। एकाएक उसे लगा जैसे मम्मी उसे रामघाट पर बुला रही हैं। वह तेजी से सीढ़ियां उतरी और दौड़ती हुई मुख्य सड़क पर आ गई। जल्दी मे एक रिक्शेवाले को रामघाट चलने के लिए तैयार किया था और कूदकर रिक्शे पर बैठ गई थी।

श्मशान घाट पहुंचकर वह बौखलाई-सी, आंसुओं से धुंधलाई आंखों से मम्मी की चिता और पापा का चेहरा खोज रही थी। दो चिताएं जल रही थीं। एक चिता के इर्द-गिर्द एक आदमी सफेद धोती में लिपटा हाथ में कुश पर आग रखे चिता के फेरे लगा रहा था। नाजबीबी का दिल जोर से धड़क उठा— कहीं पापा तो नहीं। दौड़कर चिता के पास पहुंच गई।

"ऐ...ऐ...तुम कहां?"

वहां खड़े लोगो में से एक चिल्लाया। हिंजड़े की उपस्थिति कहीं अशुभ न

हो– इस आशंका से कई लोगों की आंखें सिकुड़ गईं। तब तक मुखाग्नि देने वाले व्यक्ति का चेहरा देख नाजबीबी निराश हो उठी थी– ये उसके पापा नहीं थे। वह लोगों की भीड़ में से रास्ता बनाती हुई नदी की ओर बढ़ने लगी।

लोग उसे आश्चर्य से देख रहे थे, कानाफूसी कर रहे थे–

"पहली बार कोई हिंजडा श्मशान घाट पर दिखाई पड़ रहा है।"

"पर इन लोगों के अंतिम संस्कार का तो किसी को पता ही नहीं चल पाता।"

"आप तो पुलिस में रहे हैं, रमेशजी! आपने कभी इनकी मइयत जाते देखा है क्या?"

"नहीं भाई, आज तक तो नहीं। पर इस पर खोज होनी चाहिए कि आखिर ये अपने मुरदों का करते क्या हैं?"

"सुना है, रात में कब्र में गाड़ देते हैं, वह भी अपनी ही बस्ती में। और उस पर...जूते-चप्पल से पीटते हैं, थूकते हैं और इस योनि में दोबारा जन्म न लेने की बात कहते हैं।"

"पर आखिर यह भी तो हिंजड़ा है।"

"लेकिन अकेले तो मुरदा फूंकने आया नहीं होगा? कोई और भी तो साथ होता इसकी बिरादरी का?"

"कोई बात नहीं। हिंजड़ों का आना कहीं भी अशुभ नहीं होता।"

"फिर अब श्मशान से बढ़कर अशुभ बात क्या होगी जो इसके आने से होगी?"

नाजबीबी को देखते हुए लोगों की बातचीत और उत्सुकता जारी थी। पिंडदान कराने वाला पंडित भी लगातार उसे ही देखे जा रहा था। पहली बार वह किसी हिजड़े को श्मशान घाट पर देख रहा था। अधबुझी चिता के अंगारे पर आटे की बाटी सेंक रहा एक तेरह-चौदह वर्ष का बच्चा भी उसे देखते हुए बाटी की जगह हाथ से एक जलते अंगारे को पकड़ चौंक पड़ा था और तेजी से अपना हाथ पेट पर मलने लगा था।

दूसरी वाली चिता भी मद्धिम हो चली थी। उसके परिजन नदी में नहाने की तैयारी कर रहे थे। मुखाग्नि देने वाले व्यक्ति ने एक घड़े में पानी भरकर अपने कंधे के पीछे से बिना देखे ही चिता पर पानी फेंक आग ठंडी करने की रस्म निभाई थी और बिना पीछे पलटे ही आगे की ओर चल पड़ा था।

चिता जलाने के स्थान से थोड़ी ही दूरी पर नहाने का घाट बना था।

एकाएक लोगों ने देखा था कि चिता ठंडी कर चलने वाले उस वृद्ध व्यक्ति

वहीं बैठ, दोनों हाथों में चेहरा छिपा, फूट-फूटकर रोने लगी थी।

लड़के को उस पर दया आ गई थी। उसने सधे हाथों से चिता के सिरहाने की तरफ की कुछ जली लकड़ियों और अंगारों को लाठी से हटाया और कोई सफेद-सी चीज नाजबीबी की ओर ठेलते हुए कहा—

"ये आपकी मम्मी के दांत हैं।"

नाजबीबी ने लपककर दांत को उठाना चाहा था, पर हाथ जल जाने के कारण केवल उसे छूकर रह गई थी।

"ऐ संभाल के...आग में से निकला है!" लड़के ने सावधान किया। पर नाजबीबी तो जैसे मम्मी के दांत देखकर विह्वल हो उठी थी। उसने दुपट्टे से पकड़कर उसे उठा लिया और पागलों की भांति विलाप करने लगी थी।

"...मम्मीऽऽऽ...मेरी मम्मीऽऽऽ!"

"बेटी नंदरानी! चलो। सभी लोग जा रहे हैं।" पापा उसके सिर पर हाथ रखे सूनी आंखों से चिता की ओर देख रहे थे। नंदन और अन्य नाते-रिश्तेदार कुछ दूर जाकर खड़े थे।

"पापा, देखो...मम्मी के दांत...मेरी मम्मी के दांत...इसी से कूंच-कूंचकर वह हम लोगों को दातुन कराती थी...इसी से फोड़कर वह हम तीनों बच्चों को मूंगफली खिलाती थी...पापा मेरी मम्मी के दांत..."

नाजबीबी दांत को लेकर बिलख रही थी और उधर नंदन अपने श्वसुर के पास खड़ा-खड़ा दांत पीस रहा था—

"ये पापा, एक और नाटक शुरू कर दिए हैं। मैं देखता हूं जाकर..." नंदन क्रोध में पापा और नाजबीबी की ओर आने के लिए उद्यत हुआ तो उसके पड़ोसी ने रोक दिया—

"अरे भाई नंदन, इस समय तुम्हारे पापा का मन दुखी है। कोई ऐसी-वैसी बात मत करो। जाने दो।"

"अरे, रमन भाई, आप नहीं जानते। इनकी वजह से हम लोग कहीं मुंह दिखाने लायक नहीं रहे। अब बचा ही क्या है? मुझे जाने दीजिए!" कहते हुए नदन दनदनाता हुआ नाजबीबी और मेजर साहब के पास जा पहुंचा था।

"भइया, देखो मम्मी के दांत...मम्मी छोड़कर चली गई, भइया हमेंऽऽऽ..." नाजबीबी पुनः नंदन को देख बिलख पड़ी। उसे लगा जैसे नंदन भी उसे पहचानकर मिलने आया है।

पर नंदन ने बड़ी बेरुखी से कहा—

"अब तो तुम जितना भद्द कर सकती थी हमलोगों का कर ही लिया। अब

कृपा करके चली जाओ यहां से।''

''लेकिन, वह कहां जाएगी?'' पापा अचानक विक्षिप्तों की तरह बोल पड़े। नंदन ने उनकी बांह पकड़ लगभग घसीटते हुए उत्तर दिया।

''जहां से आई है, वहीं जाएगी, और कहां?''

''पर नंदन, उसे यहां से तो लेता चल! तेरी छोटी बहन है। इतना कठोर कैसे बन रहा है? भगवान ने उसके साथ अत्याचार किया है, तू तो न कर।'' पापा ने अपनी बांह छुड़ाते हुए नंदन से गिड़गिड़ाकर कहा।

''अब तुम मेरी भी चिता जला लोगे तब चैन लोगे क्या, पापा?'' नंदन के इस वाक्य पर पापा आहत-से उसका मुंह देखने लगे।

नाजबीबी अपने दुपट्टे में मम्मी का दांत संभालकर रखते हुए उठ खड़ी हुई। फिर नंदन की ओर उन्मुख हो बोली—

''भइया, मेरी वजह से पापा का दिल क्यों दुखाते हो? मैं खुद चली जा रही हूं। पर भइया, पापा का ध्यान रखना। बहुत दुखी हैं वे। और दुःख न पहुंचाना। मैं कभी तुम्हारी जिंदगी में दखल नहीं दूंगी, भइया। बस, अब पापा ही बचे है, उनको संभालकर रखना।''

''एक तुम्हीं नहीं पैदा हुई हो उनके तन से। हम भी उनकी ही संतान है। उनका खयाल रखने के लिए उपदेश देने की जरूरत नहीं।'' नंदन पापा का हाथ पकड़कर जाते-जाते मुड़कर तीखे स्वर में बोला।

नाजबीबी ने उसकी बातों पर ध्यान नहीं दिया। रुंधे गले से पापा से बोली—

''पापा, आप अपना खयाल रखिएगा। चिंता मत करिएगा मेरी। मैं आज ही बनारस चली जाऊंगी...पैसा है मेरे पास। मम्मी का दांत भी...'' और आगे का उसका स्वर सिसकियों में डूब गया था।

पापा बोझिल मन और तन को घसीटते हुए धीरे-धीरे चले जा रहे थे।

नाजबीबी मुंह में दुपट्टा ठूंसे आंसू-भरी आंखों से उन्हें जाता हुआ देख रही थी। कुछ देर खड़ी होकर उन्हें देखने के पश्चात् वह भी थके कदमों से पीछे-पीछे चल पड़ी थी—बस स्टेशन के लिए।

चौदह

शाम की बूंदाबांदी के बाद सड़कें धुली-धुली-सी थीं। मौसम में ठंडापन आ गया था। अधिकांश लोग अपने-अपने कार्यालयों से मौसम खराब होने से पहले ही घर चले गए थे। बचे-खुचे लोग अब बूंदा-बांदी खत्म होने के बाद साइकिल या रिक्शे से जा रहे थे। फिर भी सड़कें लगभग वीरान-सी थीं, हालांकि अभी शाम के साढ़े सात ही बजे थे। भीड़-भाड़वाले क्षेत्र की दुकानें अभी तक खुली थी जबकि ग्राहकों की संख्या न के बराबर थी। विधायक मन्नाबाबू की गाड़ी तेजी से सांसद संत राव के आवास की ओर बढ रही थी। गाड़ी में उनकी बगल मे चचेरा भाई संतोष सिंह और हरींद्र बैठे थे। आगे ड्राइवर के साथ उनका अंगरक्षक हाथ में बंदूक लिए सावधान की मुद्रा में बैठा था।

मन्नाबाबू ने अपनी सीट पर पीछे की ओर सिर टिका आंखें बंद कर ली थो। ऐसा लग रहा था जैसे वे किसी गहरी चिंता में डूबे हों। गले में मोटी सोने की चेन कुरते के ऊपर निकल आई थी और कुरते में टंके सफेद नग वाले सोने के बटन में उलझ गई थी। हलके रंग की जैकेट के ऊपरी जेब में एक छोटा-सा खूबसूरत मोबाइल फोन थोड़ा-थोड़ा झांक रहा था। पचास-पचपन वर्षीय विधायक मन्नाबाबू की वास्तविक उम्र को संपन्नता ने ढंक लिया था और उन्हें दस वर्ष पीछे ढकेल दिया था। स्वस्थ शरीर और गालों की लालिमा उनके सतोषजनक जीवन की कहानी सुना रहे थे।

''आप कुछ चिंतित लग रहे हैं, भैया?'' हरींद्र ने मन्नाबाबू के चेहरे की ओर ध्यान से देखते हुए चापलूसी-भरे स्वर में कहा।

मन्नाबाबू ने चौंककर अपनी आंखें खोल दीं—

''आं, हां, थोड़ा तो जरूर हैं।'' उन्होंने अपने दोनों हाथों को सिर के पीछे ले जाकर उन पर अपना सिर आराम की मुद्रा में टिकाते हुए कहा।

''अरे, इसमें चिंता की क्या बात? साम-दाम-दंड-भेद...किसी न किसी तरह...।''

''ना, ना, बेवकूफी-भरी बातें नहीं करो। राजनीति में बहुत सोच-विचारकर बोलना चाहिए या कोई भी काम करना चाहिए। मैं संत राव को तोड़ना चाहता

है। वह भी ऐसे कि सांप भी मर जाए और लाठी भी न टूटे।'' मन्नाबाबू ने धीरे से कहा ताकि आगे बैठे ड्राइवर और अंगरक्षक के कानों तक भी यह बात न पहुंच सके। हरींद्र और संतोष उनके बहुत ही खास आदमियों में से थे।

''लेकिन कैसे तोड़ोगे, भइया? वह भी तो पुराना खूसट नेता है। तीस वर्षों से राजनीति में है। पता नहीं कैसे सूंघ लेता है कि कौन पार्टी सत्ता में आने वाली है। पहले से ही पूरी गोटी फिट...स्साला.. चार बार से लगातार जीत ही रहा है।'' संतोष सिंह ने संत राव को एक गाली उछाली।

''इस बार अगर वह बैठ जाता कुछ ले-लिवाकर तो आगे का रास्ता खुल जाता मेरा।'' मन्नाबाबू ने कुछ सोचते हुए कहा।

''उसके बाल-बच्चे...'' हरींद्र ने उत्सुकता से पूछा।

''केवल एक लड़का है उसका और उसे भी वह सिंगापुर में अच्छी तरह व्यवस्थित कर चुका है।''

''तो फिर कुछ ले-लिवाकर चला जाए बेटे-बहू के पास। राम नाम जपे ..इसमें क्या?''

''जितनी आसानी से कह ले रहे हो, उतना आसान है क्या उसे उखाड़ देना? अरे वो बूढ़ा बरगद है...न जाने कितनी शाखाएं और जटा-जूट फैलाए।'' मन्नाबाबू ने हरींद्र को समझाया।

''अभी तीन-चार दिन पहले उन्होंने कई परियोजनाओं की घोषणा कर दी है आनन-फानन में, और उनकी बात का समर्थन करते हुए नगर महापौर कमला देवी ने भी कहा है कि पैसा तो नहीं है, पर ये परियोजनाएं हवाई नहीं लगती।'' संतोष ने खिड़की का शीशा उतारकर पान की पीक बाहर थूकते हुए बताया।

''चुनावों से पहले मतदाताओं को लुभाने की भरपूर कोशिश कर रहे है। वास्तव में आज तक विकास के नाम पर सड़क को चौड़ा करने, ग्रिल तथा डिवाइडरों के लिए कुछ दिखावटी काम करने के अलावा और कोई चारा नही है। पार्टी को लगता है कि यह काम नहीं हुआ तो चुनावों में अबकी बार पार पाना मुश्किल होगा।''

''गंदा पीने का पानी, बिजली की कटौती, सीवर का अभाव, जल-भराव जैसी समस्याएं तो केवल बनारस नहीं, लगभग उत्तर प्रदेश के सभी शहरों की समस्या है जो आज तक यथावत् बरकरार है। जनता कहती है, हम तो लालटेन युग में रह रहे हैं। यहां की सड़कें खूनी हैं। कब किस सड़क पर, किसी गड्ढे मे फसकर किसकी मौत हो जाएगी, कहा नहीं जा सकता। इतनी टूटी-फूटी सडकें है यहां की।'' संतोष ने मन्नाबाबू की बात के समर्थन में अपनी भी बात रखी।

हराद्र बिना सोचे-समझे बोल पड़ा—

"लेकिन यह समस्या केवल इसी सरकार के जमाने में तो नहीं है। इसके दस-पांच वर्ष पूर्व की सरकारें भी तो..." एकाएक वह मन्नाबाबू की व्यंग्य-भरी मुसकराहट देख, अपनी बात अधूरी छोड़ चुप हो गया।

मन्नाबाबू हँस पड़े—

"अरे भाई, हरींद्र, बनारस गलियों का शहर है। मकान तोड़कर गलियों को चौड़ा तो नहीं किया जा सकता। बनारस मुक्ति का शहर भी है। सड़क के गड्ढे वगैरह तो काशी में मोक्ष के बहाने हैं। वैसे अपने मंत्रीकाल में हमने गंगा प्रोजेक्ट पर और बिजली पर काफी ध्यान दिया था। क्यों, संतोष, याद है न?"

"हां भइया, पर इस जनता का क्या कहना? किसी का एहसान नही मानती। कैसा, अगले ही चुनाव में पासा पलट दिया। सारा किया-कराया पानी मे। इसीलिए जो लोग आंखें मूंदे अपना उल्लू सीधा करते जाते हैं, वही यहां की जनता के लिए ठीक हैं।" संतोष ने वितृष्णा जताई।

"अच्छा भइया, पिछले चुनाव में आप अपनी पार्टी की हार का कारण किसको मानते हैं?"

हरींद्र ने पूछा तो मन्नाबाबू ने बड़े ही तार्किक ढंग से उसकी व्याख्या की—

"देखो, दो कारण थे। एक तो राज्य कर्मचारियों की हड़ताल और दूसरा, आरक्षण का मोह। लोकसभा के पिछले चुनावों में आरक्षण के मोह ने किसान जातियों को विभाजित किया। हमारी पार्टी ने वर्ग-विभाजन के इस स्वरूप को स्थायी समझते हुए निकाय चुनाव में दलीय आधार पर हिस्सा लिया। तब तक आरक्षण की रेवड़ियां बंट चुकी थीं। नतीजा यह हुआ कि प्रांत में सिकुड़ती हमारी पार्टी पुनः मात खा गई।"

"इस बार अगर, भइया, मामला फिट हो जाए और संत राव मान जाए तो वन मंत्री का पद दीजिएगा। हर्रे लगे न फिटकरी, रंग मिले चोखा।"

"ओ बड़ा बढ़िया विभाग है! अभी कुछ दिन पहले ही तो हमने पढ़ा था कि वन माफिया अपना तस्करी का काम खूब आराम से करके चैन की नींद सोते है। आवश्यकता पड़ी तो जंगल में आग लग गई। खोजते फिरो प्रमाण। नीचे से ऊपर तक के कर्मचारी अधिकारी खा-पी के लाल।" संतोष ने लोलुपता के साथ यह बात कही तो मुंह से दो-चार पान-मिश्रित लार उसके कुरते पर टपक पड़ी। झट जेब से रुमाल निकाल वह पान की पीक को कुरते से पोंछने लगा।

हरींद्र और मन्नाबाबू हँस पड़े।

"सोचकर ही लार टपक रही है?" हरींद्र ने मजाक किया।

"सरकार ने वन में रहने वाले गुर्जरों के पुनर्वास की व्यवस्था की थी तो वे राजी ही नहीं हुए वहां जाने को।" मन्नाबाबू ने बताया।

"तस्करी उन्हीं के माध्यम से तो होती है। इतनी मोटी रकम थोड़ी-सी मेहनत से मिल जाती है। दूसरी जगह तो टूटकर मेहनत करनी पड़ेगी तब जाकर रोटी मिल पाएगी। आजकल अब कोई कमजोर-वमजोर रह नहीं गया। हर आदमी अवसर का लाभ उठा रहा है। जो ऊंचाई पर है वह दिखाई पड़ जा रहा है, बस।"

संतोष ने कहा तो हरींद्र ने बात को लपक लिया—

"अरे किस विभाग में इस तरह के घोटाले नहीं हो रहे हैं। यहां तो जगल जल रहे हैं, वहां रेकार्ड ही जल जा रहे हैं। अरे, आयुध कारखाने में आग लगने वाली घटना आपने सुनी है न, भइया? आप क्या मानते हैं कि ऐसी लापरवाही सभव है कि घास में लगी आग पूरे आयुध कारखाने की बिल्डिंग को पकड़ ले और किसी को समय रहते खबर ही न हो? असंभव है यह। अरे, मिलीभगत है ये सब! पेपर पर माल आया होगा। पेमेंट जेबों में और तथाकथित माल आग की भेंट। लीजिए, ढूंढ़िए प्रमाण! यहां से वहां तक करोड़ों का गुणा-गणित। बैठाते रहिए बाद में आयोग। तब तक बीवी-बच्चों सहित वे विदेश में आराम मे व्यवस्थित हो जाएंगे। दस-बीस वर्ष बाद न आपका आयोग कोई फैसला देगा? तब तक सरकार भी दूसरी आ चुकी होगी! बस, मामला ठंडा।"

"भारत जैसा बाजार पूंजीपति देशों को कहां मिलेगा! यहां उनके माल की जिस तरह खपत हो जाती है, उसके लिए उन्हें इस तरह के छोटे-मोटे समझौतो से क्या नुकसान? देख नहीं रहे हो, सभी देशों की आंखें अब भारत की ओर घूम गई हैं। प्रजातंत्र के नाम पर जिस तरह की भेड़ियाधसान यहां है, उसी को देख सब समझ लेते हैं कि कर लो बेटा उल्लू सीधा!" संतोष की इस बात पर मन्नाबाबू मंद-मंद मुसकरा उठे।

गाड़ी एक लंबे-चौड़े फाटक में प्रवेश कर चुकी थी। मन्नाबाबू संभलकर बैठ गए। संत राव का बंगला सामने दिखाई दे रहा था। चलने से पूर्व उन्होंने टेलीफोन से संत राव को अपने आने की सूचना दे दी थी। बंगले के सामने विशाल लॉन में हरी-हरी मखमली दूब के बीच-बीच में विभिन्न आकारो मे गुलाब और मेंहदी के बाड़ लगे हुए थे।

पत्थर-जड़ी सड़क से घूमकर मन्नाबाबू की गाड़ी पोर्टिको में आकर रुक गई थी। ड्राइवर ने गाड़ी का दरवाजा खोला तो हरींद्र और मन्नाबाबू नीचे उतर आए। उनका अंगरक्षक गाड़ी रुकते ही कूदकर चौकसी वाली मुद्रा में मन्नाबाबू के पीछे खड़ा हो गया था। संत राव के घर के मुख्य दरवाजे पर खड़े सुरक्षा गार्ड

ने एक जोरदार सैल्यूट मारा था और बाहरी ड्राइंग रूम का दरवाजा खोल उन लोगो के अंदर आने की प्रतीक्षा करने लगा।

''कहां हैं, मंत्री महोदय?'' मन्नाबाबू ने अपना सिर हिलाकर उसका अभिवादन स्वीकार करते हुए पूछा।

''जी साहब, वे आप ही का इंतजार कर रहे हैं अंदर।'' कहते हुए उसने झुककर दरवाजे को पूरी तरह खोल दिया।

''नमस्कार, मन्नाजी। आइए, आप ही का इंतजार कर रहा था मैं। एक महत्त्वपूर्ण मीटिंग हमने छोड़ दी आपकी खातिर।'' संत राव ने मन्नाबाबू को अपनी सीट के बगल में बैठाते हुए कहा।

''बस, आपकी दया है, भइया। थोड़ी-सी और दया की आस में इस बार आया हूं।'' मन्नाबाबू ने दोनों हाथ जोड़ते हुए विनम्रतापूर्वक कहा।

''कहिए, यह तो मेरा सौभाग्य है कि आप मेरे यहां पधारे। नहीं तो मुझे तो लगता था जैसे पार्टी के अलग होने के साथ ही हमारे दिल भी अलग हो गए। शहर ही शहर में रहकर कितने अजनबी हो गए थे हम!'' संत राव ने सहजता से कहा।

खद्दर का सफेद कुरता और धोती पहने साठ वर्षीय संत राव का पूरा व्यक्तित्व सहज और सौम्य लग रहा था। इस क्षेत्र की जनता में उनका अपने सादगीपूर्ण व्यक्तित्व और आचार-विचार के कारण बहुत सम्मान था। उनकी विनम्रता-भरी वाणी सुनकर मन्नाबाबू ने सोचा कि यह मौका अच्छा है अपना मतव्य स्पष्ट कर देने का। उन्होंने बड़ी आत्मीयता से संत राव के घुटने पर अपना हाथ रखते हुए कहा--

''भइया, अब आप हमारे बड़े बुजुर्ग हैं। आपका हाथ सिर पर रहे तो हम भी कुछ कर लें।''

''क्या मतलब? अरे भाई, हमारा तो हाथ हमेशा तुम लोगों के सिर पर है। आखिर हमारी भावी पीढ़ी हो तुम लोग। हम कब तक बैठे रहेंगे जनता की सेवा करने के लिए?'' संत राव ने कुछ न समझते हुए प्यार से कहा।

''वो भइया, वही तो मैं निवेदन कर रहा था...इस बार जनता की सेवा करने का मौका हमें दें आप। देखिए, हम आपके अनुभवों पर कितना खरा उतरते हैं?'' मन्नाबाबू ललचाई दृष्टि से संत राव की ओर देखने लगे थे।

''मैं समझा नहीं, मन्नाबाबू। क्या आशय है आपका?'' संत राव कुछ चौकन्ने हो गए।

''इस बार, भइया, आप मत लड़िए चुनाव। आपको निराशा नहीं होगी

किसी प्रकार की। मैं सारी भरपाई कर दूंगा। पांच साल के कार्यकाल मे जितना...वैसे आजकल तो कोई भी सरकार मुश्किल से दो-तीन साल चल पा रही है। फिर भी मैं आपको पूरे पांच साल का हरजाना प्लस...''

मन्नाबाबू अभी अपना मंतव्य स्पष्ट ही कर रहे थे कि संतोष बीच में बोल पडा—

''वैसे भी नेताजी, आप तो जान ही रहे हैं कि इस क्षेत्र के मुसलमान और कुर्मी वोट ज्यादातर मन्ना भइया के पक्ष में हैं और इस क्षेत्र में उन्हीं की सख्या अधिक है।''

''तो फिर पिछले चुनाव में क्यों पैंतीस हजार वोट से हार गए? जाति की राजनीति टिकाऊ नहीं होती, बेटा?'' संत राव ने मानो संतोष के बहाने मन्नाबाबू को भरी भीड़ में बेपरदा कर दिया।

हरींद्र तिलमिलाकर बोल उठा—

''कौन-सी पार्टी है जो धर्म और जाति की राजनीति आज नहीं कर रही है? आप इस तरह जलील न करें, नेताजी!''

मन्नाबाबू ने हरींद्र को हाथ के इशारे से चुप रहने का संकेत किया और ठंडे स्वर में बोले—

''हमने तो बस, अपना निवेदन आपके चरणों में रख दिया है, भइया। आप बडे हैं, समझदार हैं। छोटों-से तो उद्दंडता में बहुत कुछ हो जाता है, पर क्षमा शब्द से सब ठीक भी हो जाता है। आप जो कहेंगे वही मान्य होगा हम सभी को।''

मन्नाबाबू की ठंडी आवाज के पीछे एक धमकी छिपी हुई थी।

संत राव ने दृढ़ आवाज में उत्तर दिया—

''आप जो भी सोचें, मन्नाजी, पर यह संभव नहीं। जनता की बहुत-सी अपेक्षाएं हैं हमसे।''

''जनता का क्या, भइया? जो भी सत्तासीन हो जाता है उसी से उसकी अपेक्षाएं बंध जाती हैं। इसी का नाम तो है प्रजातंत्र। फुटबाल के पीछे दौडते खिलाड़ियों की तरह प्रजा। आप अपना निर्णय बताते, भइया, तो अच्छा रहता।'' मन्नाबाबू ने पुनः दबाव बनाने की कोशिश की।

परंतु संत राव उसी प्रकार दृढ़ स्वर में बोले—

''देखिए, मन्नाजी, ऐसा करना मेरे लिए संभव नहीं।''

''चलो भाई, उठो।'' कहते हुए मन्नाबाबू बेरुखी से उठ खड़े हुए। हरींद्र और संतोष भी उनके पीछे-पीछे निकल आए और गाड़ी में जाकर बैठ गए।

संत राव अपने सोफे पर बैठे-बैठे ही उन्हें जाता हुआ देखते रहे।

मन्नाबाबू की गाड़ी फर्राटे से मेन-गेट से बाहर निकल गई थी।

"अब क्या होगा, भइया? यह खूसट तो तैयार नहीं हुआ। इतनी घोषणाएं इसने कर दी हैं कि कहीं अपने सॉलिड वोटर भी बहककर उधर न मिल जाएं?" सतोष चिंतित स्वर में बोल पड़ा।

"कहिए तो कोई इंतजाम..." हरींद्र ने बनावटी तेवर दिखाया।

"नहीं, अभी कुछ समय बाकी है। उसी में कुछ व्यवस्था करनी होगी—कुछ ऐसे मुद्दे जिसमें इसे बदनाम किया जा सके। वोट अपने-आप कट जाएंगे।" मन्नाबाबू ने कुछ विचार करते हुए कहा।

"रीता देवी की मदद ली जा सकती है इसमें।" हरींद्र ने सुझाव दिया।

"वो नारी उद्धारगृहवाली?" संतोष ने पूछा तो मन्नाबाबू नाराज हो उठे—

"तुम लोग एकदम गधे हो क्या? जान-बूझकर 'आ बैल मुझे मार वाली बात कर रहे हो। अरे, संत राव की उम्र, उसका चाल-चलन, सब जनता नही जानती क्या जो रीता देवी का मोहरा चल रहे हो तुम लोग? फिर रीता देवी इतनी खास तो नहीं। पैसे के पीछे कभी भी पागल हो सकती है वह औरत।"

"तो कौन-सा मुद्दा उठा सकते हैं?" संतोष ने चिंता प्रकट की।

"दिल्ली के ही किसी मुद्दे से इन्हें भी मात देंगे हम। वो 'वंदेमातरम्' वाले काड को यहां खुलकर हवा दे दो...पता करो, मुस्लिम-बहुल क्षेत्र में किस विद्यालय में सरस्वती-वंदना या मातृ-वंदना होती है? दो-चार मुस्लिम नेताओं को पकड़ो। मामला ठीक हो जाएगा। एक प्रेस कानफ्रेंस का इंतजाम कर देना, बस।" मन्नाबाबू ने आगे की रूपरेखा के बारे में सोचते हुए कहा।

एकाएक हरींद्र की आंखें चमक उठीं—

"वो मानवी, अरे वही अखबारवाली, जो नारी उद्धारगृह गई थी, वह अपने चगुल में ही है...समझो...हम उसका उपयोग कर सकते हैं इसके लिए।"

और आगे की योजना तीनों धीमे-स्वर में बनाने लगे थे। कार तेजी से बढी जा रही थी।

एकाएक मन्नाबाबू ने ड्राइवर को आवाज दी थी—

"जरा, नारी उद्धारगृह भी चलना।"

"क्यों, भइया, इरादा बदल गया क्या?" संतोष ने पूछा तो मन्नाबाबू ने हॅसकर कहा—

"नहीं, बस हालचाल ले लिया जाए। कौन, कब, कहां काम आ जाएगा, यह कोई नहीं जानता।"

और उनके चेहरे पर एक भेद-भरी मुसकराहट नाचने लगी थी। कार नारी उद्धारगृह की ओर मुड़ गई थी। रात का अंधेरा गाढ़ा हो रहा था।

पंद्रह

सुबह आठ बजे ही मानवी आनंद कुमार के आवास पर जा पहुंची थी। आज ही का समय उन्होंने दिया था। डी.एम. का बंगला ढूंढ़ने में उसे कोई परेशानी नही हुई थी। रिक्शेवाले को पैसे देकर वह धड़कते हृदय से गेट के भीतर घुसी थी। अदर काफी बडा लॉन था, और बाउंड्री के किनारे-किनारे अशोक के पेड़ लगे हुए थे। गेट पर तैनात चौकीदार ने उसका परिचय पूछा था और अपने साथ ले बगले की ओर बढ़ चला। लॉन को पार कर वे बंगले के मुख्यद्वार पर पहुंच गए थे। चौकीदार ने ही कालबेल दबाया। अंदर से चपरासी ने दरवाजा खोलते हुए प्रश्नवाचक दृष्टि से मानवी को निहारा था। उसके साथ खड़े चौकीदार ने बताया—

"साहब ने समय दिया है मिलने का।"

"जी मैडम, आ जाइए। आ जाइए अंदर।" कहता हुआ वह बगल वाला दरवाजा खोल खड़ा हो गया। मानवी ने अपना पर्स संभालते हुए अंदर प्रवेश किया। सामने पड़े सोफे पर बैठते हुए उसने एक उड़ती-सी नजर पूरे कमरे पर डाली। सामने रैक में डी.एम. आनंद कुमार की बड़ी-सी रंगीन तसवीर सुनहरे फ्रेम के भीतर से मुसकरा रही थी। मानवी ध्यान से देखने लगी। आज उसे अपने बारे मे सब कुछ बता देना होगा आनंद कुमार को।

क्या सोचेंगे वे?...पर इस विवशता के लिए वह क्या करे? हरींद्र का इस शहर में एकाएक प्रकट होना और धमकी...उसे अपनी सुरक्षा के साथ ही मा-बाप तथा मधुकर की भी चिंता करनी है। कहीं बदले की भावना से हरींद्र नही...वह सब कुछ बता देगी आनंदजी को। भले ही उसके बारे में जो दृष्टिकोण उन्होंने बना रखा है वह खराब हो जाए। डी.एम. हैं वे, और यहां की शाति-व्यवस्था ठीक-ठाक रहे, यह उनकी जिम्मेदारी भी है।

"साहब अभी आ रहे हैं, मैडम। नहा रहे हैं।"

चपरासी की आवाज से वह चौंक उठी थी। लगा जैसे उस आदमी ने उसके अतीत को देख लिया हो। अपने अतीत को छिपाते हुए उसने वर्तमान में अपनी पुरजोर उपस्थिति दर्ज कराते हुए सामान्य ढंग से पूछा—

"और मेम साहब?" वह डी.एम. के बंगले के अंदर के सदस्यों का अनुमान लगाना चाह रही थी।

"कौन मेम साहब?" उलटे उसने ही प्रश्न कर दिया था।

"अरे, आपके साहब की मेम साहब?"

वह हँस पड़ा था। अपने कंधे पर रखा तौलिया ठीक करते हुए उसने कहा—

"वो तो हैं ही नहीं। साहब की..."

"जरा चाय ले आना, भोला।" आनंद कुमार के प्रवेश और आदेश से भोला की बात आधी ही रह गई थी, परंतु मानवी ने उसका आशय निकाल लिया था। यानी आनंद कुमारजी अभी अविवाहित हैं और घर में इस नौकर के अलावा ओर कोई नहीं है, अन्यथा एक-दो आवाजें अवश्य आतीं। यह निश्चिंत हो उठी—वह अपनी बात बेहिचक डी.एम. साहब को बता सकती है।

"जी, नमस्ते।" वह सोफे से उठकर खड़ी हो गई थी।

"नमस्कार, मानवीजी। बहुत देर प्रतीक्षा तो नहीं करनी पड़ी?" आनंद कुमार ने सोफे पर बैठते हुए कहा।

"जी नहीं, बस अभी-अभी तो आई मैं। आपको ही परेशानी हुई मेरे सुबह-सुबह आ जाने से।" उसका स्वर संकोच से भरा था।

"अरे नहीं, यह तो अच्छा ही हुआ। रोज अकेले चाय पीता था, आज आपके साथ पिऊंगा।" कहते हुए आनंद कुमार ने अपने गीले बालों में उंगलियां फिराईं।

मानवी ने ऊपर से नीचे तक आनंद कुमार को सरसरी दृष्टि से निहारा। सफेद रंग के कुरते-पाजामे में उनका गेहुआं रंग कुछ और गाढ़ा लग रहा था। चेहरे पर एक ताजगी का भाव था, परंतु आंखें कुछ सूजी हुई-सी लग रही थीं—या तो अधिक नींद या बहुत कम।

"क्या सोच रही हैं, मानवीजी? क्या समस्या आ गई थी? व्यक्तिगत रूप से मिलने की बात सुनकर मैं तभी से सोच रहा था, पर किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुच सका।" वे सोफे पर फैलकर बैठ गए।

"जी, आप पहले चाय पी लीजिए। सुबह की शुरुआत समस्याओं से ही न करें। उसके बाद बताती हूं।" वह संकुचित हो उठी।

दोनों के बीच एक मौन खिंच गया था। अपनी-अपनी तरफ मजबूती से पकड़े।

भोला चाय रख गया था।

"आपका फीचर पढ़ा था। 'आवेश का वह क्षण' अच्छा लगा।" चाय की एक चुस्की लेते हुए आनंद ने बात शुरू की।

मौन कुछ उबाऊ-सा लग रहा था।

"जी धन्यवाद। उसी संबंध में तो बात करनी है आपसे।" एक सूत्र हाथ मे आ गया था मानवी के।

"यानी आपकी समस्या आपके अपने फीचर से संबंधित है?"

"जी, वो नारी उद्धारगृह में इंटरव्यू के बारे में ही परसों तीन व्यक्ति आए थे मेरे ऑफिस में। कह रहे थे...एक तरह से धमकी ही दी है कि आइंदा इस तरह का..." वह हिचकिचा उठी बताने में।

"पर वह तो प्रकाशित हो चुका, फिर अब..?" आनंद कुछ चकित स्वर मे पूछ बैठे।

"जी, उसी के बाद आए थे वे तीनों। कह रहे थे कि...एक उसमें विधायक मन्ना का भाई भी था...कह रहा था कि ज्यादा डी.एम. वगैरह की सिफारिश मत लेकर चला करो। ऐसे-ऐसे डी.एम...." वह पुनः चुप हो गई थी।

कैसे बताए पूरी बात?

"लगता है, इस तरह के डायलॉग आप पहली बार सुन रही हैं? है न?" आनंद कुमार ठहाका लगाकर हँस पड़े थे।

मानवी चुपचाप आश्चर्य से उनकी उन्मुक्त हँसी निहार रही थी।

आनंद कुमार ने अपनी हँसी को रोकते हुए गंभीरता से कहा—

"देखिए मानवीजी, इस तरह की बातें, इस तरह के पॉलिटीशियन तो हमे हर जिले में मिलते हैं, बरसाती मेंढक की तरह। चिल्लाएंगे, गायब हो जाएगे। इसकी परवाह नहीं करनी चाहिए। बस, आत्मबल संभाले रखिए आप। इस तरह की समस्याएं आएंगी और चली जाएंगी। गो अहेड! हां, आगे बोलिए। और कोई समस्या?"

"जी, मैं भी इस तरह की समस्याओं से नहीं घबराती। परंतु मेरी अपनी एक निजी समस्या है, जिसके बारे में आपसे मार्ग-दर्शन चाहती हूं। और कोई ऐसा नही सूझा जिससे कह सकूं। प्लीज, अन्यथा न लीजिएगा।"

"हां, हां, निःसंकोच कहिए, क्या बात है?" आनंद कुमार ने खाली प्याला मेज पर दिया और सावधान होकर उसकी बात शुरू होने की प्रतीक्षा करने लगे।

"इसके लिए आपको मेरा बैकग्राउंड जानना जरूरी है। आप जल्दी मे तो नही हैं, सर?"

"नहीं, नहीं, बताइए। हो सकता है, आपकी समस्या मेरे स्तर से ही हल

हो जाए।'' आनंद कुमार सोफे पर आराम से टिककर बैठ गए।

''ट्रिन...ट्रिन...ट्रिन...''

''हैलो, डी.एम. आवास।'' भोला ने बाहर से आकर टेलीफोन उठा लिया था।

उधर की आवाज सुनने के बाद उसने आकर धीमे स्वर में आनंद कुमार से पूछा—

''साहब, वो आज रोटरी क्लब वालों की मीटिंग में...''

''कह दो, अभी-अभी कहीं निकल गए हैं। और हां, कोई भी टेलीफोन आए तो बोलो— दस बजे के बाद मिलेंगे।''

भोला चला गया तो मानवी ने शुरू किया—

''मैं इलाहाबाद के शिवनाथपुर गांव की रहने वाली हूं। माता-पिता काफी बुजुर्ग हैं। मेरे साथ ही यहां रहते हैं।''

''नौकरी में थे?'' आनंद कुमार ने पूछा।

''नहीं। घर में लंबी-चौड़ी खेती थी। उसी की देखभाल और हम भाई-बहनों की परवरिश...''

''अब कौन करता है खेती?''

''बड़े भाई साहब। उनका परिवार वहीं रहता है।'' मानवी ने बताते-बताते अपनी निगाहें ऊपर उठाई थीं।

''हूं।'' आनंद ध्यान से उसकी ओर देख रहे थे।

मानवी ने आगे बताया—

''ये जो परसों तीन आदमी आए थे मुझे धमकी देने, उसमें से एक, जिसका नाम हरींद्र था, मेरे गांव के पास का है। अच्छा आदमी नहीं है। मेरे परिवार से उसकी दुश्मनी चल रही है। न जाने कैसे वह यहां आ पहुंचा?'' मानवी जैसे स्वयं से बोले जा रही थी—

''आज उसी के कारण मैं एक अपराधी की बहन कही जाती हूं।''

आनंद कुमार कुछ चौंके थे—

''क्या हुआ था?''

''मैं इलाहाबाद जाती थी रोज...पत्रकारिता का कोर्स कर रही थी। मेरे गांव से मात्र सोलह-सत्रह किलोमीटर दूर है शहर। रोज सुबह जाती और शाम तक बस से घर लौट आती। कई बार अम्मा-बाबूजी से होस्टल ले लेने का आग्रह किया पर उनकी वही पुरानी सोच— क्या कहेंगे गांव के लोग? लड़की शहर में अकेले रहती है . मेरी भी मजबूरी। एक उद्देश्य जीवन का, जिसे पूरा कर लेना

चाहती थी पर...हरींद्र की कुदृष्टि ने सब कुछ राख कर डाला। बी.जे. करने के बाद एम.जे. में एडमिशन मैंने लिया था तो बड़े भइया-भाभी ने विरोध किया...लडकी है। बी. जे. कर ही लिया। अब शादी कर दी जाए। ससुराल जाकर जो इच्छा हो, करे। लेकिन छोटे वाले भाई मधुकर ने मेरा साथ दिया था। बाबूजी को मना लिया था उसने मेरा एम.जे. में एडमिशन करवाने के लिए। इसी बीच मेरी मंगनी भी हो गई थी। लड़के की मां और बहन मुझे अंगूठी पहना गईं थीं...पर उस घटना के बाद उन लोगों ने संबंध तोड़ दिया।''

बताते-बताते मानवी ने अपनी आंखें उठाकर आनंद कुमार को देखा था। वे चुपचाप उसे देख रहे थे। आंखें झुकाकर वह अपने बारे में कबसे बताती जा रही थी। शायद वे तभी से उसे देख रहे थे। वह कुछ लजा उठी।

अगले ही पल उसने मन ही मन तर्क किया—आखिर दो व्यक्ति आपस में बात करते हैं तो किसी और ओर देखना उसकी बातों पर ध्यान नहीं देना भी तो माना जा सकता है। आनंद कुमार के मन में कोई और भावना नहीं होगी। वे एक अधिकारी के रूप में अपने किसी फरियादी की बात सुन रहे हैं। उसका सकोच दूर हो गया। अपनी अनामिका में पहनी छोटी-सी हीरे और रूबी के नग से जगमगाती अंगूठी को इधर-उधर घुमाते हुए उसने पुनः बताना शुरू किया—

''एक दिन शाम को विभाग से लौटने में मुझे कुछ देर हो गई थी। उस दिन फेयरवेल पार्टी थी हम लोगों के विभाग में। दोस्तों ने जिद करके रोक लिया था मुझे भी। बस से मैं अपने गांव से कुछ ही दूर पहले स्थित स्टॉप पर उतरी तो थोड़ा अंधेरा ज्यादा हो गया था। जल्दी-जल्दी लंबे डग भरती मैं घर जा रही थी। अम्मा-बाबूजी से बढ़कर भइया-भाभी की चिंता थी। जरा-सी देर होते ही वे न जाने कितनी शंकालु दृष्टि से देखते। मधुकर उस समय बी.ए. फाइनल में था। उसकी प्रिपरेशन लीव चल रही थी, नहीं तो अकसर शहर आते-जाते समय वह साथ होता था...सहसा पीछे से मेरा दुपट्टा पकड़कर किसी ने खींचा तो मैं चौंक पडी थी। डर के कारण मन जोर-जोर से धड़क उठा। पीछे मुड़कर देखा तो हरींद्र मेरा दुपट्टा हाथों में पकड़े गंदी दृष्टि से मुझे निहार रहा था। शायद बस स्टॉप से ही वह मेरे पीछे-पीछे आ रहा था। मैंने घबड़ाकर चारों ओर निगाह दौड़ाई, परतु अंधेरे में चारों तरफ खेतों में खड़ी अरहर और गेहूं की फसल बस...इसके अलावा दूर-दूर तक कोई भी तो नहीं था, जिसे मैं सहायता के लिए पुकारती। फिर अपने गाव में बदनामी के डर से भी मैं शोर नहीं मचाना चाह रही थी। लोग तो लड़कियो के चरित्र पर ही दाग लगाते हैं। मैंने साहस बटोरकर हरींद्र को डांटा—

'इतने चप्पल मारूंगी न कि पुश्त दर पुश्त याद रखोगे! बेहूदा कहीं का।'

''मेरे इतना कहते ही उसने तेज झपट्टा मारकर मुझे अपने दोनों हाथो से जकड़ लिया था और दांत पीसते हुए राक्षस की तरह बोला—

'देखो, ज्यादा नखरे न दिखाओ। हरींदर जो चाहता है...।'

''उसकी नीयत भांप मैंने अपनी पूरी ताकत बटोरकर उसे जोर का धक्का दिया था। वह खेत की पतली मेड़ पर भहराकर गिर पड़ा। अपना दुपट्टा वहीं छोड मैं खेतों के बीच से सरपट दौड़ी। उठकर वह कुछ दूर मेरे पीछे दौड़ा भी, पर मैं तेजी से मधुकर का नाम लेकर चिल्ला पड़ी थी। वह डरकर वापस लौट गया था। हालांकि मेरे चिल्लाने की आवाज न तो गांव के लोग ही सुन सके थे और न ही मधुकर, क्योंकि गांव कुछ दूर था और शायद घबड़ाहट में मेरी आवाज बहुत तेज भी नहीं निकल सकी थी।''

बताते-बताते मानवी का स्वर कांप उठा। कुछ क्षण के लिए वह रुकी और माथे पर चुहचुहा आए पसीने को अपनी साड़ी के आंचल से पोंछा।

आनंद कुमार उसके चेहरे पर आते-जाते भावों को ध्यान से पढ़ रहे थे। मानवी असहज-सी हो उठी थी अपने जीवन के उस अप्रिय अंश को बताते हुए।

''फिर...?'' आनंद कुमार का गंभीर स्वर गूंजा तो मानवी जैसे चैतन्य हो उठी।

''आप विश्वास करिए, हरींद्र को कभी मैंने किसी प्रकार की लिफ्ट नही दी थी। पर वह बहुत दिनों से मेरे पीछे पड़ा था। संकोचवश मैं घर में नहीं बताती थी कि कहीं मेरी पढ़ाई पर ही न आंच आ जाए...बस, इतना-सा स्वार्थ था मेरा जिसने मेरे छोटे भाई की जिंदगी को ही नरक बना दिया।''

वह मुंह पर आंचल रख चुप हो गई थी। सिर झुका लेने के बाद भी काली पलकों पर ढुलक आए पनीले मोती दूर से झलक रहे थे।

''छोटे भाई की जिंदगी...?'' आनंद कुमार आश्चर्य से पूछ रहे थे, ''अर्थात्?''

मानवी की चुप्पी ने उसकी दबी सिसकियों का भेद खोल दिया। उन्होंने कुछ स्नेह-मिश्रित स्वर में मानवी से कहा—

''देखो मानवी, यह जीवन है। इसमें इस तरह के उतार-चढ़ाव तो...फिर तुम तो एक बुद्धिमान और साहसी लड़की...''

मानवी ने चकित भाव से अपनी बड़ी-बड़ी पलकों को ऊपर उठाकर आनंद कुमार को देखा था। उनके 'तुम' संबोधन से उसे अच्छा भी लगा था, आश्चर्य भी हुआ था।

आनंद कुमार को भी अपनी गलती का तुरंत एहसास हो गया था। अपने

वाक्य को अधूरा छोड़ वे झेंपते हुए हँस पड़े था थे—

"देखा आपने अपने आंसुओं का कमाल? किस तरह 'आप' की दीवार को बहा ले गए ये?"

"नहीं, मुझे कोई आपत्ति नहीं 'तुम' पर। 'आप' की दीवार बह गई तो अच्छा ही है। जब अपना अतीत और वर्तमान आपके सामने रख पाने का अधिकार पा गई मैं तो इस दीवार की आवश्यकता क्या? आप मुझे 'तुम' ही पुकारें, सर।" मानवी का स्वर भावुक हो उठा।

"यह एक और मुश्किल बात है कि जान-बूझकर कोई संबोधन अपनाया जाए। चलो, अच्छा! जबसे यह संबोधन फिर अपने-आप निकल जाएगा इसके बाद मैं नहीं सुधारूंगा...हां, आगे क्या हुआ था?" आनंद कुमार ने आत्मीयता से कहा।

मानवी ने अपने को संयत बना पुनः बताना शुरू किया—

"मैं बदहवास-सी घर में घुसी थी और अम्मा को पकड़कर रोने लगी थी। अम्मा ने मेरी स्थिति देखकर भइया-भाभी को आवाज दी थी। मधुकर भी आ गया था। मैंने अभी उस घटना के बारे में बताना ही शुरू किया था कि मधुकर बाहर चला गया। किसी ने कोई ध्यान नहीं दिया था। रात-भर वह लौटकर नहीं आया था। भइया-भाभी मुझे और अम्मा-बाबूजी को कोस रहे थे। सुबह-सुबह हल्ला हुआ कि पेड़ पर चढ़कर दातुन तोड़ रहे हरींद्र को मधुकर ने गोली मार दी। पहले तो विश्वास नहीं हुआ हमें, पर भइया ने अपने कमरे में जाकर देखा तो उनकी लाइसेंसी बंदूक वहां नहीं थी...हरींद्र तो घायल होकर बच गया और मधुकर मधुकर को हत्या के प्रयास में दस वर्ष की सजा हो गई...हरींद्र का कुछ नहीं बिगड़ा, बस मेरे भाई की जिंदगी तबाह हो गई और हमारा परिवार कहीं मुह दिखाने लायक नहीं रहा...भइया-भाभी के दुर्व्यवहार से तंग आकर मैंने अम्मा-बाबूजी को लेकर एक अखबार की नौकरी ज्वाइन कर ली थी इलाहाबाद में...फिर यहा भी..."

वह सिसक पड़ी। उसकी सांस तेज चलने लगी थी जैसे वह बहुत दूर से दौड़कर आ रही हो।

आनंद कुमार ने उसे सांत्वना देने के लिए हाथ बढ़ाया था, परंतु संकोचवश बीच में ही रोक लिया और वापस आए हाथ से अपना बाल सहलाते हुए कहा—

"पहले कहां था मधुकर?...यानी सजा के शुरुआती दौर में?"

"वह नैनी सेंट्रल जेल में था...पर कुछ दिनों पहले उसे यहां शिवपुर सेंट्रल जेल में ट्रांसफर कर दिया गया है। उसी के लिए मैं भी यहां आ गई।"

मानवी का सिर अब भी झुका था। उसके दोनों गाल आंसुओं से भीगे थे और नाक की ठोर लाल हो गई थी।

"माता-पिता...?"

"उनके साथ भइया-भाभी का व्यवहार ठीक नहीं था...अब क्या बताऊं? एक तो मधुकर की चिंता, मेरा तनाव, उस पर से भइया-भाभी की उपेक्षा...छोटी-छोटी बातों की, छोटी-छोटी आवश्यकताओं की उपेक्षा...अब उसके बारे मे तो कहना भी छोटापन है, सर।" मानवी ने अपना सिर ऊपर उठाकर आनंद कुमार को देखा।

आंसुओं के पीछे सत्य का सैलाब उमड़ते देखा आनंद ने। उनका मन कारुणिक हो उठा मानवी की परिस्थितियों को जानकर।

"कोई बात नहीं, मानवी। तुम ईमानदार ही नहीं, माता-पिता के प्रति निष्ठावान भी हो, इसलिए तुम्हारे सामने ये समस्याएं ज्यादा देर नहीं टिक सकतीं...बुजुर्गों के आशीर्वाद में बहुत शक्ति होती है। मनुष्य को उसे अधिक से अधिक अर्जित करना चाहिए।"

"इस समय मुझे क्या करना चाहिए, सर?" मानवी ने कुछ बेचैनी से पूछा।

"वही तो सोच रहा हूं। आज की राजनीतिक स्थितियां तो ऐसी चल रही है कि क्या बताऊं? अपराधी पाल रखे हैं नेताओं ने और उन्हीं से सारे कर्म-कुकर्म करवाते हैं ये। छोटे ऑफिसर या पुलिसवाले हाथ डालने से कतराते हैं उन पर। कोई हिम्मत करता भी है तो अगले दिन ही उसका ट्रांसफर करवा देना और फिर अपने किसी भक्त ऑफिसर को उसकी जगह बैठा देना इनके लिए बाएं हाथ का खेल बन गया है। इसमें कामयाब नहीं होंगे तो इन्हीं अपराधियों द्वारा उसे किसी बनाए गए केस में उलझाकर निलंबित करा देंगे। अब दौड़ता रहे वह कोर्ट...बड़ी दयनीय स्थिति होती जा रही है देश की, मानवीजी! पता नहीं, कहां अंत है इस सब कदाचार, भ्रष्टाचार का। सभी ओर तमाम तरह के यक्षप्रश्न। कोई निराकरण नहीं सूझता।" आनंद कुमार मानो स्वयं से बात कर रहे थे।

"तो क्या मैं भी निराश हो जाऊं, सर?"

"नहीं, मेरा आशय तुममें निराशा करना नहीं है, बल्कि मैं तुम्हारी स्थितियो पर विचार कर रहा हूं। इस समाज में एक अकेली महिला, वह भी इन परिस्थितियो को झेलती हुई...इसके लिए क्या उचित होगा? मान लो मैं पुलिस की सुरक्षा-व्यवस्था करता हूं तुम्हारे लिए, तो भी लोगों की प्रश्नवाचक निगाहें उठेंगी तुम्हारी ओर... क्या बात है इस महिला के साथ? ऐसा क्यों?...फिर कितने समय तक?

एक पत्रकार महिला के साथ पुरुष अंगरक्षक ठीक भी नहीं लगेगा।''

''महिला पुलिस?'' मानवी ने प्रश्न किया।

आनंद कुमार हँस पड़े। कुछ देर हँसते रहे, फिर मानवी की आंखों में देखते हुए बोले--

''बड़ी विडंबना है, मानवी। कहने को तो बेचारी औरतें बराबरी का दर्जा पा गई हैं, पर हमारी सामाजिक और मानसिक अवस्था ऐसी है, मेरा मतलब स्त्री-पुरुष दोनों मे है, कि स्त्री को हर जगह वह मान्यता दे नहीं पाता। फिर प्रकृति ने भी स्त्री को इस तरह का नहीं बनाया कि वह हर स्थिति में पुरुष की बराबरी कर सके। ठीक उसी प्रकार जैसे कि पुरुष हर बात में स्त्री की बराबरी नहीं कर सकता। यदि मातृत्व, धैर्य, करुणा में पुरुष-स्त्री से पीछे है तो शारीरिक शक्ति और श्रम में स्त्रियां पुरुषों की बराबरी नहीं कर सकतीं। यह विषमता प्रकृति ने. या उसे ईश्वर कह लो...उसने ही पैदा कर दी थी सृष्टि में। अब हम भ्रम में या किसी आवेश में आकर कहें कि हम बराबर हैं तो यह हमारी मूर्खता के अतिरिक्त कुछ नही है। कार्यों का बंटवारा वैदिक काल से इसी विषमता को ध्यान में रखकर किया गया था, जिसे आज-- आधुनिकता और भौतिकतावादी संस्कृति में उलझकर-- हम रूढ़िवादी या पुरातनपंथी कहने लगे हैं। बहुत उचित था वैदिककालीन कर्त्तव्य-निर्धारण।''

आनंद कुमार बोले जा रहे थे और मानवी एकटक उन्हें देखे जा रही थी। कहां गलत कह रहे थे आनंदजी? सच तो है यह। नारी सबला कहां बन पाई है? शोषण, उत्पीड़न और अत्याचार के स्वरूप बस, बदल गए हैं। शेष सब कुछ तो वैसा ही है।

''तो मैं महिला पुलिस की बात कर रहा था, मानवी। ऊंचे पदों पर तो ठीक है, पर पुलिस में निचले पदों पर काम करने वाली महिलाओं को हमने ध्यान से देखा है। वे न तो महिला रह पाती हैं, न पुरुष बन पाती हैं। विचित्र तरह के हाव-भाव और क्रिया-कलाप हो जाते हैं उनके। ऐसा शायद अपने पुरुष सहकर्मियो के रहन-सहन और बात-व्यवहार का अनुसरण करने और पूरी तरह आत्मसात् न कर पाने से उपजी हीनता-ग्रंथि का परिणाम होता है। वहां भी वे दोयम दर्जे की ही होकर रह गई हैं। अन्य विभागों में चूंकि शारीरिक श्रम इस तरह का नहीं है कि आपको किसी अपराधी को दौड़कर पकड़ना हो, किसी को उसका जुर्म स्वीकार करवाने के लिए थोड़ी शारीरिक यातना देनी हो, इसलिए उन क्षेत्रों में महिलाए अपनी कार्य- कुशलता का परिचय दे पाती हैं, परंतु पुलिस में तो मात्र शो-पीस बनकर रह जाती हैं लड़कियां। इसलिए भी तुम्हारी इस परिस्थिति में मैं महिला

पुलिस को तुम्हारे साथ लगाने के पक्ष में नहीं हूं।''

''फिर?''

मानवी का संक्षिप्त किंतु विकराल प्रश्न आनंद कुमार को उद्वेलित कर गया।

''हरींद्र का कोई आपराधिक रेकार्ड तुम्हें मालूम है, मानवी? यानी कभी जेल-वेल...? तुम्हारे गांव के पास का है तो...? लेकिन तुम्हें पता भी कैसे होगा?...तुम्हारे साथ उसने तो अभद्रता की थी...उसकी रिपोर्ट थाने में की थी?'' आनद कुमार ने पूछा।

''जी नहीं, उसकी नौबत ही कहां आ पाई थी? उसके पहले ही तो मधुकर ने उसे...'' मानवी चुप हो गई थी।

''ओह, हां! तुमने बताया था। उसके आगे का यह केस बना भी नहीं होगा? खैर, में देखता हूं। मन्नाबाबू के आदमियों का रेकार्ड उस थाने में अवश्य होगा। मै आज ही उधर के सी.ओ. को कहता हूं पता करने को।''

आनंद कुमार भी कुछ उलझन महसूस कर रहे हैं, ऐसा मानवी को आभास हो गया था।

''यदि थाने में कोई आदमी उनसे मिला हुआ हो तो?'' मानवी ने अपनी शंका प्रकट की।

''चिंता मत करो। तुम्हारा नाम नहीं जाएगा वहां। इस बात का हम पूरा खयाल रखते हैं। हां, यहां की सूचना वहां और वहां की यहां पहुंचाने वाले भी थाने के साथ होते हैं। तुम्हारी आशंका सही है।''

''मधुकर को तो कोई नुकसान...?'' मानवी का स्वर भर्रा गया।

''नहीं, वह जेल में है तो...''

''लेकिन, अभी कुछ ही दिनों पहले की खबर तो है कि कुछ लोग मिलने के बहाने जेल में गए थे और एक खूंखार कैदी को वहीं ए.के. सैंतालीस से भून दिया था। कई जेलकर्मी भी घायल हो गए थे।'' मानवी की आशंका उसकी आंखों से झलक रही थी।

आनंद कुमार ने उसे ढांढ़स बंधाया—

''उसी के बाद से जेल में मिलने वालों पर सख्त पहरा और चेकिंग का नियम बना दिया गया है।''

''पर कोई घटना होने के बाद ही न कोई नियम बनता है। कानून ने क्या किया मेरे साथ? हरींद्र खुलेआम घूम रहा है। आज फिर मैं उसकी दहशत में जी रही हूं और मेरा भाई सजा काट रहा है। कल को कुछ फिर हो जाएगा, तब कानूनी कार्यवाही शुरू होगी। पहले तो कोई इंतजाम नहीं...'' मानवी गुस्से में बोल रही

थी।

"देखो, मानवी, हम सब इनसान हैं। कमियों से लबरेज। कानून में कमियां तो रहेंगी ही। उसी में से कोई रास्ता हमे निकालना होगा। धैर्य से काम लो। हम तुम्हारे साथ हैं।"

आनंद के अंतिम वाक्य पर मानवी फफककर रो पड़ी थी। सहानुभूति के दो शब्द पीड़ा की कड़ी से कड़ी चट्टान को पिघलाकर आंसू बना देते हैं।

"तुम अभी घर जाओ, मानवी। निश्चिंत रहो। मैं देखता हूं इस मामले को। कैसे क्या किया जाए कि बात खुलने भी न पाए और तुम सुरक्षित रह सको, इस पर मैं आज विचार करके तुम्हें फोन पर बताता हूं।"

मानवी उठ खड़ी हुई। आनंद कुमार भी खड़े हो गए थे।

मानवी ने अपने आंचल से अपनी आंखों को रगड़कर साफ किया।

"गाड़ी से छुड़वा दूं?" आनंद कुमार के इस प्रस्ताव पर एक बार तो उसे अच्छा लगा, पर अगले ही पल उसने मना कर दिया—

"नहीं सर, बेवजह लोगों की निगाहें उठेंगी। फिर अम्मा-बाबूजी को मैंने इस बारे में कुछ नहीं बताया है। आपकी गाड़ी से जाने पर उन्हें आशंका होगी और फिर मुझे सच बताना होगा।"

मानवी का चेहरा उदास था।

आनंदकुमार गंभीर हो उठे।

"चलती हूं, सर! प्रणाम।" कहते हुए मानवी सिर झुकाए बाहर निकल गई थी।

आनंद कुमार कुछ सोचते हुए वहीं सोफे पर बैठ गए थे।

"भोला, कॉर्डलेस देना जरा।"

भोला ने अंदर आकर फोन उन्हें थमा दिया और आनंद कुमार की उंगलियां तेजी से कोई नंबर डायल करने लगी थीं।

सोलह

"मल्लू भइया, जरा चाय देना।" नाजबीबी साड़ी बटोरकर वहीं मल्लू साव की भट्ठी के पास नीचे ईंट की फर्श पर बैठ गई थी।

यह उसकी नित्य की चर्या बन गई थी। वह छैलू के साथ सोना को स्कूल भेजने के लिए गली के मोड़ तक आती और फिर उनसे अपरिचित बन जाती। छैलू सोना को सड़क के रास्ते स्कूल तक ले जाता और वह चोर निगाहों से उसे जाता हुआ देख लिया करती। मल्लू साव की दुकान पर बैठकर चाय पीती। मल्लू साव कभी-कभी अखबार की कोई रोचक खबर सुनाते, देश-दुनिया पर हलकी-फुलकी चर्चा करते। वह हां, हूं या 'क्या जमाना आ गया' कहकर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करती। कभी-कभी मल्लू साव ग्राहकों में व्यस्त होते तो वह स्वयं अखबार उठाकर पढ़ने लगती।

बस्ती-भर में उसके अलावा छैलू ही थोड़ा पढ़ा-लिखा था। लेकिन छैलू आज तक कभी मल्लू साव की दुकान पर बैठने नहीं आया। कुछ झेंपू स्वभाव, कुछ अभी तक इस बस्ती में स्वाभाविक रूप से शामिल न हो पाने के कारण मल्लू साव भी उससे कम ही परिचित थे। आते-जाते लोग देखते थे, परंतु हमेशा पाजामा-कुरता पहने रहने के कारण उसे ज्यादातर लोग गली में रहने वाला कोई सामान्य आदमी समझते थे। गली के अंतिम छोर पर, हिंजड़ों की बस्ती से कुछ पहले रहने वाले कुछ निम्नवर्गीय परिवार के लोग अवश्य उसे देखते और जानते थे। इसी जानने, न जानने के बीच पल-पल छिन-छिन, धड़क-धड़ककर आ-जा रहे थे। समय बढ़ रहा था। सोना बढ़ रही थी। छैलू अभ्यस्त हो रहा था। नाजबीबी परिस्थितियों के साथ आवश्यकतानुसार निकटता और दूरी बनाए रखने मे टूट रही थी, बिखर रही थी। सोना का ममता-भरा स्पर्श उसके इस बिखराव को जोड़ता रहता। उसके शुष्क जीवन में स्नेह का संसार रचता। वह भाव-विभोर हो उठती। भविष्य की आशंकाएं एक-बारगी कहीं लुप्त हो जातीं।

"लो नाजबीबी, चाय।" मल्लू साव की आवाज से वह चौंक उठी। वह अभी तक एकटक सड़क पर उधर ही देख रही थी जिधर सोना छैलू के साथ गई थी। वे अब दिखाई नहीं पड़ रहे थे। उसने मल्लू साव की ओर अपना हाथ

बढ़ा दिया चाय थामने के लिए।

"क्या बात है, नाजबीबी? आजकल बहुत चुपचाप रहती हो।" मल्लू साव ने एक कुल्हड़ चाय स्वयं के लिए छानते हुए पूछा। इस समय कोई ग्राहक उनकी दुकान पर नहीं था। सामने फुटपाथ के एकदम इस किनारे रखी बेंच खाली थी। वैसे भी दस बजे तक ग्राहकों की कमी हो जाती थी। सुबह सात बजे से नौ बजे तक उनकी अच्छी बिक्री होती थी। हिंजड़ा बस्ती के अधिकांश लोग दस बजे के बाद घूमते-फिरते उनकी दुकान पर चाय पी लेते। ज्यादातर सुबह के समय गूगा अकरम ही लोटे में चाय खरीद ले जाता। पर नाजबीबी रोज सुबह-शाम उनकी दुकान पर आकर ताजा और गरम चाय पी जाती।

"तबियत तो ठीक है न, नाजबीबी? आजकल गहकियाने भी अधिक नही जाती हो।" मल्लू साव ने एक जोरदार आवाज के साथ चुस्की ली तो उनकी सांवली, नंगी तोंद थरथरा उठी।

"नहीं, मल्लू भइया। तबियत तो मेरी ठीक है। ग्राहक लोग ठेंपी लगा दिए है—टेपका-टेपकी बंद। अब उनके ठेंपी लगी तो हमारे धंधे में भी तो ताला-कुजी लग ही जाएगी। यही हाल रहा लोगो का तो हम लोग तो दो रोटी को तरस जाएंगे।" नाजबीबी ने बीड़ी का अंतिम कश लेकर उसे सड़क पर फेंक दिया और चाय की चुस्की लेने लगी।

"तुम्हें अपनी रोटी की चिंता है। उन्हें ज्यादा पैदा कर लेने पर अपनी रोटी की चिंता है। सरकार को सबकी रोटी की चिंता है। चिंता में ही तो पूरा देश जल रहा है।" मल्लू साव ने एक सांस में चाय खत्म करते हुए कहा।

नाजबीबी तमककर बोली पड़ी—

"अरे, जाओ भइया! सरकार अंधी है अंधी। चिंता क्या हमारी खोपडी। हमारी रोटी की चिंता है क्या उसे? सबके ठेंपी तो जड़वा रही है, मुसलमान चार-चार औरत रखकर बीस-बीस बच्चे पैदा कर रहा है, तब सरकार को चिंता नही है। एक ही देश में दो आंख, दो नियम।"

"दो आंख तो भगवान ने ही दे दी हैं, नाजबीबी। हां, दो नियम तो ठीक नही है। पर उनका धरम आड़े आता है न।" मल्लू साव ने भट्ठी को पंखी से हौकते हुए कहा।

"आज की क्या खबर है?" नाजबीबी ने अखबार को सामने फैलाते हुए कहा।

"अरे क्या पढ़ोगी? हँसें कि रोएं? एक पहले मंत्री रह चुके को घोटाले की सजा में तीन साल की जेल और उधर बिहार की सीमा पर दबिश देने गए

दरोगा और सिपाहिया पर गाली बरसाकर अपराधी जंगल में भाग गए।'' मल्लू साव ने संक्षेप में पूरी खबर नाजबीबी को सुना दी।

''च्च...च्च...कोई मरा भी, मल्लू भइया?''

''अब खबर तो यही है कि तीन सिपाही घायल हैं और एक दरोगा बिचारा...'' मल्लू साब ने इशारे में अपनी गरदन एक तरफ लुढ़काकर समझाया।

नाजबीबी ने आश्चर्य से उंगली मुंह में दबा ली—

''हे मालिक, जब रखवाले ही सुरक्षित नहीं तो वे रक्षा क्या करेंगे?...क्या होगा भगवान?''

''अरे, हमें-तुम्हें कौन चिंता है, नाजबीबी? न हमारे आगे-पीछे कोई रोने वाला न तुम्हारे आगे-पीछे। बस, दूसरों का दु:ख देखकर जरा बरदाश्त नहीं होता, और नहीं तो क्या करना?'' मल्लू साव की भट्ठी दहक गई थी। उन्होंने केनली मे से पुरानी उबली चाय की पत्ती को बगल में पड़े राख के ढेर पर गिराकर केतली में चाय का नया पानी चढ़ा दिया—न जाने कब कोई ग्राहक आ जाए। पानी खौलता रहता है तो चाय जल्दी तैयार हो जाती है।

नाजबीबी अभी भी सोच में पड़ी थी। उसे दरोगा के परिवार पर तरस आ रहा था—

''हाय, हाय, मल्लू भइया! उसके छोटे-छोटे बाल-बच्चे होंगे। औरत होगी। किसके भरोसे जीएंगे सब? नाश हो इन पापियों का...अब भगवान को अवतार लेना चाहिए धरती पर। पाप का घड़ा भरता जा रहा है लोगों का।''

नाजबीबी अखबार में छपी उस खबर को ढूंढ़ने लगी। मल्लू साव ने कमर मे बंधी लुंगी की मुरेठी से सुर्ती की डिबिया निकाली और उसे हथेली पर धीरे-धीरे रगड़ते हुए बोले—

''क्या कहोगी, नाजबीबी? वो सामने देख रही हो न पुलिसवाले को? हाथ में क्या है?''

''लाठी।'' नाजबीबी ने अखबार से नजरें उठाकर सामने सड़क पर पैदल जा रहे खाकी वर्दीधारी सिपाही के हाथ में थमी लाठी देखकर कहा।

''अब तुम्हीं बताओ? आज तो इतने तरह के नए-नए हथियार न जाने किन रास्तों से होकर हमारे देश के अपराधियों तक पहुंच जा रहे हैं, और हमारी पुलिस के हाथ में डंडा। क्या मुकाबला करेंगे ये? बहुत हुआ तो दरोगा वगैरह को रिवाल्वर पकड़ा देगी हमारी सरकार। अब जहां तड़-तड़ बौछार हो रही है ए.के. सैंतालीस और छप्पन से वहां बेचारा दरोगा अपनी जान ही न गंवाएगा? क्यों कोई अपराधियों के छत्ते में हाथ डालेगा? खिला-पिला के सब लोग पाल-पोस रहे है।

खीसनिपोरी कर रहे हैं उनके साथ। जिनका किसी से ऐसा तालमेल नहीं है और जो सचमुच कुछ करना चाहते हैं उसके बीबी-बच्चे ऐसे ही अनाथ होकर दर-दर भटकेंगे।''

मल्लू साव की नजरें अभी भी उसी सिपाही का पीछा कर रही थीं।

''ठीक ही कहते हो, भइया। इस डंडे से वे हमें हड़का सकते हैं, ट्रकवालों को पकड़कर दो-चार रुपया वसूल कर सकते हैं, लेकिन अभी कोई जरा हेकड़ी वाला आदमी तनकर सामने खड़ा हो जाए तो लंगोट खराब हो जाएगी इनकी।'' कहते हुए नाजबीबी पुन: अखबार पर झुक गई।

मल्लू साव ने सुर्तीवाली हथेली नाजबीबी के सामने फैला दी। नाजबीबी ने एक चुटकी सुर्ती लेकर निचले होंठ के पीछे दबा लिया और चुपचाप सिर झुकाकर पढ़ने लगी।

मल्लू साव ने बात जारी रखी—

''असल में होता क्या है, नाजबीबी, कि लड़ने का दम वही भर सकता है जिसे यह फिकर न हो कि मरने के बाद फलां का क्या होगा? सभी परिवार के लिए ही तो चाकरी कर रहे हैं। बड़ों को बड़ा घोटाला करते देखते हैं तो सोचते है कि चलो, हम छोटा ही करें। इसी में सब कारोबार चल रहा है। हम-तुम इसलिए भी ईमानदार हैं कि हमारे पास वैसा करने का मौका ही नहीं, नही तो शायद हम भी वैसा ही सोचते।''

''सही कह रहे हो, मल्लू भइया। हम किसके लिए जोड़े-घटाएं? दो रोटी मिल जाए, बस।''

''क्या बात है, नाजबीबी! आजकल वो रामसरन नहीं आया बहुत दिनों से? वही तुम्हारा गिरिया? वह भी पुलिस में ही है न?'' एकाएक मल्लू साव को रामसरन की याद आ गई थी, क्योंकि कभी-कभी रामसरन शाम के समय मल्लू साव की दुकान पर बैठकर नाजबीबी को बुलवा भेजने का संदेश देता था। कभी-कभी रिक्शे में बैठकर नाजबीबी उसके साथ शाम को कहीं जाती और रात में आठ-नौ बजे तक वापस आ जाती।

एक बार मल्लू साव ने नाजबीबी से दबे स्वर में पूछा तो नाजबीबी ने ही उसे अपना गिरिया बताया था। मल्लू साव को कुछ-कुछ समझ में आया, कुछ नही आया। एक हिंजड़े के साथ किसी सामान्य पुरुष का जुड़ाव? कभी-कभी मल्लू साव के मन में आता कि पूछें, पर अगले ही पल वे रामसरन के पुलिस मे होने के भय से कुछ नहीं पूछ पाते। आज एकाएक याद आ गया तो पूछ लिया—

"वो तो कब का ट्रांसफर हो इस शहर से चला गया, मल्लू भइया। अरे, हो गए तीन-चार बरस।"

"तो कोई दूसरा गिरिया?"

मल्लू साव के प्रश्न को नाजबीबी ने बीच में ही रोक दिया और अपनी जीभ काटते हुए बोली—

"राम, राम, ऐसी रोजी न करें भगवान। किसी न किसी तरह कट ही जाएगी भइया। हम लोग हिंजड़े हैं तो क्या हुआ? कुछ उसूल है हमारा भी। हम वेश्या थोडे ही हैं। एक तो जल्दी हम ये करम फानते नहीं, और यदि किसी मजबूरी में गिरिया बना ही लिया किसी को तो जीवन-भर निभाते हैं। वह भले ही हमें छोड दे, पर हम वफादार कोती[1] की तरह तमाम उम्र बिता देते हैं। वैसे ही जैसे बडे लोगों के घर की लुगाई कहीं दूसरे पर नहीं जातीं।"

"अच्छा, यह बात है? तब तुम्हारी ही बस्ती की वह सबीहा क्यों रोज नए-नए लोगों के साथ जाती है?...मैं तो यहीं बैठा पूरी दुनिया का रमूजा बूझता रहता हू।" मल्लू साव ने भेद-भरे ढंग से कहा।

"अब क्या है, भइया, कि किसी-किसी में पेट की आग बरदाश्त करने की बहुत आदत नहीं होती। सबीहा अच्छे घर से है। खाते-पीते घर की। यहां आकर भी उसकी खाने-पीने की आदत नहीं छूटी है। हम लोग तो हालात से समझौता कर लेते हैं। कभी मिल गया तो मुर्गा-मलीदा भी खा लिया, नहीं हुआ तो एक टुकड़ा नमक मुंह में डाल, पानी पीकर सो रहे। अब धंधा बारहों महीने एक जैसा तो नहीं रहता...शायद इसी मजबूरी में आप सबीहा को ऐसा करते देखते होगे। नहीं तो हम कोई इनसान तो हैं नहीं कि हमारे तन की आग हमें ऐसा करने को मजबूर करे। बस पेट की आग से..."

एकाएक नाजबीबी झटके से अपनी बात अधूरी छोड़ खड़ी हो गई थी। सामने सड़क के उस तरफ स्कूल की गलीवाले मोड़ पर तीन लड़के मिलकर किसी कुरता-पाजामा वाले व्यक्ति को लातों-मुक्कों से पीट रहे थे। आठ-दस लोगों की छिटपुट भीड़ इधर-उधर खड़ी मूक दर्शक की तरह तमाशा देख रही थी। एकाध स्कूटर और साइकिल सवार भी अपने-अपने पैर सड़क पर टिका कुछ देर यह मारपीट देखने के बाद सर्र से आगे निकल जा रहे थे। मल्लू साव भी अपनी भट्ठी के पास खड़े होकर देखने लगे थे। नाजबीबी ने उनकी बांह पकड़कर घसीटते हुए कहा—

"क्या देख रहे हो, भइया? ये छिबरी के औलाद तो उस बेचारे को मारकर

---

1 रखैल (सांकेतिक शब्द)

अधमुआ कर देंगे! चलो...''

और पलक झपकते ही नाजबीबी दौड़कर वहां पहुंच गई थी। मल्लू साव भी हांफते हुए जाकर एक तरफ खड़े हो गए थे। इस तरह के झगड़े तो वे रोज देखते-सुनते हैं। कहां तक निपटारा करते फिरेंगे? और फिर जमाना भी वो नहीं रहा कि कोई किसी की सुने। उलटे दुश्मनी ही साध लेंगे। पर इस नाजबीबी के ललकारने के कारण वे दुकान छोड़कर आ गए। एक हिंजड़े की निगाह में गिरना भी तो ठीक नहीं है, फिर रोज का उठना-बैठना!

नाजबीबी भीड़ को चीरती हुई उन लड़कों तक पहुंच गई और अपनी साड़ी का आंचल कमर में खोंसती हुई बोली—

''हे, हे, छिबरी की औलादो, एक अकेले पर जोर आजमा रहे हो। अरे, मा का दूध पीया है तो अकेले निपट।'' नाजबीबी ने अपने दोनों हाथों से दो लड़कों की शर्ट पीछे से पकड़कर खींचते हुए कहा।

''बड़ा हीरो बनता है साला!'' तीसरा लड़का अब भी गुत्थम-गुत्था था। दोनों लड़के नाजबीबी को बीच-बचाव करते देख खिसिया गए थे। भीड़ उन्हें देखकर हँस रही थी।

''चल यार दिनेश, छोड़ उसे। अब हीरो नहीं बनेगा।''

कहते हुए तीनों हाथ झाड़ते हुए गली में खड़े स्कूटर पर सवार हो गए थे और किक मारकर स्टार्ट करने लगे थे। नाजबीबी ने जमीन पर औंधे मुंह पड़े उस आदमी को सहारा देकर उठाया तो चौंक पड़ी—

''अरे, छैलू तुम?'' वह भौंचक्की-सी छैलू को देख रही थी।

''क्या हुआ, छैलू? ये क्यों तुझे...'' उसने सामने गली में देखा। तीनों लडके गुस्से में उसे घूरते हुए स्कूटर पर सवार हो चुके थे। नाजबीबी ने पास पडे एक पत्थर के टुकड़े को उठाया था और उसे ताने हुए तेजी से उनकी तरफ दौडी थी।

''रुक हरामजादे...देखूं तेरी मर्दानगी...'' लड़के नाजबीबी का आक्रमक रूप देखकर जल्दी से स्कूटर बढ़ाकर गली के अंदर स्कूल की ओर भाग गए थे। नाजबीबी ने कुछ दूर उनका पीछा किया, परंतु थोड़ी ही दूर पर सोना का स्कूल होने के कारण वापस छैलू के पास चली आई। पत्थर एक ओर फेंक वह छैलू के पास खड़ी हो गई थी। भीड़ अब छंट गई थी। मल्लू साव अब भी खडे देख रहे थे। नाजबीबी ने छैलू के कुरते पर लगी धूल झाड़ते हुए पूछा—

''क्यों मार रहे थे ये सब तुम्हें?''

''वो, नाजबीबी, सोना के स्कूल की एक बड़ी लड़की है...सयानी हो रही

ह...उसे य सब रोज तग करते थे। आज भी उसका दुपट्टा खीचते हुए मैंने देख लिया...वह स्कूल के दरबान से बताने लगी तो वह उलटे लड़की को ही उलटा-सीधा कहने लगा। तब मैंने इन सबों को डांटा तो ये सब मेरे पीछे पड़ गए..."

छैलू अपने होंठ से रिस रहे खून को अपने कुरते की बांह से पोंछते हुए झेंपकर बोला।

"पर तुम्हें क्या पड़ी थी बीच में टांग अड़ाने की?" मल्लू साव ने बड़े-बुजुर्ग की तरह समझाया।

छैलू कुछ क्षोभ और कुछ आक्रोश से बोला—

"कल को सोना भी बड़ी होगी तो क्या मैं उसके साथ किसी की इस तरह की हरामीपंथी को बरदाश्त कर लूंगा? उसके साथ कभी ऐसा हुआ तो..." मल्लू साव निरुत्तर-से हो उठे थे।

"चल, छैलू, चल। गरम-गरम चाय पी ले! मैं तेरा घाव वहीं साव की भट्टी से सेंक भी दूंगी।" नाजबीबी ने प्यार से छैलू का हाथ थाम लिया था।

मल्लू साव आगे-आगे चल रहे थे और वह उनके पीछे-पीछे छैलू को सहारा दिए सड़क पार कर रही थी।

"मल्लू भइया, जरा गरम-गरम चाय बनाना...और जरा उसमें हल्दी भी डाल देना एक चम्मच।" नाजबीबी ने छैलू को भट्ठी के पास बेंच पर बैठाते हुए कहा।

"पर हल्दी तो नहीं है, नाजबीबी।"

"मैं अभी ले आई।" कहते हुए नाजबीबी बगल की दुकान पर हल्दी लेने चली गई थी।

"तुम भी इन्हीं की बस्ती में रहते हो क्या?" मल्लू साव ने अपनी उत्सुकता प्रकट की।

छैलू की समझ में नहीं आ रहा था कि वह मल्लू साव से सच बोले या झूठ? उसे सोना का ध्यान आ गया था और उसने जानबूझकर पीड़ा का बहाना कर अपनी दोनों आंखें मींच लीं।

"लो भइया, डाल दो फटाफट!" नाजबीबी ने हल्दी के छोटे पैकेट को फाड़कर मल्लू साव को थमा दिया और स्वयं आंचल को गोल लपेटकर, भट्ठी की आंच में गरम करके छैलू के चेहरे की सूजन सेंकने लगी थी।

"यह सोना कौन है, नाजबीबी? अकसर सुबह इन्हीं के साथ स्कूल जाती है।" मल्लू साव ने चाय के उबाल पर फूंक मारते हुए कहा।

"अब क्या बताऊं, भइया? बड़ी लंबी कहानी है। आपसे अपने बारे में सब

बात बता चुकी हूं। एक यही नहीं बता पाई थी। उसे भी बता देना चाहती हूं। दिल का बोझ हलका हो जाएगा।'' नाजबीबी ने फुसफुसाते हुए कहा।

छैलू ने आंख दबाकर उसे कुछ न बताने का इशारा किया तो नाजबीबी फीकी हँसी हँसते हुए बोली—

''कोई बात नहीं, छैलू। एक मल्लू भइया ही तो हैं जो मेरी पूरी कहानी जानते हैं। दुख से लेकर सुख तक। जब कभी मन भारी होता है तो इन्हीं को माई-बाप समझ अपने मन का बोझ हलका कर लेती हूं। ये भी आज तक किसी से चू नहीं किए।''

''अरे, हमारे आगे-पीछे कौन है, नाजबीबी, जो उससे जाकर कहूंगा?.. फिर इस प्रपंच से क्या फायदा? दिन-भर दुकानदारी, सांझ को कुछ खा-पीकर इसी मे सो रहता हूं। घर किराये पर उठा दिया है। मरने के बाद सरकार ले ले, चाहे पडोसी। क्या करना है?...बाल-बच्चे हैं नहीं कि जिनके लिए सोचूं।''

मल्लू साव चाय छानने लगे थे। छैलू को भी उनमें उत्सुकता होने लगी थी—

''और आपकी औरत?''

''वह तो कई साल पहले चल बसी, भइया।'' मल्लू का स्वर दुखी था।

छैलू चुप हो गया। वह कुछ और पूछकर मल्लू साव को दुखी नहीं करना चाहता था। बेचारे, कितने भले आदमी हैं! तुरंत उसके लिए चाय बनाने लगे थे।

छैलू मन ही मन मल्लू साव के व्यवहार की तारीफ कर रहा था।

नाजबीबी ने चाय का गिलास उसे पकड़ा दिया।

''क्यों नहीं गिराकर किसी एक को तुम भी थुरे भइया? तुम्हारा भी तो हट्टा-कट्टा शरीर है, जवान हो।'' मल्लू साव ने छैलू को ललकारा।

छैलू अपनी असफलता पर झेंप गया। घावों में एक अपमान की टीस भी उभरने लगी। खिसियानी हँसी हँसते हुए बोला—

''क्या बताऊं, सावजी! वो सब पीछे से आकर एक साथ मेरे ऊपर धावा बोल दिए, नहीं तो...सामने से आते तो दिखाता मैं कि कितनी ताकत है उनमें और हमारे हाथ में। कोई सुरा-सुंदरी के चक्कर में अपनी ताकत...''

''अच्छा चुप रह छैलू, नहीं तो मिलिट्री वाले तुझे जबरदस्ती उठा ले जाएंगे।'' नाजबीबी ने हँसते हुए छैलू की बात बीच में काट दी।

छैलू खिसियाया-सा सड़क की ओर मुंह करके चाय पीने लगा था। उसे सोना की चिंता हो रही थी। कहीं वह लिवाने जाए और रास्ते में फिर वे बदमाश लडके मारपीट करें तो वह सोना को लेकर क्या करेगा? कहीं उसे भी चोट-

चपट लग जाए तो...वह विचलित हो उठा—नाजबीबी के स्कूल जाने से तो सब भेद खुल जाने का भय है। वैसे भी आजकल सोना रास्ते-भर उससे न जाने कैसे-कैसे सवाल करती चलती है। थोड़ा पढ़ना-लिखना जो सीख गई है।

"छैलू कक्का, रोज तुम ही क्यों आते हो मुझे लिवाने? मेरी दोस्त नेहा की तो मम्मी आती हैं।"

"...मुझे टाफी दिलाओ नहीं तो मैं सबसे बता दूंगी कि मेरी मम्मी खटाल पर काम नहीं करती। वो डामरी और छमकने लेकर..."

"चुप्प..." एकाएक छैलू की आवाज सुनकर मल्लू साव से बात करती नाजबीबी चौंककर उसे देखने लगी थी। छैलू अभी भी सड़क की ओर मुंह किए हाथ में चाय का गिलास थामे चुपचाप न जाने क्या देखे जा रहा था।

"क्या हुआ, छैलू? किसे चुप करा रहे हो?" नाजबीबी ने पूछा तो छैलू चौंककर वर्तमान में आ गया था। अपने मुंह से निकली आवाज के बारे मे अनजान-सा वह नाजबीबी से पूछ बैठा—

"मुझसे कुछ कहा क्या, नाजबीबी?"

"जल्दी ही तू पागलखाने की हवा खाएगा।" वह हँस पड़ी, और पुनः फुसफुसाहट वाले स्वर में मल्लू साव से बात करने लगी थी। छैलू को संदेह हुआ—कहीं नाजबीबी सोना के बारे में तो नहीं बता रही है? क्या भरोसा मल्लू साव का? कहीं पुलिस को...

छैलू ने एक घूंट में चाय समाप्त की और गिलास रखने के बहाने भट्ठी के पास जाकर खड़ा हो गया। नाजबीबी का अंतिम वाक्य उसके कान में पड़ा—

"तो इस तरह, भइया, सोना मेरे सिर पड़ गई और अब तो इतना हिये से लग गई है कि न हम उसे छोड़ पा रहे हैं और न ही वह छोड़कर कहीं रहने को राजी है। कुछ समझ में नहीं आता। अभी दो दिन के लिए हम कहीं चले गए थे तो रो-रोकर छैलू को हलकान कर डाली थी। बस, थोड़ा-बहुत इसी के साथ रुकती है।"

छैलू को आश्चर्य के साथ भय भी हुआ। नाजबीबी मल्लू को सोना के बारे मे सब कुछ क्यों बता रही है? उसने नाजबीबी के पैर को अपने पैर से दबाकर चुप रहने का इशारा किया तो नाजबीबी ने उसे आश्वस्त किया—

"घबड़ाओ मत, छैलू। मल्लू साव से कोई खतरा नहीं हम लोगों को। बडे भले इनसान हैं ये। सही सलाह देंगे।" और वह सलाह की प्रतीक्षा में मल्लू साव की ओर देखने लगी।

मल्लू साव ने सुर्ती की पीक को थूककर मुंह साफ किया और खंखारने

के बाद बोले—

"फिर तो कभी भी लफड़ा हो सकता है, नाजबीबी। कितने दिन तक ऐसे छिपा पाओगी? लड़की अब बड़ी हो रही है। बाहर जाती है। दुनिया देख रही है। आज नहीं तो कल तुमसे पूछेगी ही कि क्यों तुम सबकी मां की तरह नहीं हो? यही नहीं, और भी तमाम तरह के सवाल करेगी। किस-किस बात पर झूठ बोलकर समझाओगी? फिर, धीरे-धीरे उसे सच और झूठ का अंतर भी तो करना आ जाएगा? पागल तो है नहीं वह।"

"इसी सबके फेर में तो कभी-कभी खाना भी अच्छा नहीं लगता, मल्लू भइया। कहां के चक्कर में फंस गए हम? बिना गुनाह किए गुनाहगार बनते जा रहे हैं हम। पुलिसवालों को पता चल-भर जाए तो नाक में दम कर देंगे। कुछ नही सूझता कि क्या करूं? बस, सोना के मोह में पड़े हम अपना गुनाह बढाते जा रहे हैं।"

नाजबीबी अपने माथे पर हाथ रखकर बैठ गई थी। उसके चेहरे से उद्विग्नता झलक रही थी।

"मेरी मानो तो, नाजबीबी, उसे चुपचाप अनाथालय में दे आओ।" मल्लू साव ने सुझाव दिया।

"अरे भइया, रो रोकर जान दे देगी वह। बहुत जिद्दी है। फिर अपने कलेजे को पत्थर का कैसे कर लें?"

"करना तो पड़ेगा ही, नाजबीबी।"

"लेकिन वहां छोड़ आने पर भी तो वह हम लोगों का नाम बता देगी, फिर...?"

"इतना सिखा-पढ़ाकर भेजना होगा कि..."

"सिखाने में ही तो वह जाने से इनकार कर देगी। अभी बच्ची ही तो है।" नाजबीबी के मन पर मानो भारी दबाव-सा पड़ने लगा था। सोना से बिछुड़ने की कल्पना मात्र से उसका हृदय हाहाकार करने लगता था।

छैलू खड़ा-खडा उन दोनों की बातें सुन रहा था। नाजबीबी की अंतिम बात सुनकर उसे थोड़ी शांति मिली और उसने अपना निर्णय सुना दिया—

"अभी सोना को थोड़ा और सयानी हो जाने दो। थोड़ी समझदार हो जाएगी तो हम लोगों की मजबूरी समझ लेगी और अनाथालय चली जाएगी।"

"जैसा तुम लोग उचित समझो, भाई।" मल्लू साव ने कुछ असमंजस के साथ कहा।

लेकिन छैलू को प्रसन्नता हुई। लगा, जैसे संकट कुछ दिन और टल गया।

''भइया, यह बात तुम्हारे सिवा किसी को नहीं मालूम। बस, हमारी इज्जत रखना।'' नाजबीबी ने अपने दोनों हाथ जोड़ दिए मल्लू साव के सामने।

''अरे भाई, हमें इतना कच्चा समझती हो क्या, नाजबीबी? जाओ, निश्चिंत रहो।''

''तुम घर चलो, नाजबीबी। मैं कुछ देर में सोना को लेकर आता हूं। आज उसकी जल्दी छुट्टी होगी।'' छैलू ने अपने माथे के गुलमे को सहलाते हुए कहा।

''पर आज तुम्हारा जाना ठीक नहीं है, छैलू। कहीं वे मुस्टंडे फिर...?''

''अरे, नाजबीबी की बात? इतनी हिम्मत हो जाएगी उनकी कि दुबारा भिड़ेंगे? पटककर वो खमचूंगा कि...''

''ऐसा करो कि सोना को दो-चार दिन की छुट्टी दिला दो, छैलू। उसके बाद...मेरा जाना तो ठीक नहीं।'' नाजबीबी के चेहरे पर असमंजस का भाव था। वह सोना और छैलू की सुरक्षा को लेकर चिंतित थी।

''मेरे कारण सोना की पढ़ाई नुकसान करवाओगी? नहीं, सोना छुट्टी नहीं लेगी। मैं अब सतर्क रहूंगा। कोई बात नहीं होगी।''

नाजबीबी वहीं बैठ गई और छैलू स्कूल की ओर चला गया।

सत्रह

"जरा एक न्यूज बना दो, मानवी।" हरींद्र मानवी के ऑफिस में आज फिर उपस्थित था।

भयाक्रांत मानवी के चेहरे पर कुछ असहजता थी। इतनी जल्दी हरींद्र फिर उसके ऑफिस में आ जाएगा और अपना काम करवाना चाहेगा, इसकी उसे रचमात्र कल्पना भी नहीं थी। आज जब वह घर से ऑफिस पहुंची तो बाहर ही तारक ने बताया था कि उससे कोई मिलने आया है। कमरे के सामने पहुंचते ही उसने देखा था—हरींद्र दरवाजे के पास पड़ी पुरानी बेंच पर अपनी दोनों टांगें फैलाए आराम से बैठा है। वह चिहुंक उठी। मन में एक अज्ञात आशंका पैठ गई थी। क्यो आया है यह? कहीं ऑफिस वालों को यह जताना तो नहीं चाह रहा है कि वह मानवी का पुराना...

अपमान की पीड़ा से मानवी का चेहरा तमतमा आया। कान गरम-गरम-से लगने लगे थे। दिल की धुक्-धुक् जल्दी-जल्दी होने लगी थी। एक बार मन मे आया कि वह उलट ले जैसे कि उसे इस ओर आना ही नहीं था। या किसी और काम से कहीं और जाना है। वह ठिठकी, पर मुड़ने से पूर्व ही एक लोलुप हँसी से उसके पैर जमीन से चिपक गए थे। लगा, उसका डर सीने से बाहर आकर हरींद्र के सामने बिखर गया हो।

"मैं तुम्हारा ही इंतजार कर रहा था, मानवी। एक जरूरी काम आ गया है।" वह दोनों हाथ पाकेट में डाल खड़ा हो गया था। नीली जींस और काली शर्ट के ऊपर माथे पर इंगुर का लंबा-सा लाल टीका। सब मिलाकर किसी फिल्मी खलनायक की प्रतिकृति-सा।

"क्या काम है?" मानवी ने अपने बिखरे भय को समेटते हुए कुछ रूखा बनने का प्रयास किया।

"अरे, कमरा तो खोलो...मुझे बैठाओ। यहां खड़े-खड़े विदा करना चाह रही हो क्या?" उसके खलनायकी के हैंगर में एक विद्रूप हँसी भी जाकर टग ई।

मानवी विवशता में अपने कक्ष का दरवाजा खोलने लगी। चाबी घुमाते हुए

वह गरदन थोड़ी टेढ़ी करके कनखियों से ऑफिस में लोगों की उपस्थिति का अनुमान लगाने लगी थी। कोई कुअवसर आने पर कोई साथ देने वाला है या नहीं?

"मैंने तुम्हारे चपरासी को चाय लाने भेज दिया है। सोचा, तुम तो चाय पूछोगी नहीं।" एक व्यंग्य-भरी हँसी पुनः हरींद्र के चेहरे पर नत्थी हो गई।

मानवी अंदर ही अंदर तिलमिला उठी...यानी तारक को चाय लेने इसी कमीने ने भेजा है। नहीं तो इतनी सुबह घर से आते ही ऑफिसवाले क्यों चाय पीने लगे? वह ताला-चाभी हाथ में लिए आकर अपनी कुरसी पर बैठ गई। क्रोध और भय से दिमाग सांय-सांय कर रहा था। समझ में नहीं आ रहा था कि हरींद्र के साथ इस समय कौन-सा व्यवहार करे? चीखने-चिल्लाने से अपना ही अपमान...फिर उसके काम से ईर्ष्या रखने वालों के लिए कितनी प्रीतिकर होगी यह खबर! चटखारे ले-लेकर एक मेज से दूसरी मेज तक पहुंच जाएगी।

"बिटिया, चाय...यही, बाबूजी ने मंगाया...कह रहे थे आज मैं स्वागत करूंगा आपकी मैडम का...अब रिश्ता ही मजाक वाला है तुम्हारा तो...।" तारक केतली से चाय ढालते हुए बोलता जा रहा था।

"बाबा, तुम बाहर बैठो। मैं जरूरत होगी तो बुला लूंगी।" तारक की बाते सुन मानवी का रक्तचाप बढ़ता-सा प्रतीत होने लगा था। शायद हरींद्र ने अपना संबंध कुछ दूसरा ही बताया था, तभी...उसने उड़ती निगाह से हरींद्र को देखा। वह बेपरवाही से अपनी टांगें मानवी की मेज के नीचे तक फैलाए मुसकरा रहा था। मानवी का बदन जैसे आवां-सा सुलग रहा था।

"कहिए, क्या काम है?"

"एक न्यूज देनी है।" वह बिना पूछे चाय की चुस्कियां लेने लगा था।

"कैसी न्यूज?"

"कि विद्यालयों में 'वंदेमातरम्' गवाना इस्लाम के खिलाफ है।"

"क्या?" वह बुरी तरह चौंक उठी।

वह निर्लज्ज हँसी हँस पड़ा।

"यह मन्नाबाबू चाहते हैं।"

"कौन मन्नाबाबू?" जानते हुए भी वह हड़बड़ाहट में पूछ बैठी।

"क्या? सचमुच तुम नहीं जानतीं उन्हें?"

"हां...पर, यह कौन-सी न्यूज हुई?"

"यही तो असली न्यूज है। बाकी तो सब हम करेंगे। छपवाने का जिम्मा भइयाजी ने हमें दिया है...हमने भी बता दिया है कि मानवी अपनी बहुत खास है। जरूर काम हो जाएगा।" वह सिर को एक भेद-भरे ढंग से झटका देते हुए

आगे की ओर झुक आया।

"पर इस तरह का विवाद राजधानी में बहुत पहले ही उठ चुका है...शांत भी हो चुका।"

"सारे विकास के कार्य राजधानी से ही चलकर तो गांव-गांव, शहर-शहर पहुचते हैं? अब देर तो होनी ही है।" एक फूहड़ हँसी उसके होंठों को लीप गई।

"वह तो जबरदस्ती का गढ़ा मुद्दा था। आज इस तरह के मुद्दों को लोग बेवकूफी-भरा षड्यंत्र कहेंगे।"

"कहने दो।"

"पर, आज क्या मुसलमान घरों के बच्चे नए सिरे से इस राष्ट्रगीत को गान लगे हैं? आजादी के पहले से ही इसे हिंदू-मुस्लिम दोनों ही क्रांतिकारी गाते रहे है। क्या तब धर्म सोया था जो आज जाग पड़ा? हुं:..."

मानवी को अपने अनावश्यक तर्क पर क्षोभ हुआ। क्यों वह इस तरह के प्रकरणों पर चिढ़ उठती है? बहुत-से पत्रकार हैं? केवल नौकरी से मतलब। फिर इस समय, जबकि हरींद्र जैसा दुश्मन सामने बैठा हो, उसे ये सब तर्क नहीं देने चाहिए। अधिक बोलने का अर्थ कहीं वह गलत न लगा ले?

"देखो, उसके इतिहास-भूगोल पर हमें लेक्चर मत दो। बस, न्यूज पहले पहुचा दे रहा हूं। कल सवेरे कई स्कूलों पर मुस्लिम नेताओं का धरना-प्रदर्शन होगा। परसों सवेरे यह न्यूज जरा मिर्च-मसाला लगाकर छाप देना। शाम को आगे की योजना भी समझा दूंगा...जरा अपना टेलीफोन नंबर देना।" हरींद्र की इस अनावश्यक अधिकार-भावना से वह चिढ़ उठी थी।

"आपको मालूम नहीं है शायद, मि. हरींद्र कि न्यूज वह भी सिटी टेबल मेरे पास नहीं है। वह मि. मिश्र. .आप जाकर पता कर सकते हैं।" वह मि. मिश्र का नाम लेते-लेते रुक गई थी। क्यों वह अपना परिचय उससे बताए?

"वो मिश्र-फिश्र से हमें नहीं मतलब। बस, न्यूज परसों आनी चाहिए।" वह तमककर बोला।

"तुम मुझे ब्लैकमेल करना चाह रहे हो?" मानवी ने दांत पीसते हुए कहा।

"ब्लैक नहीं, बस मेल करना चाह रहा हूं। आज भी मैं..."

"शट अप एंड गेट आउट। तुमने हिम्मत कैसे की?"

अब तक का धधकता लावा फूट पड़ा। उसकी चिनगारियां आंखों से उड-उडकर हरींद्र को राख कर देने की पूरी कोशिश करने लगीं। हरींद्र ने एक क्षण को उठकर दरवाजे के बाहर झांका और एक संतोष की झलक लिए पुन: उसकी मेज के दूसरी ओर सटकर खड़ा हो गया। उसके चेहरे के संतुष्ट भाव से मानवी चौंक पड़ी। थोड़ी देर पहले का गरम लावा धुआं बन गया। उसे समझ में आ गया

कि शायद तारक बाहर नहीं बैठा है अन्यथा उसकी ऊंची आवाज सुनकर अवश्य अंदर आ गया होता। सामने खड़े हरींद्र की वहशी निगाहें उस पर टिकी थीं। किसी अनिष्ट की आशंका से वह कांप उठी। उसने पूरी ताकत लगाकर आवाज दी—

"तारक, ओ तारक...!"

"क्यों चिल्ला रही हो? वह बाहर नहीं है। फिर अपनी बदनामी अपने ही ऑफिस में करवाना चाह रही हो?" कहते हुए हरींद्र ने अपने दोनों हाथों में उसका चेहरा भर लिया था।

उसके इस अप्रत्याशित और अभद्र व्यवहार के लिए वह बिलकुल तैयार नही थी। एक क्षण के लिए उसका मस्तिष्क सन्न से घूम गया, पर दूसरे ही पल उसने एक जोरदार थप्पड़ उसके गाल पर जड़ दिया था। हरींद्र ने झपटकर उसका थप्पड़ वाला हाथ पकड़ लिया और अपनी उंगलियो में तोड़ देने की सीमा तक दबाते हुए क्रोध में बोला—

"तेरी इस मर्दानगी को मैं जब तक औरत नहीं बना दूंगा, नाम नहीं।"

"तारक। तारकऽऽ!" वह बचाव की मुद्रा में जोर से चिल्ला पड़ी थी। हरींद्र ने उसका हाथ झटक दिया और गुस्से में घूरता हुआ बाहर चला गया।

तारक नहीं आया था। शायद बाहर कहीं गया था। पर तारकरूपी पुरुष की परछाईं ने फिर एक बार उसकी रक्षा की थी। वह दोनों हाथों में अपना सिर थाम, मेज पर कुहनी टिका बैठ गई थी। सांस धौंकनी की तरह चल रही थी। उसने उठकर दरवाजा अंदर से बंद कर लिया, ताकि जी भरकर अपनी असहायता पर रो सके। ताकि तारक या कोई अन्य इस घटना को न जान सके। ताकि, हरींद्र दुबारा न आ जाए। और भी न जाने कितने ताकि...

वह मेज पर माथा टिका फफक पड़ी थी। कुछ देर तक यूं ही रोती रही अपनी विवशता पर। अम्मा-बाबूजी से कहे, तो भी क्या...? उनका तनाव ही बढेगा। भइया-भाभी को कोई मतलब ही नहीं। जब, तब नहीं था, तो अब तो दूरी और भी...डी.एम. साहब ने उस दिन आश्वासन दिया था, पर अभी तक क्या कर पाए? एक लड़की की सुरक्षा तक तो...पर हो सकता है, उन्होंने टेलीफोन किया हो? वह कल ऑफिस भी तो नहीं आई थी। इस समय फोन करके देखना चाहिए। हो सकता है अभी घर पर मिल जाएं?

उसने आनंद कुमार का नंबर मिलाया था। नंबर डायल करते हुए उंगलिया अभी तक थरथरा रही थीं। उसने अपने दुपट्टे से आंसू सुखाए। क्या कहेगी वह आनंदजी से? कि फिर आज हरींद्र ने...? कि वह सचमुच एक कमजोर नारी ही है? अपने फीचर में बडी-बडी बातें करने वाली एक सामान्य और कमजोर-सी नारी? उसका मन पुन भर आया लगा सारे आसू आकर गले मे जमा हो गए

हैं।

उधर फोन की घंटी बज रही थी। उसने रिसीवर पुनः फोन के ऊपर रख दिया। अभी ऐसी मनःस्थिति नहीं उसकी कि वह आनंद कुमार से बात कर सके।

ठक्-ठक्-ठक्...

कोई दरवाजे पर दस्तक दे रहा था। मानवी का हृदय पुनः धड़क उठा भय से। कहीं हरींद्र वापस तो नहीं...उसने अपनी आवाज को कड़क बनाते हुए पूछा—

"कौन?"

"अरे बाप रे, मानवी, मैं हूं, फातिमा! तू तो डांट रही है।"

मानवी आश्वस्त हुई। कुछ भरोसा भी हुआ। कुछ देर के लिए ही सही, हरींद्र का भय नहीं। अपना ही ऑफिस उसे डरावना लगने लगा था। फातिमा की आहट से वह भय कुछ देर के लिए दूर हो गया था। मानवी ने जल्दी से उठकर अपना चेहरा दुपट्टे से पोंछा था ताकि कुछ देर पहले का तूफान प्रकट न हो। फातिमा उसकी सहेली अवश्य बन गई है, पर आज तक राजदार नहीं बन पाई है। बनारस आने पर पहली और अंतिम सहेली यही है। इसी ऑफिस में फातिमा सिटी टेबल देखती थी, पर जब केंद्रीय विद्यालय में बनारस में ही पी.जी.टी. हिंदी पर नियुक्ति हो गई तो वह अखबार की नौकरी छोड़कर चली गई। मानवी तब कुछ दिन पहले ही आई थी फीचर संपादक के रूप में। कभी-कभी साथ बैठकर चाय पीतीं, खबरों में माथा-पच्ची करतीं। दोनों साथ-साथ ही घर तक जातीं। पहले तो फातिमा का घर मानवी के किराये के फ्लैट के बिलकुल नजदीक पड़ता था, पर कुछ महीनों पहले मानवी ने वह मकान छोड़ दिया था और दूसरे मुहल्ले मे आ गई थी। दो कमरों का किराये का यह मकान उसके और अम्मा-बाबूजी के लिए अधिक सुरक्षित था। ऑफिस में देर होने पर भी आने-जाने के लिए ऑटो या रिक्शा आराम से मिल जाता था।

"ठक्-ठक्..." पुनः दरवाजे पर थाप।

"खोल रही हूं।" मानवी ने झट दरवाजे की कुंडी खोल दी। फातिमा जासूसों की तरह कमरे में चारों तरफ देखते हुए सामने की कुरसी पर धम्म से बैठ गई, जिस पर अभी कुछ देर पहले ही हरींद्र बैठा था।

हरींद्र की याद आते ही एकाएक मानवी के मस्तिष्क में कुछ देर पहले का दृश्य उपस्थित हो गया। मन में एक विक्षोभ-सा पैदा हुआ था।

"कमरा बंद करके क्या लिख रही थी, मानवी? कोई फीचर या फिर सपना?"

"कुछ नहीं।"

"फिर? कमरा बंद, आंखें सोई-सी, चेहरा थका-सा!"

"तू तो शायरा हो गई, भाई।" मानवी ने सूखी हँसी से अपने होंठों को गीला करना चाहा।

"हिंदी की टीचर हो गई तो सोचा कि क्यों न पहले वाली दुनिया से सन्यास लेकर इसमें एडमिशन करा लूं। फलां ने फलां को चाकू मारा...प्रेमी के साथ प्रेमिका फुर्र...शहर की बजबजाती-गलियां...या महापौर...महानेता का फलां-फलां घपला...या..."

"बस कर। पूरा अखबार नहीं सुनना मुझे। दूसरी नौकरी मिल गई तो आज अखबार की बुराई कर रही हो?"

"सच, मानवी, बड़ी सुकून की नौकरी है मेरी। दस से चार ड्यूटी, बच्चो की दुनिया, फिर अपना घर-परिवार। तू भी अप्लाई कर ही दे।" फातिमा के चेहरे पर संतुष्टि का भाव पसर गया था।

मानवी ने भी उसके संतोष को निहारा था।

"ऐसा मेरा भाग्य कहां फातिमा? एम.जे. भी तो पूरा नहीं कर पाई। अम्मा-बाबूजी की परिस्थितियां..." वह चुप हो गई।

"पर बी.जे. से भी तो आई.ए.एस., पी.सी.एस..."

फातिमा के सुझाव पर हँस पड़ी मानवी।

"कहने को तो सारा जहां हमारा है, पर किराया देने के लिए भी पैसे जुगाड़ने होते हैं। खाना खरीदना होता है और अस्तित्व प्रमाणित करने के लिए हम सभी को धक्के खाने पड़ते हैं और धक्के देकर आगे निकलना पड़ता है। इतना ही आसान होता मध्यम वर्गीय नारियों का उत्थान-विकास तो इतनी जद्दो-जहद क्यों होती, फातिमा?"

"आज ये निराशावादी बातें क्यों? तुझसे तो मैं ऐसी अपेक्षा नहीं करती। तू तो एक बोल्ड लड़की है!"

"पर बोल्डनेस किस काम की? वह भी लड़कियों की? पग-पग पर सहारे की अपेक्षा।" मानवी का अवसाद बातों में परिलक्षित हो उठा।

"कब मुक्त हो पाएगी नारी पितृसत्ता के दमन से? इतने मुक्ति-आंदोलन.. मुझे तो सब व्यर्थ लगते हैं। सब आयातित हैं। शब्द पश्चिम से लपक लिए जाते है और यहां पर उछाले और खेले जाते हैं, बस और कुछ नहीं। दरअसल नारी को मुक्त होने की आवश्यकता ही नहीं है। पुरुष-मुक्ति-आंदोलन चलना चाहिए। पुरुष अहं से मुक्त हो। पुरुष अपने विकारों से मुक्त क्या होगा, हां, उन पर नियत्रण रख सके। स्त्री को मात्र देह न समझे; बस, नारी मुक्त हो लेगी अपनी समस्याओं से।" मानवी ने अपना विचार रखा तो फातिमा हँस पड़ी।

"आज जब पूरे देश-विदेश में नारी-मुक्ति-आंदोलन का परचम लहरा रहा

ताकि तो बहुत स होते हैं। अब किस-किस पर माथापच्ची करें हम? चल चाय मंगा। बाकी सब अपने समय से ठीक हो जाएगा।" फातिमा ने बातों का रुख मोड़ते हुए कहा।

"इन्हीं 'ताकि' में तो उलझी है पूरी दुनिया। शिक्षित हो, ताकि...रिश्वत लेते है, ताकि...भ्रष्टाचार उजागर करते हैं, ताकि...न्यूज बनती हैं...ताकि तू नौकरी छोडती है, ताकि...मैं जूझ रही हूं, ताकि...स्त्री बेटे जनती है, ताकि...यानी हर ओर ताकि..."

मानवी भी हँस पड़ी।

"तूने तो 'ताकि' पर ही फीचर तैयार कर डाला! और सुना, क्या चल रहा है?"

"सुन रहे हैं कि कल कुछ मुस्लिम संगठन अपना विरोध प्रकट करने जा रहे हैं स्कूलों में 'वंदेमातरम्' पर?" मानवी ने अपने मन में खुदबुदाते सवाल को फातिमा के सामने रखा।

"ये पूर्वसूचना तुझे कैसे मिली? वैसे, है तो सिटी टेबल की न्यूज।"

"हां, बस ऐसे ही मिल गई। सोच रही हूं—मि. मिश्रा को बता दूं, ताकि सावधान रहें।" मानवी ने अपने अंदर के भावों को छिपाते हुए कहा। कहीं न कहीं अतर में हरींद्र का भय उसके व्यक्तित्व को अब तक जकड़े था।

"छोड़ यार, इस तरह के न्यूज देकर ही तो हम इस तरह के विवादों को और गहरा देते हैं। दरअसल केवल मीडिया दोषी है।" फातिमा ने मानो अपना निर्णय सुना दिया।

मानवी कटकर रह गई।

"तो क्या तेरा आशय है कि हमें इस तरह की रिपोर्टिंग नहीं करनी चाहिए? फिर जनमानस तक असली बात पहुंचेगी कैसे?"

"जैसे एक लाइन के बगल में उससे बड़ी लाइन खींचकर उसे बड़ा साबित कर देते हैं, उसी तरह।"

"धन्यवाद, फातिमा! एक प्रेरणा...एक रास्ता सुझा दिया तूने। बहुत देर से स्वय से जूझ रही थी मैं। अच्छा, चल जरा। तेरे साथ ही डी.एम. कार्यालय पर उतर जाऊंगी।"

दोनों उठ खड़ी हुई थीं। मानवी जल्दी से जल्दी आनंद कुमार को सारी घटना बता देना चाह रही थी, ताकि...

अठारह

हिंदुओं की सहिष्णुता (?) के कारण 'वंदेमातरम्' का विरोध उग्र रूप न ले सका। कुछ विद्यालयों पर मुस्लिम संगठनों ने धरना-प्रदर्शन करके वंदेमातरम् और सरस्वती-वंदना पर अपना आक्रोश जताया और इसे बंद करने की मांग की। अखबारों में विपक्षी नेताओं ने कुछ पक्ष में, कुछ तटस्थ, विचार जनता के सामने परोसे। कोई हँसा। किसी ने व्यंग्य किया। कुछेक ने गरम बहसें कीं और मामला शात हो गया। किसी ने गांधी की नीति को कोसा तो किसी ने धर्मनिरपेक्ष देश मे साप्रदायिकता की चिनगारी को हवा देने की बात कर अपने दोनों हाथ पाकेट मे डाल लिए। प्रजातंत्र के नाम पर 'सब कुछ उचित', 'सब कुछ अनुचित' के पलड़ों में झूलता शहर चुपचाप देखता आ रहा था कब से यह सियासी दावं-पेच। शिव का त्रिशूल न टेढ़ा हुआ कभी और न हिला। काशी उसी तरह स्थिर रही जैसे बाढ के बाद गंगा पुन: मंथर-मंथर बहने लगती है।

डी.एम. आनंद कुमार की कर्मठता और मानवी की सक्रियता से शहर दगे की आग में जलने से बच गया था। इसके पहले तो न जाने कितने दंगों ने कितनी ही परिवारों का सुख-चैन छीना था। कलाइयां और मांग सूनी की थीं। पर जब से उन्नीस सौ बानबे के दंगों में तेज तर्रार एस.एस.पी. धरमवीर सिंह ने अपने दल के साथ दंगाइयों के घरों में घुस-घुसकर उनका जाल तोड़ा और उन्हें आत्म-समर्पण करने पर विवश कर दिया था, तब से बनारस शांत था। हलके-फुलके बुलबुले उठते थे, पर जल्दी ही उन पर नियंत्रण कर लिया जाता था। यह बात अलग है कि ठीक उसी दंगे के बाद एस.एस.पी. साहब का स्थानांतरण हो गया। जबकि बनारस की जनता ऐसे अधिकारी को कुछ दिन और चाहती थी, जिसने आग की जड़ तक पहुंचने का साहसिक कार्य किया था।

उस दिन मानवी ने तुरंत जाकर डी.एम. आनंद कुमार से अपने ऑफिस मे हरींद्र के आने से लेकर जाने तक की घटना नि:संकोच कह सुनाई। एक विचित्र ढग के आक्रोश के गर्भ से एक संकल्प ने उसके अंदर जन्म ले लिया था और उसने इस तरह के षड्यंत्रों को बेपरदा करने तथा भरसक नीचा दिखाने का हठ ठान लिया था। अब वह हरींद्र जैसे लोगों से भयभीत होने की जगह उनका सामना

करने के लिए वह अपने को तैयार कर चुकी थी उस दिन डी एम आनद कुमार ने भी उसका मनोबल बहुत बढ़ाया। एक अंगरक्षक तबसे लगातार उसके साथ लगा रहता। यह भी आनंदजी की ही कृपा थी। वंदेमातरम् का विरोधवाला मुद्दा बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं बन पाया था और सभी अखबारों ने उसे ढंके-मुंदे तौर पर ही छापा था।

हरींद्र दूसरे दिन पुनः मानवी से मिलने आया था, पर दरवाजे के बाहर बैठे अगरक्षक को देखकर वापस चला गया था।

तारक ने ही आकर मानवी को बताया था—

''बिटिया, वो तुम्हारे रिश्तेदार, जो उस दिन चाय मंगवाए थे, आए थे।''

''क्यों, वापस क्यों चले गए...मेरा मतलब, मिले क्यों नहीं?'' वह अपने ही प्रश्न के घेरे में उलझ रही थी।

''कह रहे थे, कभी दूसरे दिन आऊंगा। आज कहीं जरूरी काम से जाना है।''

''अच्छा, अब आएं तो जरूर मिलाना।'' मानवी ने महसूस किया जैसे वह स्वयं नहीं बल्कि उसका आत्मविश्वास बोल रहा था। हरींद्र का सामना कर पाने की क्षमता बोल रही थी। तो क्या यह क्षमता डी.एम. साहब के सहारे से उत्पन्न हुई है? वह अकेली कुछ नहीं कर सकती थी? नहीं, कभी भी नारी या पुरुष दोनो में से किसी एक ने अकेले कुछ भी नहीं किया। एक-दूसरे के सहयोग की आवश्यकता पड़ती ही थी। विध्वंस का कार्य भले ही अकेले कर लिया जाए, पर सृजन अधूरा होता है सहयोग के बिना। इसीलिए एक का अर्द्धस्वरूप ही है नारी अथवा पुरुष। इसीलिए अर्द्धनारीश्वर की संकल्पना है हमारे शास्त्र में। तो क्या वह भी डी.एम. आनंद का अर्द्धस्वरूप है या फिर वे उसके...?

छिः, मन की तामसिक प्रवृत्तियां किस तरह मनुष्य को भ्रमित कर उद्वेलित करती रहती हैं? इसका सात्त्विक पक्ष भी तो होता होगा? विषय-भोग के अतिरिक्त क्या मात्र पूरक नहीं बना जा सकता?

रिक्शे में बैठी मानवी कबसे अपने ही विचारों में डूब उतरा रही थी।

आज वह हुकुलगंज की ओर महताब गुरु और उनके चेलों का इंटरव्यू लेने जा रही थी। कब से उस फीचर की योजना आधी-अधूरी पड़ी थी। कितना समय बीत गया तब-से? हो सकता है, उसे आज जाकर पुनः अपना परिचय नए सिरे से देना पड़े। इतने दिनों के अंतराल में किसी को याद रख पाना संभव है क्या? इधर एक के बाद एक ऐसी उलझनें आती गईं कि उसे इधर आने का समय ही नही

मिल पाया। पिछले दिनों अपनी बीमारी, फिर अम्मा की अस्वस्थता।

मानवी ने पीछे पलटकर देखा—उसके अंगरक्षक देवता पांडेय का रिक्शा ठीक पीछे-पीछे आ रहा था। उसे अपने साथ रिक्शे में तो वह बैठाने से रही। न जाने क्या सोचें देखने वाले? फिर देवता को भी यह पसंद नहीं कि वह एक महिला के साथ खुलेआम रिक्शे में घूमे। चाचा के उम्र का है। बाल-बच्चे है उसके। गाड़ी हो तो आगे बैठ ही जाए—इसीलिए मानवी हमेशा उसे अलग से एक रिक्शा कर देती है। शाम को घर पहुंचते ही उसकी छुट्टी कर देती।

मानवी को पीछे पलटकर देखते हुए पा देवता ने आश्वस्त करने वाली मुद्रा मे सिर को धीरे से झुककर मुसकरा दिया। मानवी के होंठ भी धीरे-से फैले और वह पुन: आगे की ओर देखने लगी।

यह देवता भी कैसा प्राणी है? नाम देवता, आकृति बिलकुल विपरीत। लबे, स्वस्थ शरीर पर कुछ आगे को निकली तोंद और चेहरे पर बड़ी-बड़ी रोबीली मूछे। सिर के बाल मानो मूछों से बगावत कर पीछे को भागते—सामने मैदान छोडकर। काली मेहंदी से रंगे बालों के थोड़ा भी बढ़ जाने पर नीचे की पतली सफेद पट्टी वन-विभाग द्वारा रोपे गए पौधों पर खींची गई सफेद धारियों-सी झलकती रहती है। पहले दिन जब देवता आकर उसके ऑफिस के कमरे के सामने स्टूल लगाकर बैठा तो उसे अंदर से एक विचित्र ढंग की बेचैनी-भरी खुदबुदाहट हुई मन में। एक अपमानबोध...अपनी सुरक्षा दूसरे के हाथों सौंपकर। मन में आया कह दे—मुझे तुम्हारी आवश्यकता नहीं है। तुम जा सकते हो। क्या सोचेंगे लोग...आखिर यह क्यों? कहीं कोई बात जरूर है, अन्यथा कितनी ही महिलाएं काम करती हैं—सबके लिए अंगरक्षक क्यों नहीं?

सबसे अलग होने का भय उसे अब असामान्य बनाने लगा था। डी.एम साहब से छिपे तौर पर बात की—

"सर, धन्यवाद।"

"किसलिए?...अच्छा वो सिक्योरिटी गार्ड पहुंच गया?"

"जी हां, पर...यदि...अन्य कामों के लिए यदि परेशानी हो रही हो तो इसे आप बुला लें। आखिर, और महिलाएं भी तो काम करती ही हैं।" न चाहते हुए मन की बात टेलीफोन पर निकल पड़ी।

उधर से एक हलकी हँसी आई—

"अरे भाई, ऐसी प्रॉब्लम जिस किसी के पास आएगी, प्रशासन उसे सुरक्षित करने का पूरा प्रयास करेगा।"

"जी..." वह जी से आगे कुछ नहीं कह सकी। यानी डी.एम. साहब अपनी

बस ड्यूटी कर रहे हैं और कुछ नहीं। वह 'विशेष' तो अपनी परिस्थितियों के कारण बनी है, किसी और कारण से नहीं...

अवसाद का कुहरा उसके संपूर्ण व्यक्तित्व को घेरने लगा था।

"ऐनी प्रॉब्लम?" उधर की आवाज से चैतन्य हुई वह।

"नो सर, थैंक्स! कब तक देवता को अपने साथ रख सकती हूं?"

"जब तक आवश्यकता समझो। वैसे छः महीने बाद इस पर पुनर्विचार करेंगे। और कुछ?"

"जी नहीं। शाम को कितने बजे तक उनकी ड्यूटी रहेगी?" वह सब कुछ जान लेना चाह रही थी।

"जब तक चाहो।"

"जी, कुछ पेमेंट वगैरह...?"

"ओह, नो मानवी! वह सरकारी कर्मचारी है।"

"ओह! सॉरी सर, ऐसे ही पूछ लिया, बस।" वह अपनी आतुरता पर झेंप उठी थी। क्या सोच रहे होंगे डी.एम. आनंद?...कि वह इतना भी नहीं जानती...कि शायद पैसा बहुत महत्त्वपूर्ण है उसके लिए...या कम होंगे तभी अपना बजट देखना चाह रही होगी...कि यह खर्च संभाल पाएगी या नहीं?...छिः उसने अपने-आपको कोसते हुए डी.एम. साहब को धन्यवाद देकर टेलीफोन रख दिया था।

तारक भीतर आया था और खोजी निगाहों से उसे देखता हुआ, संकेत में पूछ बैठा—

"यह क्यों?"

मानवी ने फुसफुसाहट-भरे स्वर में उसे बताया ताकि बाहर बैठा देवता सुन न सके और तारक के मुंह से ही ऑफिस वालों को भी ज्ञात हो जाए और वे आकर बारी-बारी से सीधे उसी से न पूछना शुरू करें—

"बाबा, टेलीफोन पर एक दिन मुझे जान से मार देने की धमकी मिली थी...एक न्यूज के संबंध में ही...इसीलिए..."

"अरे बिटिया, हमारे रहते तुम चिंता न करो। अभी इस उमिर में भी चार लौंडों पर भारी हूं। हां, इतनी सी बात पर...?"

"वो तो मैं भी मना कर रही थी, पर प्रशासन की अपनी भी तो कुछ जिम्मेदारियां होती हैं, बाबा? जबरदस्ती लगा ही दिया। मैं भी सोचती हूं कि कुछ दिनों बाद हटवा दूंगी। बड़ा झंझट-सा लगता है। एक आदमी निरंतर आपकी रखवाली करता रहे तो क्या ऐसे में मन स्थिर रह पाता है?" मानवी ने सफाई प्रस्तुत की थी

"हैलो मानवी, अब लग रहा है कि कोई भारी-भरकम पत्रकार यहां काम कर रहा है।" दिनेश गुप्ता ने कमरे में प्रवेश करते हुए मजाकिया स्वर में कहा।

दिनेश इस अखबार के उप-संपादक थे और पूरे ऑफिस में उनका काफी दबदबा था।

उनकी परोक्ष टिप्पणी पर मानवी कटकर रह गई थी। मन हुआ, अभी उठे और बाहर मिट्टी के लौंदा जैसे धरे हुए अंगरक्षक को वापस भेज दे। उसके सहज-शांत व्यक्तित्व पर जैसे कोई विशालकाय क्षेपक-सा जान पड़ रहा था देवता पांडेय। परंतु स्थिति की गंभीरता को भांपते हुए वही उत्तर उसने दिनेश से भी दोहरा दिया था जो अभी कुछ देर पहले तारक को सुनाया था।

कब तक वह सफाई प्रस्तुत करती रहे?

"जी, किधर मुड़ना है?" रिक्शावाला पूछ रहा था।

"वो आगे, चायवाली गुमटी के पास रोक देना, भइया। गली में तुम्हारा रिक्शा नहीं जा पाएगा।"

मानवी सोचों की कोठरी और रिक्शे दोनों से उतर गई थी। चायवाले से पचास का नोट तुड़वाया और अपने तथा देवता के रिक्शेवाले को किराया देते हुए कहा—

"आप, पांडेयजी, यहीं बैठकर चाय पीजिए। मैं कुछ देर में आती हूं। आपके सामने शायद वे इंटरव्यू देने में हिचकिचाएंगी। वैसे भी बहुत मुश्किल से तैयार हुई थी उस दिन, पर मैं ही नहीं पहुंच सकी। देखें आज क्या...?"

एकाएक अपने इस लंबे वक्तव्य पर वह स्वयं ही गिनगिना गई थी। क्यो वह सभी के सामने सफाई प्रस्तुत करने लगती है? कहीं उसके अंदर की हीन-ग्रंथि तो उससे ऐसा नहीं करवाती? देवता पांडेय को ये सारे तथ्य बताने की न तो आवश्यकता है और न ही विवशता। उसने मन ही मन स्वयं को कोसते हुए चायवाले को एक रुपये का सिक्का पकड़ाते हुए कहा—

"साहब को एक चाय पिला देना।" और वह पतली गली में मुड़ गई।

बहुत सावधानी से पग धरते हुए उसने बिना संकोच किए अपना आंचल उठाकर नाक और मुंह ढंक लिया। पिछली बार आई थी तो गली में अगल-बगल साथ चल रही नालियों की सड़ांध से उसकी आंतें उलटने लगी थीं और वह सकोच में नाक नहीं बंद कर सकी थी। क्या सोचेंगे गली के लोग? हर दस-बीस कदम पर पतली गली का मोड़ देखने के चक्कर में वह एकाएक भहराकर बाईं ओर की नाली में भच्च से गिर गई थी। संयोग से नाली के ठीक ऊपर बने एक मकान के ईंट के खंभे को उसने पकड़ लिया था। चूड़ीदार सलवार के

पायचे तक पैर गंदगी में लिथड़ गया था। मोच आई सो अलग। किसी तरह खंभे का सहारा लेकर पैर को नाली से बाहर खींचा तो उसकी आकृति देखकर मन उबकाई से भर उठा। सामने सुअर के दो छोटे-छोटे छौने नाली में लोट रहे थे और गली के दो बच्चे उनकी पूंछ पकड़कर उन्हें बाहर खींचते हुए खेलना चाह रहे थे। बगल में ही सरकारी नल पर दो लड़कियां एक पत्थर के टुकड़े पर अपना तवा और चूल्हे की आंच पर जली बटुली और कढ़ाई को झांवे से रगड़- रगड़कर माज रही थीं। एक बनी, ठनी अपने से अलग दीख रही मेम साहब को देख उनके हाथ-झांवा लिए-लिए थम गए थे और वे उसे निहारने लगीं थी। मानवी के पैर नाली में फिसलते ही दोनों फिक्क से हँस पड़ी थीं। असहाय-सी मानवी ने उन दोनो की ओर देखा था और बेचारगी से पूछा था—

"अपना पैर यहां धो लूं?"

"धो लो।" पास आ गई मानवी को एक ने ध्यान से देखते हुए कहा।

"अपना बरतन हटा लो, नहीं तो छींटा..." मानवी ने निवेदन किया।

"कोई बात नहीं। अभी तो मांजना ही है। तुम धो लो।"

"किसके घर जाना है?" दूसरी का कौतूहल जाग गया था।

"मुझे वो महताब गुरु हैं न, वो हिंजड़ोंवाली बस्ती...वहीं जाना है।" मानवी ने अपना मंतव्य स्पष्ट किया तो उन दोनों बालाओं के चेहरे पर दबी हँसी की लुनाई फैल गई।

उसे अस्वाभाविक नहीं लगा था। उसके मंतव्य पर जब उसकी ऑफिस के पढे-लिखे लोग व्यंग्य और उपेक्षा से हँस पड़े थे तो ये लडकियां तो शिक्षा से कोसों दूर हैं।

उसके ऑफिस के तरुण बनर्जी तो ठहाका लगाते हुए बोले थे—

"ओ! अब मैडम इस दुनिया से फेड-अप हो उनकी दुनिया में न्यूज तलाश रही हैं।"

"न्यूज नहीं मि. बनर्जी, फीचर। उनकी तो सारी न्यूज पुरानी होती है। हा फीचर नया हो सकता है।" मानवी का प्रतिरोध कड़ा था।

"यानी मानवीजी इनोवेटिव फीचर लिखना चाह रही हैं। है न, मानवीजी।" रोमेश चड्ढा ने बात संभाली।

"हो भी सकता है, कुछ इनोवेशन की गुंजाइश हो ही। जाने पर ही पता चलेगा...चलिए, आप लोगों को भी घुमा ले आऊं।" मानवी ने चुटकी ली।

"ना बाबा ना। हमें अपनी शामत नहीं बुलानी। आप महिला हैं। शायद तरस खा जाए सब आप पर नहीं तो हमने तो सुना है कि अगर कोई शिकार उन्हे

मौके से मिल जाए तो फौरन आपरेशन कर अपना चेला बना लेते हैं।'' तरुण बनर्जी की आंखें सरस हो उठीं।

रोमेश चड्ढा की आंखों में भी उसकी लाली उतर आई, और खोजी पत्रकारिता का भूत उनके सिर चढ़ बोलने लगा था—

''अरे यार, कहीं पढ़ा था कि आपरेशन भी इस बेरहमी से कि बस...भाग्य भरोसे कोई बच जाता होगा तो बच जाता होगा। खौलते तेल में पड़े चाकू से उनका कोई सीनियर हिंजड़ा पुरुष जननांग को एक झटके में काट डालता है। उस पर कोई देशी जड़ी-बूटी लगाकर उसके बाद उसकी कमर से एक रस्सी बांध, उसके दूसरे छोर पर कील जैसी कोई चीज लगाकर घाव में घुसा दी जाती है, ताकि जख्म सूखने पर उसे औरत होने की अनुभूति हो।''

''उफ्...हॉरिबुल!'' तरुण बनर्जी मानो पीड़ा से कराह उठे, परंतु आखे लोलुप-सी, मानवी पर टिक गईं।

मानवी सकते में आ गई थी। न उससे विरोध करते बन रहा था और न ही वह इस विषय पर आगे बात कर पा रही थी। क्या हो जाता है इन पुरुषों को? जहा थोड़ी लिफ्ट मिली नहीं कि तुरंत नाड़ा ढीला...छिः...आखिर महिला कितनी सावधानी बरते, कितना मुंह पर ताला लगाए फिरे कि इन्हें बोलने का अवसर न मिले? फिर क्या न बोलने से ये शांत रह जाते हैं? प्रतिरोध न होने पर दूसरे ढग की अस्वाभाविक हरकतें करने लगेंगे...पर आनंद भी तो पुरुष ही हैं?

उसने अपने पूर्वाग्रह को गेंद की तरह दूर उछाल दिया।

''बिना जाने-सुने किसी के बारे में अफवाह नहीं उड़ानी चाहिए। इसीलिए जा रही हूं उनके बीच, ताकि बहुत से अनछुए तथ्य हाथ लग सकें।'' मानवी ने बात की सरसता को गंभीरता की ओर मोड़ा।

''आप उनके हाथ मत लग जाइएगा, हां! तथ्य हाथ लगें या न लगे।'' रोमेश ने मजाक किया।

वह बिना बोले विरोध करती-सी उठ खड़ी हुई थी..

उन्हीं दोनों लड़कियों से थोड़ा-सा कपड़ा धोने वाला पाउडर ले मानवी ने अपने पैर और सलवार की मोहरी को मल-मलकर धोया था। कपड़े और हाथ से धुले मछलीवाले बरतन की-सी दुर्गंध से मन अभी भी घिन से भरा था, पर इससे बेहतर स्थिति तो घर जाकर ही हो सकती थी...

इसीलिए आज वह हर मोड़ पर अपनी गति धीमी कर ले रही थी। कही फिर से किसी नाली में...या फिर किसी शूकर-छौना के बदन से साड़ी रगड न खा जाए। रोमेश चड्ढा की उस दिन की बात भी प्रश्न बन साक्षात्कार में शामिल

होने के लिए कुलबुला उठी।

वैसे वह परोक्ष रूप से मन्ना और हरींद्र के उभाड़े हुए मुद्दे पर ऐसा पलटवार करना चाह रही थी कि वे तिलमिला उठें। आखिर कब तक वह भयभीत हिरनी की तरह लुकती-छिपती फिरे? एक बार आंखें फाड़कर सामने खड़ी हो जाए तो शायद उनके हौसले पस्त हो सकें। वैसे वंदेमातरम् का मामला उतना तूल नही पकड़ पाया जितना होना चाहिए था। पर फूस में दबी चिनगारी की तरह कभी भी हवा के हलके झोंके से लपटों में बदल सकता था।

एकाएक बगल की दीवार से कोई चीज तेजी से आकर उसके कंधे पर विराजमान हो गई। वह चौंकी और चौंकने के साथ ही एक घिघियाहट जैसी आवाज उसके कंठ से निकलकर पूरी गली में फैल गई थी। एक छोटा बंदर उसके कंधे पर मजे से बैठा सिर खुजा रहा था। गृहस्वामी अपना डमरू छोड़कर उसकी ओर लपका था—

"हे, हे, स्साले तेरी..." उसकी पूर्वजा के साथ अपने मधुर संबंध को बखानते हुए उसने मानवी के कंधे से अपने पूर्वज को धीरे से उतार लिया था।

"जाओ मेम साहब, बड़ा ढीठ हो गया है। असल में पहचाना नहीं न? गली के सब लोगों को पहचानता है।" बंदर को गोद में लिए-लिए वह समझाने लगा था।

मानवी के गले से कोई आवाज नहीं निकल पा रही थी। डर के कारण अभी तक चेहरा सफेद पड़ा था।

"कुछ देर बैठ जाओ यहीं, मेम साहब! डर गई हो। मन ठीक हो जाए तो जाना।" बंदर के स्वामी ने घर के सामने ईटों के दो कच्चे खंभे पर रखी पत्थर की पटिया को अपने फटे गमछे से झाड़ते हुए कहा। इतनी देर में वह बंदर को उसकी संगिनी के साथ रस्सी में बांध आया था।

"नहीं, कोई बात नहीं।" मानवी ने अपनी झेंप मिटाते हुए कहा। उसने अपने अंदर उबाल खा रहे क्रोध को पी लिया था। क्यों बरबस क्रोध दिखाए? किसी की क्या गलती?

"कहां जाओगी, बच्ची?" सामने बैठी अधेड़-सी महिला ने अपने सामने बैठी लड़की के सिर से एक जूआं निकालकर अपने दोनों नाखूनों के बीच चट् की आवाज के साथ दबाया था। मानवी के मुंह में गिनगिनाहट से थूक भर आया था। उसने बगल की नाली में थूकते हुए महताब गुरु का नाम बताया और आगे बढ़ गई।

पीछे से दो आंखें उसे आश्चर्य से देखती रहीं

महताब गुरु की कोठरी के सामने पड़ी टूटी, निखहरी चौकी पर बैठे-बैठे उसे पंद्रह मिनट बीत चुके थे, पर महताब गुरु पिछवाड़े मुर्गियों को दाना चुगाने मे व्यस्त थे। गली का ही एक लड़का उसके आने की सूचना महताब गुरु को दौडकर दे गया था। महताब गुरु ने उसे मुड़कर देखा और चौकी पर बैठने का इशारा कर कटोरे में रखी आटे की गोलियां मुर्गे-मुर्गियों की ओर फेंकने लगे थे।

मटमैली साड़ी में उनका सांवला बूढ़ा शरीर अभी भी हृष्ट-पुष्ट था। चेहरे पर उद्वेलन का भाव मानवी अपनी उपस्थिति मात्र से ही पढ़ चुकी थी। शायद महताब गुरु अपनी निजी जिंदगी में किसी को झांकने का मौका नहीं देना चाह रहे थे। या फिर उसके लिए मन ही मन स्वयं को तैयार कर रहे थे।

उसने पर्स में रखे टेपरिकार्डर में कैसेट लगाया था और पूरी तरह तैयार होकर महताब गुरुजी की प्रतीक्षा करने लगी थी। पहले सड़क या गली-मोहल्लो मे इनके समूह का हठ और हरकतें देखकर वह सहम जाती। एक वितृष्णा और भय का मिला-जुला असर मन को अंदर से जकड़ लेता। न पुरुष, न स्त्री, या फिर शायद पुरुष और स्त्री—दोनों ही। यानी अर्द्धनारीश्वर...नहीं...पूरी देह का विभाजन ऐसा नहीं इनका कि यह संज्ञा दी जा सके। कहीं दाढ़ी-मूंछ पूरे चेहरे पर तो कहीं उरोजों का उभार संपूर्ण स्त्री की तरह। स्त्री और पुरुष यानी इस सृष्टि के आधार। माया-मोह के जनक। इन्हीं रूपों में तो आत्मा अज्ञान ओढ़ती है, माया मे लिप्त होती है और जब ज्ञान प्राप्त होता है तो आत्मा अपने परम स्वरूप मे आ जाती है। मिट जाता है स्त्री-पुरुष का भ्रम। आत्मा आत्मा होती है, विशुद्ध, अमर...अजर...

तो क्या ये भी स्त्री-पुरुष के द्वैत से परे परब्रह्म के साधक नहीं हैं? कहा है इनके अंदर पद, पुत्र-प्राप्ति मोह? स्थितप्रज्ञ की तरह माया से परे, आत्म-तत्त्व के ज्ञान के साथ जीवन-चक्र पूरा करते हुए। जीवन-मुक्त, कर्मयोगी, परम तत्त्व-पथ के साधक। तमाम तरह के पंथों और संप्रदायों से अलग। स्त्री-पुरुष के स्वीकार्य-अस्वीकार्य के सिद्धांतों से बिलकुल पृथक्, मात्र देही-पंथ, जो काल के साथ स्वयं छूट जाएगा और विशुद्ध आत्मा का साक्षात्कार होगा उस परमतत्त्व से। यदि समाज इनसे संपृक्त नहीं तो ये भी जीविका को छोड़ उससे कहां रागद्वेष का नाता रखते हैं?

उफ्...वह कहां से कहां सोचने लगी? मनुष्य अपने तर्क से चाहे तो आकाश-कुसुम को प्रमाणित कर ले और कभी चाहे तो अपने अस्तित्व को भी नकार दे।

मानवी ने हौले से मुसकराकर पुनः महताब गुरु की ओर देखा। वे अब

कटोरा लिए वरुणा की ओर जा रहे थे। मानवी ने खंखारकर गला साफ करने के बहाने उनका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कराया। शायद महताब गुरु भूल गए हो उसकी उपस्थिति। वह बहुत संयम से काम लेना चाह रही थी। कई तरह के किस्से वह इन लोगों के बारे में सुन चुकी है। हर बार रहस्य का परदा और गहराता गया था, इसीलिए नरमी के साथ वह इन लोगों के जीवन में झांकना चाहती थी।

महताब गुरु ने पलटकर उसे आश्वस्त किया–

"जरा, मुर्गो को कटोरे में पानी रख दूं, बिटिया।"

"ठीक है, ठीक है।" मानवी ने झट उत्तर दिया और वह चारों तरफ निगाह दौड़ाकर देखने लगी थी। नदी दुबली हो चुकी थी, इसलिए उसके अगल-बगल की जमीन झुर्रियों और दरारों से खुरदुरी दिखाई पड़ रही थी। उस पार एक बड़ा-सा पीपल का पेड़ था जिसके चारों तरफ बने चबूतरे पर कुछ बच्चे और जवान हाथों में छड़ी और डंडे लिए मजे से बातें कर रहे थे। भैंसों का झुंड वरुणा मे उतरकर नहा रहा था। शायद उन्हें नदी के कछार में चराने और नहलाने के लिए ये बच्चे इधर हांक लाए थे।

मानवी को इस तरह का दृश्य हमेशा ही अच्छा लगता था। उसने अपने गांव में भी देखा– गरमी की दोपहर हो या जाड़े की ठिठुरन, सहतो कक्का अपने दोनो लड़कों के साथ गाय और भैंसों को चराने निकल जाते। कभी-कभी बदमिया भउजी भी अपनी बकरियों का झुंड उन्हीं के साथ हांक ले जाती। एक बार खेत की मेड़ पर बैठकर वह सहतो कक्का से सुर्ती मांगकर खाने लगी थी, इतने मे ही बकरियां पड़ोस के मटर के खेत में पड़ गई थीं। फिर तो ऐसा तूफान मचा था कि पूरे गांव के लोगों के जुट जाने के बाद भी देर तक झगड़ा होता रहा था खेत मालिक और बदमियां भउजी से। सबसे अच्छे और साथ ही रहस्यमय लगते उसे शामू गड़ेरिया। दिन-भर बीस-पचीस भेड़ों का झुंड लिए एक सीवान से दूसरे सीवान तक टहलते रहते। बिलकुल अकेले...। रात में किसी के खेतों में भेड़ बैठानी होती तो रात भी उनकी उसी तरह कट जाती।

गरमी की दोपहर में जब सभी लोग कमरे में खिड़कियां-दरवाजे बंद कर, कृत्रिम अंधेरे में आराम कर रहे होते तब सुबह के कालेज से दोपहर में लौटती हुई मानवी किसी गेहूं या अरहर-कटे खेत की मेड़ पर शामू को अपनी लाठी से ठुड्डी पर टेक लगाए और मोटा, काला भेड़ियहवा कंबल सिर से घूंघट की तरह ओढ़े खड़ा देखती। तब मन कौतूहल से भर उठता। क्या शामू को गरमी नहीं लगती? भेड़ो से इतना क्या लाभ है जो यह योगी की तरह मौसम से बेपरवाह

तपस्या में लीन है? शायद मनुष्य से बात किए शामू को कई-कई दिन बीत जाते होगे। किसी से कोई शिकायत नहीं, शिकवा नहीं! अव्यवस्था के प्रति आक्रोश नही। भेड़ें ही उसकी अभीष्ट और ईप्सित-सी। कभी समय निकालकर वह भेड चराने वाले शामू जैसे लोगों के बारे में भी जरूर लिखेगी। आज जब दुनिया अंतरिक्ष और अन्य ग्रहों में पहुंच रही है, शामू जैसे लोग किस ग्रह के वासी हैं—इतने असपृक्त, इतने निःस्पृह? न किसी से संवाद, न किसी से विवाद।

"मम्मी देखो, यही हैं वो आंटी।" सोना नाजबीबी को उंगली पकड़कर खीचते हुए मानवी के पास ला रही थी।

मानवी ने महताब गुरु के यहां बैठने के बाद ही सोना को वहां से भागकर एक घर की ओर दौड़ते हुए देखा था। हलके बैंगनी रंग के फूलोंवाले पीले फ्राक मे वह बच्ची कहीं से भी उनके समुदाय की नहीं लग रही थी। कुछ साफ-सुथरा रहन-सहन देखकर मानवी को आश्चर्य भी हुआ था। गली में किसी घर की लडकी होगी, सोचकर मानवी निश्चिंत हो गई थी। बच्चों का आना-जाना यहा लगा रहता होगा, यह तो उसे यहां तक पहुंचा जाने वाले लड़के को ही देखकर महसूस हो गया था।

"हैल्लो...जी...आइए..." मानवी के शब्द बिछलने लगे थे। संबोधन के लिए उसे उचित शब्द नहीं मिल रहे थे। उसने अपने पास ही चौकी पर हाथ से थपकते हुए बैठने का इशारा किया।

नाजबीबी उसे ध्यान से देखते हुए आकर जमीन पर बैठने लगी।

"नहीं, नहीं, यहां बैठिए।" मानवी ने आत्मीयता प्रदर्शित की।

नाजबीबी सकुचाते हुए आकर बगल में बैठ गई।

"आप हम लोगों की बस्ती में कैसे?" उसने हाथ जोड़ते हुए पूछा।

"क्यों, हम आप लोगों से मिलने नहीं आ सकते?"

"अरे, हमारे धन्यभाग, बहिनजी।" नाजबीबी ने दोनों हाथों से ताली बजाते हुए सिर के पास ले जाकर चटकाया।

"हम अखबार से आए हैं। कुछ जानना चाहती हैं, आपके बारे में...आपके कुछ विचार भी।"

"क्या मतलब?" नाजबीबी की भौंहें कुछ सिकुड़ीं। उसने अपना साडी का आंचल सामने से उठाकर दूसरे कंधे पर टांग लिया। उसके लाल ब्लाउज के भीतर पहने पैडेड ब्रा के अंदर स्त्रियोचित उभार थरथरा उठे। मानवी ने झट अपनी निगाहें वहां से हटा लीं और उसे समझाने लगी—

"...देखिए, जैसे आप भी सुनती होंगी कि कुछ लोग स्वार्थ में देश को

बांटना चाह रहे हैं। जाति, धर्म के नाम पर दंगे करवा रहे हैं, भ्रष्टाचार फैला रहे हैं ..तो. .आखिर आप लोग भी इसी देश के हैं। आपको कैसा लगता है यह सब? आपको क्या करना चाहिए?"

"अपने देश के लिए तो देखिए, हम लोग मर मिटेंगे। जिस तरह फौज में एक सिपाही भर्ती होता है, पुलिस होता है...सरकार हमें भी हथियार दे दे। मैं तो लड़ूंगी। लड़ते-लड़ते हिंदुस्तान के पीछे अपना जान दे दूंगी। बस, मेरी यही तमन्ना है। मैं मेजर की लड़की हूं, मेजर की!"

"क्या?" मानवी के चौंकने की बारी थी।

"हां मैं...ए सोना...भाग...जा, जरा छैलू कक्का को देखकर आ...क्या कर रहे हैं?" अपनी बात अधूरी छोड़ नाजबीबी ने अपने कंधे से सटकर खड़ी सोना को वहां से हटाना चाहा।

"वो खाना बना रहे हैं।"

"नानी हो गई देस की यह टुलनी[1]। जा, किताब लेकर कोठरी में कुछ पढ़।"

"नहीं, मैं नहीं जाऊंगी।" सोना ने अपनी गरदन को ऊपर मोड़ते हुए नाजबीबी की मनुहार की।

उसकी स्पष्ट और परिष्कृत भाषा पर चकित हुई मानवी।

"पढ़ती हो क्या, बेटा?"

"जी।"

"किसमें?"

"फिफ्थ में।"

"नाम?"

"सोना रघुवंशी।"

"जा, जल्दी से जा। छैलू कक्का तुझे बुला रहे थे।" नाजबीबी ने मानवी के प्रश्नव्यूह को तोड़ते हुए जल्दी से सोना को भेज देने का उपक्रम किया—न जाने क्या और पूछ लें ये और न जाने क्या बक जाए सोना?

मम्मी के तेवर देखकर सोना उधर की ओर ही चली गई जिधर से आई थी।

नाजबीबी ने उसके कुछ पूछने से पहले ही बता दिया—

"बहुत हिये लग गई है। बच्चे तो भगवान का रूप होते हैं न, बहनजी। हां, तो..."

"...आप कुछ अपने बारे में बता रही थीं।" मानवी ने याद दिलाया।

---

1 थोड़ी बड़ी लड़की

"जी, हमारे पापा मिलिट्री के मेजर थे। हम हिंजड़ी पैदा हुई थीं। हमारे घर का सोसायटी बहुत अच्छा था। पर भगवान ने इस लायक नहीं रखा कि हम अपने मा-बाप के साथ रह सकते। मम्मी तो अभी..."

"हंम आपकी बात इस टेप रिकार्डर में रिकार्ड कर लें?" मानवी धीरे से अपने मूल उद्देश्य पर आ गई थी।

"अभी नहीं, बहनजी। वो गुरुजी आ रहे हैं हमारे। उन्हें आ जाने दीजिए।"

"क्यों, मना कर देंगे क्या वे?"

"नहीं। हम लोग उनके इजाजत के बिना कुछ नहीं करते। अब इस समाज मे आ ही गए हैं तो कुछ नियम-कानून तो मानना ही है।"

"अच्छा, कितनी संख्या होगी पूरे देश में आप लोगों की?"

"दस-बारह लाख तो होंगे ही हम लोग।"

"कैसे जानकारी हो पाती है आपको इसकी?"

"हम लोगों की एक बेसरा माता हैं यानी हिंजड़ों की देवी। उनका मंदिर अहमदाबाद में है। वही गुजरात में। तो वर्ष में एक बार वहां हम सब लोग जुटते है। भंडारा करते हैं, नाचते-गाते हैं। यानी एक साथ दो-चार दिन रहते हैं।"

"इतना बड़ा भंडारा? खर्च कहां से आता है?"

"हर जिले में हम लोगों के एक गुरु होते हैं। हम लोग जो रोज कमाई करते है, उसका एक बड़ा हिस्सा बेसरा माता के नाम पर गुरुजी के पास जमा करते जाते हैं। उसी में से सब मिलाकर हो जाता है।"

"पर यदि कोई गुरु न देना चाहे या कह दे कि कम कमाई हुई?"

"च्च, च्च...राम-राम...किसके लिए करेगा कोई बेईमानी, बहिनजी? हिजडे चोरी-बेईमानी नहीं करते। कभी आपने सुना कि फलां हिंजड़ा चोरी-बेईमानी मे जेल में बंद हुआ?"

नाज के प्रश्न पर मानवी को पश्चात्ताप हुआ—नहीं पूछना चाहिए था ऐसा सवाल।

"क्या आप सभी लोग बेसरा माता को ही मानते हैं?"

"हां, पर जो हिंदू हैं, अपना धर्म...और जो मुसलमान हैं, वो अपना र्म .अब हम लोगों के बिरादरीवाले किसके घर में, किस धरम में पैदा हो जाएगे, कौन जानता है?" नाजबीबी के चेहरे पर हँसी छलक उठी।

"नाज, ये क्या पूछने आई हैं?" महताब गुरु उधर से लाठी टेकते पास आ गए थे और अब लाठी को चौकी पर टिका अपने साड़ी में गीले हाथ पोंछ रहे थे।

"जी, हम आपसे कुछ बातचीत करने आए हैं।" मानवी ने बहुत विनम्रता से कहा। उसे हर क्षण यह आशंका सता रही थी कि कब किस बात पर ये नाराज हो जाएं।

"जी, पूछो। क्या पूछना है? लेकिन कहीं फंसाना मत।"

मानवी के साथ ही महताब गुरु भी हँस पड़े।

"नहीं, फंसाएंगे नहीं। बस, इस टेप में रिकार्ड करेंगे। बाद में अखबार में छापेंगे।"

"अरे बाप रे, तब तो रहने ही दो, बिटिया!" महताब गुरु ने अपने दोनों कान स्पर्श किए।

"देखिए मुझे ऐसा कुछ नहीं पूछना है कि आप फंसें। बस, जो लोग आपस मे लड़ते-झगड़ते हैं, दंगे कराते हैं और फूट डालते हैं, उनके लिए आपसे कुछ पूछना है।" मानवी ने स्पष्ट किया।

"चिस्सेरेवाल पतवाईदास।[1]"

नाजबीबी ने महताब गुरु के कान के पास फुसफुसाते हुए कहा। उसे मानवी से पता नहीं क्यों आत्मीयता महसूस हो रही थी।

"ठीक है, करो।" महताब गुरु ने अनिच्छा से कहा।

मानवी ने बात शुरू की—

"आपका नाम?"

"महताब गुरु।"

"शुरू से यही नाम था?"

"नहीं, माहेजबीन था। गुरु बनने के बाद बदल गया।"

"धर्म?"

"अब तो...मुसलमान थे हम।"

"अब क्या?"

"जो अल्ला रसूल ने बनाया।"

"किसी दूसरे धर्म के बारे में आपका विचार?"

"राम भी वही, रहीम भी वही। जाना भी एक बात है, आना भी एक। कोई जनेऊ पहनकर हिंदू बच्चा तो पैदा नहीं होता। न कोई मुसलमान बच्चा खतना करवाकर। ये तो हम लोगों की भावना है कि यह मेरा अल्ला है, यह मेरा गॉड है। सभी धर्मों के लोगों का खून थोड़ा-थोड़ा इकट्ठा करिए, उसे देखकर कोई डाक्टर या साइंस बता दे कि यह हिंदू का खून है, यह मुसलमान का, तो हम

---

1 इधर-उधर की बात करके टाल दो!

अपना नामै बदल दे।

"पर ये लोग एक हों, इसके लिए आप क्या कहेंगी?"

"घर को फूट, जगत को लूट। जब हम लोग घर ही में लड़ेंगे तो बाहर के आदमी तो हमारा सत्यानाश कर ही देंगे। चाहे हिंदू हो, मुसलमान हो, सिक्ख हो, ईसाई हो या हम लोगों की जाति.. हिंजड़े संघ का ही क्यों न हो! हम लोग भी हिंदुस्तान में रहते हैं, कोई हिंदुस्तान के बाहर तो नहीं। तब हम लोग के कहने का मतलब कि सब लोग मिलकर रहें तो एक मुट्ठी हो जाएगा। कोई हिला नही सकता। इसी चौकी का एक गोड़ा टूट जाएगा तो आप सीधा से बैठ सकेंगी? आप ही बताइए? हम लोगों का चारों खंभा मजबूत होना चाहिए।"

"धर्म के बारे में जो लड़ाई-झगड़ा होता रहता है, दंगे होते हैं, उसके बारे मे?"

"कभी बस में विस्फोट हुआ, कभी वहां गोली चली, चौदह आदमी मारे गए, बीस मारे गए। तो वो किसी परिवार के ही होते हैं न? उसे दिल में कितना तकलीफ होता होगा। कर्फ्यू लगा, बाहर से सेना बुलाई जाती है। इसी सेना को बार्डर पर लगाया जाए। वो वहां कंट्रोल करें तो हमरा हिंदुस्तान का जवान तो नही मरेगा। एक जवान मरता है तो कितनी कमी हो जाती है, कभी कोई सोचता है। ये लोग नहीं सोचते। उनको देख के तो दुनियै हँस रही है। तो ये समझ लीजिए कि ये तो हिंजड़ों से भी बदतर!"

"मान लीजिए आपको कोई आकर बहकाए कि आपकी संख्या इतनी है, आप भी अपना एक अलग राज्य बना लीजिए तो...?"

"हम लोगों को कोई कितना भी सोना दे, दौलत दे, हर चीज देने की कोशिश करे पर हम अपने भारतवर्ष से अलग होने का कभी सोच ही नहीं सकते। और अगर कोई बाहर का दुश्मन आकर हम लोगों को कह दे कि तुम लोग अलग संगत बनाओ, कि तुम लोग इतना लाख है, कि तुम लोग कुछ भी बना सकते हो, और हम लोग मदद करेंगे तो हम लोग इस बात को...हम लोग तो उसको मारै देंगे। अपना खुदै से उसको काट देंगे कि कभी वो हिंदुस्तान से अलग करने की सोचे नहीं।"

मानवी टेप रेकार्डर महताब गुरु के मुंह के पास लगाए अवाक्-सी सुन रही थी और सोच रही थी कि महताब गुरु या नाज के मस्तिष्क में इतनी सारी बाते कहां से भरी पड़ी हैं, जिनका इनके कार्य और जीवन-शैली से कोई संबध है ही नहीं। ईश्वर और खुदा के झगड़े में पड़े कितने लोग ऐसा सोच पाते है? देश की एकता की स्थिति आज चाहे जैसी हो, पर महताब या नाजबीबी की आखो

म जो सपना है, देश, धर्म, जाति से सबद्ध जलते सवालों के जैसे उत्तर हैं, उसका दूरगामी परिणाम राष्ट्र के पक्ष में ही जाता है।

"हो गया, बेटी?" महताब गुरु अपनी बात समाप्त कर सोचों में खोई मानवी की ओर देखकर पूछ रहे थे।

"आं, हां, नहीं, एक प्रश्न और...आखिर देश के साथ विश्वासघात करने वाले, विघटनकारी कार्यों में संलग्न लोग, वंदेमातरम् का विरोध करने वाले लोग किससे सबक लें?" मानवी ने एक उड़ता-सा प्रश्न किया, क्योंकि इस बार उसने स्वयं को पहले से किसी प्रश्न के लिए तैयार नहीं किया था।

महताब गुरु का उत्तर तपाक से टेपरिकार्डर में कैद हुआ--

"सबक लेना है तो हम हिंजड़ों से सबक लें। न हम लोग गद्दार हैं, ना हम लोग गद्दारी करेंगे। आपस में हम लोग प्रेम से रहते हैं और हम लोग किसी से नफरत क्यों करें? हम लोग इनसान थोड़े ही हैं कि आपस में नफरत करेंगे।"

"चलते-चलते बस एक प्रश्न और...ऐसा सुना जाता है कि आप लोग युवकों को बहला-फुसलाकर जबरन उनका आपरेशन करके हिंजड़ा बना देते है?"

रोमेश चड्ढा का प्रश्न मानवी के मस्तिष्क में कौंधा था और उसने पूछ लिया।

महताब गुरु के चेहरे पर तनाव का घनत्व गहरा गया।

नाज का भी चेहरा थोड़ा उत्तेजित हो गया।

"देखो बेटी, अफवाह उड़ाने को तो हम मना नहीं कर सकते। अगर ऐसा किसी के भी साथ हुआ हो, उसे हम अपनी कोठरी में बंद तो नहीं रखेंगे न? बाहर नाचने-गाने जाते ही हैं हमारी बिरादरी के लोग। क्यों नहीं जाकर थाना-पुलिस में रपट करके हमें धरवा देते? कभी कोई कांड पुलिस-थाना ने हमारे यहां छापा मारकर पकड़ा? यहां हमारी बस्ती में जल्दी कोई इनसान का पूत घुसता है? हमसे यह काम न होता तो आतीं तुम यहां? फिर किसी वे आते ही हम उसे तुरत आपरेशन कर देंगे पकड़कर? डाक्टरी खोले बैठे हैं इसी कोठरिया में क्या। गाडी-घोड़ा से चलते हैं हम क्या जो किसी जवान लड़की-लड़का को उठा लाएंगे धरकर? ले आएंगे तो चार लोग देखेंगे कि नहीं? ये देखो हमारा अंग, कोई काटा है कि अल्ला-रसूलै वैसे भेजा है?" कहते हुए महताब गुरु ने अपनी साडी का निचला घेरा कमर से ऊपर तक उठा दिया था।

मानवी इस अप्रत्याशित दृश्य पर अचकचा गई थी। ईश्वरीय विडंबना देखकर उसका मन विचलित हो गया था। कितना बौना है लंबी-चौड़ी डींग भरने

वाला विज्ञान ईश्वर के सामने? उसे अपने साथ ही रोमेश चड्ढा के ऊपर भी क्रोध आया। न उसने ऐसी बात की होती और न उसके मन में यह प्रश्न आया होता।

उसने बहुत ही प्यार से महताब गुरु के कंधे पर हाथ रखते हुए कहा--

"नहीं, नहीं, मेरा मतलब आप पर शक करना नहीं था। ऐसा कई अखबार वालों ने बिना जाने-सुने छाप दिया था इसीलिए...मैं वास्तविकता जानने के लिए पूछ रही थी। मुझे आप लोगों से पूरी सहानुभूति है।"

"अरे बहिनजी, टूटे कुएं की ही ईंट सब लोग उखाड़ते हैं। पक्का कुआ उखाड़ने की न तो किसी में हिम्मत ही होती है, न मन ही करता है।" नाजबीबी ने गुरुजी को शांत करते हुए चौकी पर बैठा दिया।

"विश्वास मानिए, आप लोगों के बारे में लोगों के मन में बहुत भ्रम और उपेक्षा है। आपसे कुछ ही देर बात करके मेरी आंखें खुल गई हैं। आपसे मैं फिर मिलने आऊंगी। नाराज नहीं होंगी आप लोग न?" मानवी ने हँसकर उनका मलाल निकालना चाहा।

"हमारे धन्नभाग, बहिनजी। पर यहां से जाने के बाद आप फिर इस बस्ती मे क्यों आना चाहेंगी?" नाजबीबी का स्वर थोड़ा दुखी था।

"देखिएगा! अखबार में इसे छापने के बाद मैं आऊंगी आपसे मिलने। पढकर सुनाऊंगी भी।"

"मैं भी पढ़ लेती हूं थोड़ा-बहुत। मल्लू साव की दुकान पर..."

"क्या? आप पढ़ी भी हैं?"

"जी, केवल आठ तक।" नाजबीबी थोड़ा लजाकर बोली।

"बहुत अच्छा। तब तो और भी बहुत संभावना है आपसे मिलने में...अब चलूं?" मानवी जैसे किसी अपने संबंधी से आज्ञा मांग रही थी। एक अनजानी आत्मीयता की डोर दोनों पक्षों को बांध रही थी।

"चलिए, मल्लू साव की दुकान तक आपको एक भापकी[1] पिलाकर छोड दूंगी।"

नाजबीबी के आतिथ्य-भाव को अस्वीकार करने की हिम्मत मानवी न जुटा सकी और महताब गुरु को अभिवादन में हाथ जोड़कर वह नाजबीबी के साथ चल पड़ी। गली के अंधे मोड़ तक महताब गुरु की ममता-भरी आंखें भी उसे छोडने आई थीं।

---

1 चाय

उन्नीस

'हमसे सबक लें—शिखंडी गुरु' शीर्षक से प्रकाशित मानवी के फीचर ने लोगों मे काफी तहलका मचाया था। बुद्धिजीवी और हिंदुस्तान के प्रति लगाव रखने वाले लोगों के चेहरे पर इस कटाक्ष से एक सुखद मुसकान फैल गई थी; तो इसके विरोधी लोगों के चेहरे तिलमिलाहट से संवरा गए थे। वंदेमातरम् का विरोध करने और देश में फूट की नीति पर शासन करने की इच्छा रखने वालों के मुंह पर एक करारा तमाचा था यह फीचर। उनके कृत्यों के समानांतर एक शिखंडी की विचारधारा रख दी जाए, यह सह्य नहीं था।

प्रशंसा-उभरी बहुत-सी चिट्ठियां और टेलीफोन संदेश मानवी को मिले थे। एक नई ऊर्जा और निर्भीकता से उसका साक्षात्कार हुआ था। वह आत्मविश्वास से भर उठी थी।

डी.एम. आनंद कुमार से उसने स्वयं टेलीफोन करके पूछा था—

"जी, कैसा लगा मेरा फीचर?"

"बहुत अच्छा। हमें लगता है, मीडिया और प्रशासन एक टीम-भावना के साथ काम करें तो बहुत सारी समस्याएं उत्पन्न ही नहीं होंगी। लेकिन स्वार्थ-प्रेरित या राजनीति-प्रेरित मीडिया और प्रशासनिक अधिकारी तो पूरे देश को खाई की ओर धकेलकर ले जा रहे हैं...इसे रोकना होगा।"

"पर कहां, सर? आपका सहयोग मिला तो मैं इतना साहस भी कर पाई, या यूं कहिए कि व्यक्तिगत तनावों ने इस तरह का संकल्प जगाया। एक सामान्य जीवन जीने वाला व्यक्ति अपनी शांत और सामान्य ढंग से बीतने वाली जिंदगी मे क्यों फेंकना चाहेगा कंकड़? आम आदमी की यही मानसिकता अपराधियो के हौसले बढ़ा रही है।"

"देखो, कोई भी क्रांति किसी एक ने ही शुरू की होगी। बाद में लोग आते जाते हैं, शामिल होते जाते हैं। शुरू करने वाला महत्त्वपूर्ण होता है।"

"जी, धन्यवाद! आपने मेरा उत्साह बढ़ाया।"

"नहीं, मैं उत्साह नहीं बढ़ा रहा हूं, साहस की प्रशंसा कर रहा हूं।"

"जी, धन्यवाद! सर।" बातें चुक-सी रही थीं। आनंद कुमार के सामने न

जाने क्यों वह संक्षिप्त-सी हो उठती।

"ओ.के. रख रहा हूं। हां, क्या नाम है तुम्हारे भाई का?"

"जी, मधुकर...वो छोटा भाई न?"

"हां, हां...मैं एक दिन विजिट करने गया था। बुलवाकर उससे बातें भी कीं मैंने। जेलर को कह दिया है ध्यान रखने को। तुम उसकी सुरक्षा को लेकर चिंतित थीं न?" आनंद कुमार की बातों की मिठास उसके लहू में उतर, नस-नस में भिन गई थी। पलकों ने अतिथि स्वप्नों को अंकवार भेंट किया तो अधरों की कलिया होले से सिहरकर बंद हो गई थीं।

"इस बीच तुम उससे मिलीं कि नहीं?" आनंदजी के अगले प्रश्न से मानो वह चैतन्य हुई।

"जी नहीं। इस बीच काफी दिनों से...इन्हीं सब उलझनों में...दरअसल इस समय अम्मा की तबियत कुछ ज्यादा खराब है। ठीक हो जाएं तो उन्हें भी लेकर जाऊंगी। मेरे ही कारण उन्हें भी यह कष्ट मिला है...बेटे से बिछुड़ने का। कभी-कभी मन पश्चात्ताप से भर उठता है। माता-पिता सभी के बीच बहुत अकेली-सी रह जाती हूं। लगता है, मधुकर के इन महत्त्वपूर्ण वर्षों का प्रायश्चित्त मैं कुछ भी करके नहीं कर सकती।"

आंखों से सपने छिटककर दूर चले गए और एक भाप बादल बनकर छा गया नन्हे आकाश पर।

"डोंट थिंक सो, मानवी। तुम बहुत कुछ कर रही हो। तुम्हारी इसी बहादुरी और समर्पण-भाव का मैं प्रशंसक हूं। गो अहेड। ओ.के.।"

"जी, प्रणाम।"

रात में छत पर लेटी मानवी विचारों के सागर में गोते लगा रही थी। रात के लगभग बारह बज रहे होंगे, पर उसकी आंखों में नींद नहीं थी। छत के फर्श पर चटाई बिछाकर वह चित्त लेटी थी। उमस-भरी गरमी से बदन चिपचिपा रहा था। आकाश में आधे से अधिक चंद्रमा अपनी मद्धिम रोशनी में सभी को प्रकाशित करने का प्रयास कर रहा था। शायद एकादशी होगी या द्वादशी। कितने दूर हो गए है हम अपने ही दिन, महीनों, मौसमों से! अंग्रेजी स्कूलों के पढ़ने वाले बच्चों को तो हिंदी महीनों-तिथियों का कोई ज्ञान ही नहीं रहा। गांव के प्राइमरी स्कूलों और संस्कृत विद्यालयों या फिर सरस्वती शिशु मंदिर के बच्चे ही शायद जानते होंगे हिंदी महीने और शुक्ल पक्ष, कृष्ण पक्ष। अन्यथा सभी तो अंग्रेजी शिक्षा और पाश्चात्य रहन-सहन के पीछे पागल हो दौड़ रहे हैं। भइया का छोटा लड़का दीपू आया है। ऐसे ही उससे अंग्रेजी का एक ट्रांसलेशन पूछ लिया उसने।

"उसे तो जाना ही है की अंग्रेजी क्या होगी, दीपू?" बात करने का कोई न कोई सूत्र ढूंढ़ना होता है, अन्यथा मुंह बंद ही रह जाए।

दीपू ने तुरंत उत्तर दिया—'हमारे स्कूल में ट्रांसलेशन नहीं पढ़ाया जाता। मिस पोयम लर्न करने को देती है।'

वह आश्चर्य से उसका मुंह देखने लगी थी। दूसरी भाषा का ज्ञान क्या उसके व्याकरण के बिना संभव है? फिर अभिभावक क्यों इस अंधी दौड़ मे शामिल हैं? उसने भइया-भाभी की ओर देखा था। भइया अम्मा के पास सटकर बैठे कुछ बातें कर रहे थे। बाबूजी चुपचाप बिस्तर पर लेटे उनकी बातें सुन रहे थे। भाभी भइया के ही बगल में सोफे पर बैठी उन दोनों की बातों में हां-हूं कर रही थीं।

मानवी उपेक्षित-सी महसूस कर रही थी। अम्मा को भइया के आ जाने के बाद उनकी ओर से ऐसी उदासीनता नहीं प्रकट करनी चाहिए थी। आज शाम को ही जब भइया-भाभी अपने छोटे बेटे दीपू के साथ आए तो अम्मा के चेहरे पर एक उछाह की लहर दौड़ गई। पिछले दुर्व्यवहारों को हर्ष की लहरों ने तिनके-सा बहा दिया और भइया-भाभी द्वारा पांव छूते ही मां की ममता आशीर्वाद बन बरस पड़ी। मानवी भी ऑफिस से उनके पीछे-पीछे ही आ गई थी। भइया-भाभी को अचानक आया देख वह आश्चर्य में थी। कितने वर्षों से उनके संबंध घिसट से रहे थे—निर्जीव, अपंग। पर आज कहां से यह नया जीवन आ गया? सोचते हुए उसने झुककर भइया भाभी के पैर छुए थे और पर्स सामने आलमारी में रख बाबूजी की ओर मुड़ी थी—

"कैसी तबियत है, बाबूजी? क्यों लेटे हैं?" उसे ज्ञात था कि बाबूजी की तबियत ठीक है और वे वैसे ही लेटे हैं, परंतु वह वर्तमान परिस्थितियों में सहज बनने के प्रयास में यह अनावश्यक प्रश्न-कर बैठी थी।

"क्यों, बाबूजी, आपकी तबीयत खराब है क्या?" भइया ने उसका प्रश्न लपक लिया था और वह पुनः असहाय-सी खड़ी रह गई थी।

"मनु, भइया-भाभी आए हैं। जरा चाय बना ला, बेटी। और हां, जरा दीपू को बिस्कुट दे दे खाने को। कब का चला है?"

अम्मा के आदेश से वह अंदर ही अंदर तिलमिला गई थी। कितनी जल्दी विस्मृत कर देती है मां अपनी संतानों का दुर्व्यवहार? क्या कुछ नहीं कहा था भइया-भाभी ने अम्मा-बाबूजी को उस बार? अम्मा रो-रोकर आंखें लाल कर चुकी थीं और अपनी कोख को कोस रही थीं। उसी में अनजाने ही मानवी भी शामिल हो गई थी। बाबूजी अपनी नियति पर क्षुब्ध एकाकी बैठे थे गुमसुम। उससे

नहीं रहा गया था, बोल पड़ी थी—

"भइया, खूब निभा रहे हैं आप मां-बाप के प्रति अपना दायित्व। इसी दिन के लिए हम लोग पैदा हुए थे?"

"तुम चुप रहो। ज्यादा काबिल मत बनो। तुम्हारी खातिर ही सब हो रहा है। दुनिया-भर की लड़कियां पढ़ती हैं, पर सबके साथ ऐसा क्यों नहीं होता है?" भइया गरज पड़े थे।

"चार टके की नौकरी लग गई है तो बड़ा सबको गुलाम बनाकर रखने चली हो, बीबी! अरे, एक भाई को जेल करवा दिया, दूसरे के साथ निभ नही रही है, क्योंकि तुम्हारी करतूतों में हम लोग शामिल नहीं होने वाले। बूढ़ी-बूढा को फोर-फांसकर मन बिगाड़ रही हो?"

अशिक्षित भाभी के खुरदुरे शब्द हृदय पर आड़े-टेढ़े खरोंच यह कहीं भीतर जाकर धंस गए थे। क्रोध और अपमान के अतिरेक में शब्दों ने साथ छोड़ आंखो की शरण ली और बोझिल पलकें टप्-टप् बरसने लगीं।

"अब और अपमान नहीं सहा जाता। मनु की अम्मा, हम कल ही यहां गाव छोड़कर मनु के साथ चले जाएंगे।" बाबूजी की पीड़ा होठों से बाहर आई तो मानवी को मानो सहारा मिल गया था और वह बाबूजी से लिपटकर फफक पडी थी।

और दूसरे दिन सचमुच वह अम्मा-बाबूजी को अपने साथ लेकर चली आई थी—मन में एक संकल्प लिए। जब तक मधुकर जेल से छूटकर नहीं आ जाता और अपनी दुनिया सामान्य नहीं बना लेता, तब तक वह अम्मा-बाबूजी को अपने लड़की होने का एहसास भी नहीं होने देगी।

"मैडम, मैं जाऊं क्या?" देवता पांडेय दरवाजे की कुंडी खटकाकर पूछ रहा था। मानवी किचेन की ओर जाते-जाते ठिठक गई। वह तो भूल ही गई थी कि देवता पांडेय को उसने डी.एम. साहब के यहां एक सामान पहुंचाने के लिए रोक रखा था। कल ही आनंद कुमारजी का जन्मदिन था। बातों ही बातों में उस दिन अखबार में अपना राशिफल पढ़कर वे मजाक वाले मूड में बोल पड़े थे—

"जानती हैं, आज मेरे राशिफल में लिखा है...इष्ट मित्रों से सावधान!"

"क्या राशि है आपकी?" उसने पूछा था और उन्होंने बड़ी सहजता से बता दिया था कि बीस जून है तो शायद वृश्चिक राशि ही होनी चाहिए। और इसीलिए कल बीस जून को वह अचानक जन्मदिन की बधाई पहुंचाकर उन्हें चौंका देना चाहती थी।

"हां, एक मिनट, देवता! मैं आई।" कहती हुई वह अंदर वाले कमरे में

चली गई थी। 'वैदिक दिग्दर्शन' पुस्तक पर 'आनंद कुमारजी को शुभकामनाओं के साथ' लिखकर उसने सीधे देवता पांडेय को पकड़ा दिया था। पैक करने की न तो फुरसत ही थी और न ही आवश्यकता। कहीं पैकेट के रहस्य को बात का बतंगड़ न बना दे देवता पांडेय, इसलिए खुली किताब ठीक है। बहुत होगा, शुभकामना संदेश पढ़ लेगा। उसमें तो उसने ऐसा कुछ नहीं लिखा है। पहले वह कोई अच्छा-सा उपन्यास खरीदकर देना चाहती थी, पर पुस्तक भंडार, चौक, जाकर उसने अपना इरादा बदल दिया। उपन्यास की कहानी पढ़कर हो सकता है आनंदजी उसके व्यक्तित्व को हलका आंक लें, इसलिए उसने 'वैदिक दिग्दर्शन' खरीद ली थी।

"इसे कल सुबह ऑफिस आते समय साहब के बंगले पर देते आना।" मानवी ने देवता पांडेय को समझाया।

भइया-भाभी उसे ध्यान से देख रहे थे।

"जी, जरा कल ड्यूटी पर आने में देर होगी।" देवता पांडेय ने अपने इस कार्य का एहसान तुरंत भुना लेना चाहा।

"ठीक है, जाओ।" कहते हुए मानवी किचेन की ओर जाने के लिए मुड़ी थी।

"यह मानवी का अंगरक्षक है!" अम्मा भैया को बता रही थीं।

शायद भैया ने इशारे में ही पूछा होगा, क्योंकि उनका कोई प्रश्न सुनाई नहीं पड़ा था उसे।

"फिर कोई लफड़ा-वफड़ा..." उसके आंख से ओझल होते ही भइया का यह वाक्य उसे भीतर तक झिंझोड़ गया था। मन में आया, पलट ले और कहे कि जिसके तुम्हारे जैसे भाई पैदा हो जाएं उसे अंगरक्षक की ही सहायता लेनी पड़ती है! परंतु उसने स्वयं को रोक लिया और किचेन की ओर चली गई। अम्मा कुछ उन्हें समझा रही थीं। शायद वही सब कुछ जो उसने अम्मा को बताया था।

अम्मा-बाबूजी के घबड़ाने के भय से उसने हरींद्र-वाला प्रकरण उन्हें नहीं बताया था। केवल नारी उद्धारगृह के वार्डेन से कहा-सुनी और मन्नाबाबू विधायक के धमकी-भरे टेलीफोन की खबर सुनकर ही अम्मा भड़क उठी थीं—

"क्या जरूरत है तुझे इस तरह का इंटरव्यू लेने की? अरे, शांति से नौकरी कर और घर आ। समाजसुधार का ठेका तुम्हारे ही जिम्मे हैं क्या?"

बाबूजी ने भी शांत स्वर में ऐसा खतरा न उठाने को कहा था।

चाय ले आकर उसने चुपचाप बीचवाली मेज पर रख दी और बाबूजी की चारपाई के पैताने जाकर बैठ गई।

नमकीन-बिस्कुट का टुकड़ा दांत से काटते हुए भैया ने बताया—

"वो सुहौली वाला खेत है न, बाबूजी। अब वहां कोई फसल नहीं होने वाली।"

"क्यों?" बाबू का स्वर गंभीर था। शायद उन्हें भइया का मंतव्य ज्ञात हो गया था।

"वो सब गड़ेरानेवाले दिन ही में जानवर घुसा देते हैं। खड़ी फसल चरवा डालते हैं। जब कोई हमें सूचना देगा तब न पता चलेगा— तब तक सब साफ।"

"डी.एम. के पास शिकायत क्यों नहीं लिखित भेज दे रहे हैं। इस तरह खेतों की तैयार फसल बरबाद करना अपराध है। थाने से भी संपर्क कर सकते हैं।" न चाहते हुए भी मानवी ने अपना सुझाव झोंक दिया।

भइया नाराज हो उठे थे—

"तुम्हारी तरह हर व्यक्ति वहां लक्ष्मीबाई नहीं है न। सबसे दुश्मनी ही लेते फिरेंगे तो समाज में रहेंगे कैसे?"

"फिर रोज ही इन्हें उसी रास्ते शहर जाना पड़ता है— कचहरी, प्रैक्टिस करने। दीपू को भी साथ ले जाते हैं स्कूल छोड़ने। कोई लगे दुश्मनी साधने तो?" भाभी ने मानवी को उपेक्षा से घूरकर अम्मा से हामी भरवाई।

"नहीं, नहीं, कोई जरूरत नहीं है थाना-पुलिस की।" अम्मा ने भइया को वर्जना दी तो मानवी खिसियाकर चुप हो गई।

बाबूजी ने उसकी मनःस्थिति को ताड़ा और बात संभाली—

"लेकिन वे फसल चराकर अगर दुश्मनी साधने से नहीं डर रहे हैं तो तुम क्यों डरते हो? तुम तो लड़ाई करने जा नहीं रहे हो? बस कानूनी कार्रवाई। फिर सभी जानते हैं कि तुम वकील हो।"

"देखिए बाबूजी, गांव में रहकर सारी जिल्लत तो हम झेल रहे हैं। क्यो आप इन्हें भी कोर्ट-कचहरी के लफड़े में ढकेल रहे हैं। चैन से जो दो रोटी मिल रही है वह भी...धीरे-धीरे पूरा गांव खाली होता जा रहा है। श्रीराम का परिवार खेत-बारी बेचकर दिल्ली बस गया। नंदू मास्टर के पास जो लेई-पूंजी थी वह बेटो ने बेच ही दी है। बस उनके जीवन-भर के लिए मकान बचा है। उसके बाद उसे भी किसी नाऊ-कहार को बेचकर वो सब चले जाएंगे। अब गांव में ऊंची जाति के लोग रह कहां पाएंगे?" भाभी ने एक सांस में पूरे गांव की कथा उघट डाली।

"तो चाहते क्या हो तुम लोग?" बाबूजी की आवाज में क्षोभ के साथ एक अनजाना भय भी था।

"हम चाहते हैं कि हम लोगों की जितनी दूरवाली जमीन है, उसे निकाल

दिया जाए।'' भइया ने संक्षेप में अपना मंतव्य रखा।

''फिर बचेगा क्या हमारे पास? घर के पास जमीन है ही कितनी? यही कोई डेढ बीघा।'' बाबूजी हताश थे।

''अब चाहे जो हो, बाबूजी। मधुकर भी नहीं कि घर में साथ दे। गांव मे मजदूर मिलते नहीं। चिरौरी-विनती करके कटनी के लिए भले मिल जाएं, पर रोपनी और पानी बराने के लिए कोई नहीं मिलता। अब इस बार गेहूं की दवाई हमने किस-किस तरह से तीन-तिकड़म करके किया है, वो हम ही जानते हैं।''

मानवी ने महसूस किया कि अम्मा-बाबूजी के चेहरे पर एक अपराध-बोध तैरने लगा था— गांव छोड़कर उसके साथ रहने का।

''बच्चों की पढ़ाई का भी नुकसान होता है। एक तो छुट्टी लेनी पड़ती है सभी को, फिर इतनी मेहनत-खटनी के बाद पढ़ाई करने के लिए कैसे कहें?'' भइया वार पर वार किए जा रहे थे।

''अरे, उसी में तो सभी ने अपनी पढ़ाई की थी। मधुकर ने भी बी.ए. अच्छे नंबर से निकाल ही लिया था। मानवी और तुम भी तो वहीं से पढ़कर आज नौकरी कर रहे हो? और तुम्हारे बाबूजी क्या शहर में रहकर पढ़ाई किए थे?'' अम्मा का कमजोर-सा तर्क फूटा तो भाभी ने प्रतिवाद किया--

''वो जमाना और था, अम्मा कि प्राइमरी तक पढ़ लेने पर भी नौकरी मिल जाती थी। अब की पढ़ाई कितनी कठिन हो गई है! इतना छोटा है दीपू और अपने शरीर के वजन से ज्यादा का बैग ढोकर ले जाता है। 'क से कौआ' वाला जमाना अब नहीं रहा। बेचारा शहर से गांव लौटने के चक्कर में ट्यूशन भी नहीं पढ़ पाता नहीं तो फर्स्ट् तो जरूर आता।''

बाबूजी चुपचाप गाल पर हाथ धरे बैठे थे। अम्मा की आंखें उन पर टिकी थीं। मानवी कभी अम्मा को तो कभी बाबूजी को देख रही थी।

''या तो जमीनें निकाल दीजिए या फिर आप लोग गांव आकर रहिए। देखभाल करिए। हम लोग हर हफ्ते शहर से आते रहेंगे। अब हमारी भी कोई जिदगी है या नहीं? कल को मधुकर आएंगे तो अपना हिस्सा लेकर अलग हो जाएंगे। हमें क्या मिलेगा अपने बच्चों का भविष्य चौपट करके? वही दो-चार बीघा खेत?''

भइया ने दो-टूक फैसला सुनाया तो मानवी घबड़ाकर बोल पड़ी--

''भइया, आप अभी से इस तरह की बातें सोच रहे हैं?''

''तुम्हें बीच में बोलने की जरूरत नहीं है। जो कर रही हो, बस वही करो भइया ने मानवी पर खुला वार किया तो वह रह गई

बाबूजी चुप थे।

वह सोच रही थी—क्यों नहीं बाबूजी भइया को फटकार देते?

लेकिन अम्मा बोल पड़ीं—

"काहे तू हमेशा उसे काट खाने को दौड़ता है? वह तेरी दुश्मन है क्या? अरे तेरे मां-बाप के बारे में ही तो सोच रही है। तेरा घर-बार खेत-पात न बिकने पाए, उसी के बारे में तो बोल रही है?"

"रहने दो मुझे नसीहत देने को। वो अपना भला-बुरा सोचे, हम अपना। जब उसने हमें कोई दर्जा नहीं दिया तो हम किस अधिकार से...?"

"क्या अधिकार तुझे नहीं मिला? तेरे घर-बार में उसने हिस्सा बंटा लिया क्या?"

"अरे, हिस्सा क्या? यदि लोगों का अनुशासन उसे मानना होता तो आज यह दिन देखना पड़ता? छोटा भाई जेल में। तुम लोग यहां, हम वहां बैलों की तरह...गांव में दूसरी लड़कियां भी तो थीं? आराम से शादी-ब्याह करके अपने-अपने घर में खुश हैं। पर इन महारानी को तो लक्ष्मीबाई बनना है।"

"भइयाऽऽऽ...मैं अब और अपमान नहीं सह सकती। बेहतर होगा कि इतने दिनों बाद यहां आए हैं तो..." आगे उसे शब्द नहीं मिले तो वह फफककर रो पड़ी।

भइया हारे हुए प्रत्याशी की तरह निढाल होकर बैठ गए थे।

"तुम शहर में जाकर रहना चाहते हो तो रहो। मैं मना नहीं करूंगा। परिवार भी ले जाना चाहते हो, ले जाओ। हम कोई न कोई व्यवस्था करेंगे। मानवी को अकेले तो नहीं छोड़ सकते। तुम्हारी अम्मा उसके साथ रह लेंगी। मैं गांव चला जाऊंगा। अधिया-बंटाई पर खेत दे दूंगा...पुरखों की निशानी है। बाद-दादाओं ने कैसे पाई-पाई जोड़कर बनाया होगा, उसे एक क्षण में बेचकर कैसे खाली हो जाऊं?" बाबूजी ने निःश्वास छोड़ी।

मानवी को सदमा-सा लगा। अम्मा का भी चेहरा उतर गया। वृद्धावस्था मे ही जीवनसाथी की वास्तविक आवश्यकता होती है। एक आध्यात्मिक लगाव या जवानी में बच्चों के ऊपर ध्यान केंद्रित कर देने के कारण एक-दूसरे से किंचित् उपेक्षित दंपती बच्चों के बड़े होने और अपनी पृथक् दुनिया बसा लेने के बाद उपजी रिक्तता को भरने के लिए एक-दूसरे के बहुत करीब होते हैं—शायद उन उपेक्षित क्षणों के प्रायश्चित्त स्वरूप भी।

"आप अम्मा को भी ले जाइए, बाबूजी। आपको वहां खाने-वाने की दिक्कत होगी। मैं रह लूंगी।" कहते-कहते मानवी का गला पुनः भर आया था

ओर वह उठकर चटाई ले छत पर चली आई थी।

रात गहराने लगी थी। चांदनी खिलखिलाने लगी थी। अम्मा दबे पांव छत पर आईं तो मानवी को पता ही नहीं चला था। आकर अम्मा उसके सिरहाने बैठ गई थीं। मानवी कुहनी से आंखें ढंके चित्त लेटी थी। अम्मा ने धीरे से उसका हाथ उठाया और सिर सहलाते हुए भीगी आवाज में बोलीं—

"चल मनु, कुछ खा ले। तुम्हारे लिए पालकवाली दाल बनाई है।"

मानवी का मन भर आया—कितनी बंटी-बंटी-सी है अम्मा! उधर बाबूजी, भइया, इधर वह और जेल में मधुकर। सभी को समेटने में कितनी बिखर रही है अम्मा? कौन जान सका उसकी पीड़ा? किसने गिने उसके हृदय के फफोले? यही है नारी की वह परम पदवी जिसे पाने के बाद वह धरती हो जाती है? धरती यानी मिट्टी, धरती यानी अपनी ऊर्जा दूसरों में आरोपित कर खाली-खाली, थकी-थकी-सी .शून्यगर्भा धरती। जब तक धरती नहीं, तब तक एक वस्तु है नारी, जिसे हर व्यक्ति अपने-अपने तराजू में अपने ढंग से तौलता है। पुत्री है तो उसे पिता के पलड़े में ठीक होना चाहिए, बहन को भाई के, पत्नी को पति के और स्त्री के रूप में पुरुषवर्ग का अपना मानक है! यानी वस्तु से धरती में परिवर्तित होने का नाम है नारी।

वह चांदनी में अम्मा के सिर के आधे से अधिक सफेद बालों को ध्यान से देख रही थी। चेहरा झुका होने के कारण उस पर खिंची तनाव की रेखाएं और झुर्रियां साफ नहीं दिखाई पड़ रही थीं। पर धुंधली रोशनी में भी अम्मा की आंखों की तरल सीपियां मोती लिए चमक रही थीं।

"चल, मनु, खा ले। न जाने कौन-कौन-सा दुःख देखना बदा है अभी?"

मानवी को अपनी चुप्पी में छिपी क्रूरता का एहसास हुआ था और वह उठकर बैठ गई थी।

"सब लोगों ने खा लिया?" उसने शुष्क स्वर में पूछा।

"हां, बस मैं और तू बाकी हैं।"

"कहां बिस्तर लगा है भइया-भाभी का?"

"तेरे वाले बेड पर सोए हैं। बाबूजीवाले कमरे में। हम-तुम जमीन पर सो जाएंगे।"

"यहीं छत पर सो जाते हैं। ज्यादा गरमी नहीं लगेगी। मच्छर भी नहीं है।" मानवी ने अम्मा को सहज करना चाहा।

"तेरे बाबूजी को चिंता में नींद ही नहीं आएगी आज। मेरा वहां रहना जरूरी है तू भी चल रहेगा अम्मा न चिरौरी की

"क्यों, गांव जाने के लिए एकदम तय कर लिया उन्होंने?"

"हां। तू तो जानती ही है, कितने जिद्दी हैं!"

"तुम भी जाओगी, अम्मा?" वह अधीर हो उठी।

"जैसा तू कह।" अम्मा ने निर्णय उसी पर छोड़ दिया।

मानवी फिर हारने लगी। कैसे अम्मा-बाबूजी को इस उम्र में अलग रहने की सजा दे वह? वह भी अपनी खातिर।

"अम्मा, तुम भी चली जाओ बाबूजी के साथ। मैं रह लूंगी यहां किसी तरह। मेरी किस्मत की साथी तुम कहां-कहां बनोगी? फिर भइया-भाभी का रुख और भी खराब होगा।" मानवी ने कचोटते मन से कहा।

"क्या करूं? कुछ समझ में नहीं आता, बेटी? मेरे ही साथ ऐसा होना था? तूने भी तो जिद की...ठान ली कि..."

मानवी अम्मा का आशय समझ गई थी और अपने ही ऊपर व्यंग्य से हँसकर बोली—

"क्या जिद, अम्मा? कोई तैयार था क्या? अंगूठी पहनाकर जिसने उतार ली उस अपमान के बाद से क्या आज तक बराबर अपमानित और लांछित नही होती रही हूं? मेरा क्या दोष था? क्या लुट जाने देती अपनी इज्जत और फिर चुपचाप घर आ, लुटी इज्जत का मातम मना लेती मैं? मधुकर को मैंने हरींद्र की जान लेने के लिए तो उकसाया नहीं था? वह भी भइया की तरह तटस्थ रह सकता था या मेरे ही ऊपर लांछन जड़कर निकल सकता था। परिस्थितियों ने ही कुछ इस तरह घेर लिया है कि मैं छटपटाकर भी नहीं निकल पा रही हूं। फिर मधुकर का भी प्रश्न है..." मानवी चुप हो गई थी।

अम्मा भी अपनी पराजय महसूस कर रही थीं।

"कल अगर चलती तो मधुकर से मिल आते। बहुत दिन हो गया। फिर न जाने कब तक आ पाऊं?"

अम्मा की तड़प से चार गुना अधिक तड़प मानवी के हृदय को बेचैन कर गई। इसका मतलब, अम्मा गांव चली जाएंगी...वह अकेली रह जाएगी। इस पूरे घर में...घर क्या...बेजान दीवारों के बीच निष्प्राण-सी वह। घर तो लोगों से होता है। उसके पास कौन है? अम्मा बाबूजी की हैं। बाबूजी अपने पुरखों के हैं। भइया-भाभी...हुंः...कोई नहीं।

और वह अम्मा से सुबह मधुकर से मिलाने का वादा कर पुनः चटाई पर लेट गई थी।

अम्मा किंकर्त्तव्यविमूढ़-सी उसके सिरहाने बैठी रहीं।

दूसरे दिन सुबह मधुकर से मिलने का कार्यक्रम सभी का बन गया। भइया एक ऑटोरिक्शा ले आए थे और सभी लोग उसमें लद गए थे। पीछे मानवी, भाभी और दीपू को गोद में बैठाए अम्मा तथा आगे ड्राइवर के अलग-बगल बाबूजी और भइया। ऐसा बनारस में ही होता है कि छोटे वाले टेंपों में सवारियां ड्राइवर के अगल-बगल भी लद लेती हैं। ट्रैफिक वाले कभी-कभी टोक देते हैं तो दो-चार रुपये पकड़ाकर टेंपोवाले निकल लेते हैं, बाद में उस पैसे को भी सवारियो के किराये में थोड़ा बढ़ाकर वसूल कर लेते हैं। कोई दे देता है, कोई झगड़ पडता है। पर इस तरह के रगड़े-झगड़े एक सामान्य बात हैं बनारस के लिए। दिल्ली, बाबे या अन्य शहरों की तरह नहीं है कि मीटर ऑन किया और बिना बोले-बतियाए विक्रम की तरह बेताल सवारियां लादे ले जाकर गंतव्य पर पहुंचा दिया। यहां तो रिक्शेवाला भी रास्ते-भर सवारियों से देश-दुनिया, समाज या राजनीति की बातें करता चलता है। टेंपो ड्राइवर मुंह से पान के छींटे उड़ाता दस अंगुल की जगह में टेढ़े-मेढ़े बैठ स्टीयरिंग संभाले अगल-बगल की सवारियों से अपनी नोक-झोंक का शौर्य बखानता चलता है। जिसके पास यह खजाना नहीं होता वह किसी टाकीज में अमिताभ बच्चन की ढिशुंग-ढिशुंग या श्रीदेवी के लटके-झटके की जीवंत तसवीर शब्दों में उतारते-उतारते कभी-कभी भावावेश में स्टीयरिंग छोड दोनों हाथों से भी बताने का प्रयास करने लगता है, और फिर क्षण-भर बाद ही हवा में लहराते हाथ पुनः स्टीयरिंग पकड़ लेते हैं। शुरू-शुरू में इलाहाबाद से बनारस आने पर मानवी को यह सब अटपटा लगता था, पर धीरे-धीरे इन सब बातों की वह अभ्यस्त हो गई। कभी-कभी तो टेंपो के गति पकड़ने पर पता चलता था कि इस वाहन का स्वामी कानफोड़ू संगीत का कितना बड़ा प्रेमी है। गाने के बोल स्पष्ट हों या न हों, उसकी धुन पर गरदन थिरकाता वह स्टीयरिंग को इस तरह घुमाता है मानो किसी साज पर एकाएक 'रे' से 'नि' पर आना पड रहा हो। कभी-कभी मानवी भय से अपने दोनों जबड़े भींच लेती जब सामने से आ रहे ट्रक के बिलकुल सामने से वह टेंपो को तेजी से काटकर निकालता।

"ऐ! जरा ठीक से चलो, भइया!" ऐसे अवसरों पर अकसर उसके मुह से निकल जाता। ट्रक धरती का सीना दहलाता सन्न से बगल से गुजर जाता और वह एक बित्ते की दूरी से मौत को जाता देख चैन की सांस लेती। ड्राइवर उसकी घबड़ाहट से बेखबर उसी गति से चलता रहता।

एक बार फातिमा के साथ कचहरी की तरफ से जाते हुए इसी तरह की स्थिति पर उसने टिप्पणी की थी—

"बनारस के सभी ऑटो ड्राइवरों को सीमा पर तैनात कर देना चाहिए। इतने

दिलेर और मौत को हँसकर नमस्कार करने वाले...टेंपो रेजीमेंट या मृत्यु-मुख पश्या रेजीमेंट।''

फातिमा जोर से हँस पड़ी थी उसके नवीन शब्द विन्यास पर। हँसते-हँसते उसकी आंखों में आंसू आ गए थे—

''यही सब तो बनारस की असली पहचान है, मानवी। फक्कड़पन, अपने-आपमें मस्त, बड़े से बड़े को भी कुछ नहीं सेटते हुए और छोटे को भी मन मे आया तो आकाश तक उठाते हुए।''

''ठीक कह रही हो, फातिमा। कुछ न कुछ तो विशेषता है ही काशी की जो पुराणों के काल से आज तक उसे अक्षुण्ण रखे है।''

''मिनी भारत है। हर राज्य की भाषा, कला, लोग-बाग...फिर भी सब को समेटे...जो भारत-भ्रमण संपूर्ण रूप से न कर सके वह काशी आकर घूम ले।''

''पर केवल सकारात्मक पहलू ही नहीं है इसका, फातिमा। द्वंद्व-फंद मे भी इसका कोई जोड़ नहीं।'' मानवी भी खिलखिलाकर हँस पड़ी थी।

''ठीक कह रही हैं आप, बहनजी। कब किस गली में दंगा भड़क जाए, कब कौन किससे भिड़ जाए, कुछ ठीक नहीं है।...ओए भोले बाबा! कहां बीच मे आय रहे हो?'' कहते हुए टेंपोवाले ने झटके से टेंपो को बाएं मोड़ दिया था। मानवी लुढ़ककर फातिमा के कंधे पर गिर पड़ी थी। सामने देखा तो बीच सडक मे एक सांड़ निर्द्वंद्व चला आ रहा था।

''आधी ट्रैफिक तो बनारस के सांड ही कंट्रोल करते हैं, बहनजी। नही तो इतनी पतली सड़कों पर यहां अगर लोग दनदनाती स्पीड में चलने लगें तो रोज ही दस-बीस लोग अल्लाह को प्यारे हो जाएंगे। अल्लाह मियां के यहां आधी भीड तो भोलेनाथ की सवारी ही रोके हुए है नहीं तो वे भी घबड़ा जाएं।'' उसने सडक पर पच्च से सुर्ती की पीक उगल दी थी और ठहाका लगाकर हँस पड़ा था।

''दो महिलाओं को देखा नहीं कि इनका भी ज्ञान सिर चढ़ चिल्लाने लगा।'' फुसफुसाते हुए फातिमा ने मानवी को चिकोटी काटी थी...

''जी! आ गया सेंट्रल जेल।'' ड्राइवर सभी को ध्यान से देखते हुए टेंपो रोक बाहर खड़ा हो गया था।

मानवी की तंद्रा भंग हुई। कब से वह अपने ही भीतर दुर्गम वीथिकाओं मे उलझी पड़ी थी। वह उतर पड़ी। अम्मा और भाभी भी बाहर खड़ी हो गईं। अम्मा सेंट्रल जेल की बाहरी दीवार को देख रही थीं। उनकी आंखों मानो उसका स्नेह से स्पर्श करती कहती रही थीं— यहीं रहता है मेरे हृदय का एक टुकड़ा, उसे तुम प्यार से संभालकर रखना।

मधुकर आया था। थोड़ा दुबला हो गया था। चाल में सुस्ती और चेहरे पर एक खिन्नता का भाव था। अम्मा उसके गाल पर अपनी ममता-भरी हथेली फिरा आचल से अपने आंसू पोंछने लगी थीं।

बाबूजी का चेहरा भी बेटे को देख दुखी था। उन्होंने स्वयं पर नियंत्रण रखते हुए पूछा—

''तबियत ठीक नहीं है क्या, भइया?''

''जी, दो-तीन दिन से बुखार आ रहा था। सिर में भी काफी दर्द था।'' मधुकर ने सिर झुकाए हुए बताया।

''हे भगवान्, कौन सिर दबाया होगा मेरे लाल का? कौन दवा ले आकर दिया होगा? कलेजा फट जा रहा, पर भगवान् को जरा भी दया नहीं आ रही है। क्या पाप किया था मैंने जो इस तरह की सजा मिल रही है!'' अम्मा आंचल मे मुह छिपा सिसक रही थीं।

मानवी अपराधी की तरह बस एक कोने में खड़ी मधुकर का चेहरा निहारे जा रही थी। सच ही तो रो रही हैं अम्मा। जिसे इतने प्यार से पाला, पलकों की छाव में संभालकर रखा, वह जेल की खुरदरी चारदीवारी के पीछे अभिशप्त जीवन जीने को विवश। अपने एक क्षणिक आवेश के चलते...वह भी उसी के कारण धिक्कार से मानवी का मन भर उठा। यही धिक्कार तो था जो मानवी को कभी सहज नहीं रहने देता। सारी योग्यता, कुशलता इसके सामने बौनी हो जाती है और तब वह किसी मिट्टी के खाली बरतन की तरह धधकती, दहकती रहती है अपने मन के आवां में। किसी को इस दहक का एहसास नहीं। मधुकर का तिल-तिलकर जलता जीवन तो सभी देख रहे हैं, पर उसकी तपिश? कहीं कोई सावन नही। दूर-दूर तक रेगिस्तान। उसकी आंखें डबडबा आईं नियति पर। कितने लोग दु:ख झेल रहे हैं उसकी खातिर। मधुकर की अपराधी है वह। अम्मा की भी अपराधी है वह, पुत्र-वियोग का दु:ख दिलाने वाली। एक ऐसी अपराधी जिसने कोई अपराध नहीं किया, पर अभिशप्त है दंड भुगतने को। वह निढाल होकर बेंच पर बैठ गई।

अम्मा मधुकर का सिर दबा रही थीं और अनवरत गिर रहे अपने आंसुओ को भी पोंछती जा रही थीं। मधुकर की आंखें भी आंसू पीने के प्रयास में लाल हो रही थीं।

भइया कई वर्षों बाद आए थे मिलने। वे मधुकर की बगल में गंभीर मुद्रा मे बैठे कुछ बात शुरू करने जा रहे थे। भाभी पहली बार आई थीं जेल। वे सकपकाई-सी चारों ओर देख रही थीं। उनके चेहरे पर कई भाव आ-जा रहे थे।

कहीं कोई यह न समझ ले उन्हें कि वे लंबे कारावास के एक कैदी से मिलने आई हैं, इसलिए जब भी कोई उधर से गुजरता वे बातें बंद कर बाहर की ओर देखने लगतीं। जैसे उनका यहां बैठे लोगों से कोई संबंध ही न हो। बस, वे किसी की प्रतीक्षा कर रही हों।

"दीदी, एक दिन डी.एम. साहब आए थे यहां! मुझे बुलाकर मिले। तुम्हारा नाम बता रहे थे।" मधुकर ने मानवी को एक कोने में उपेक्षित-सा बैठा देखा तो स्वयं पहल की।

मानवी के कानों में जैसे तृप्ति का तोष भर गया था 'दीदी' संबोधन से। सजल हो आई आंखों से उसने मधुकर को देखा और बोली—

"हां, मैंने ही तुम्हारे बारे में उनसे एक दिन चर्चा की थी...ऐसे ही एक इटरव्यू के सिलसिले में मिलने गई थी।"

"क्या? यहां के डी.एम. तुम्हारे परिचित हैं क्या?" भइया फटी आंखों से उसे देखते हुए पूछ रहे थे।

"जी...बहुत थोड़ा...बस, लिखने-पढ़ने के कारण वे मुझे...सम्मान देते हैं।" मानवी को एक झटके में शब्द नहीं मिला तो 'सम्मान' कह दिया। कैसे कहती कि 'मानते हैं'। पता नहीं वे मानते हैं या बस यूं ही। क्यों वह कोई भ्रम पाले? सम्मान तो कोई भी किसी को भी दे सकता है।

"देखो भाई, संभालकर कदम रखना। अधिकारियों की अगाड़ी और घोडे की पिछाड़ी से बचकर रहना चाहिए। न जाने कब ठोकर मार दें।" भइया ने चेतावनी-सी दी।

"आप तो पता नहीं क्यों हर बात पर संदेह जरूर कर लेते हैं। मैं उनकी समानपदी या अधीनस्थ तो हूं नहीं कि अगाड़ी-पिछाड़ी सोचूं। तेज आदमी है। लिखने-पढ़ने का शौक उन्हें भी है, कभी-कभी मेरा काम भी पड़ जाता है...।"

मानवी ठमक-सी गई— उत्तर लंबा होता चला गया था। उसने स्वयं को रोक लिया। क्यों वह इतनी सफाई दे रही है? डी.एम. साहब भी लिखते-पढ़ते हैं, ऐसा उसने कब जाना? फिर उनके बारे में मनगढ़ंत बातें क्यों? क्यों वह भइया की इस तरह की आशंका-भरी बातों पर चिढ़ उठती है?

मन ने स्वयं उत्तर दिया था— वह जो कुछ भी कर रही है क्या वह स्वार्थ के कारण? मधुकर और अम्मा-बाबूजी के लिए ही तो वह भी अपनी जिंदगी होम कर रही है? भइया की तरह केवल अपनी और अपने परिवार की चिंता तो नही कर रही है न?

'परिवार' पर मन बंद घड़ी की सुई की तरह ठहर गया था। परिवार है ही

कहां उसका? मंगनी टूटने के बाद कितने लोगों ने उससे उसका हाथ मांगा? फिर क्या वही घूम-घूमकर अपने लिए...?

बाबूजी ने कई जगह बात चलाई भी तो मधुकर का प्रकरण काली छाया-सा आकर उसे घेर लेता। वह पक्ष हिचकिचाकर किनारा कर लेता। न जाने भीतर और भी क्या बात हो? केवल दुपट्टा खींचने पर तो कोई किसी के खून का प्यासा नही हो सकता। झगड़ा हो सकता है, मारपीट तक की नौबत आ सकती है, परतु हत्या का प्रयास...जरूर कोई बात है! और मानवी सफाई भी न प्रस्तुत कर पाती।

"बस, चलिए। समय हो गया मिलने का।" सुरक्षाकर्मी आकर उनके बीच मे खड़ा हो गया था। भइया की बातें अधूरी रह गई थीं। अम्मा अधीर-सी मधुकर की हथेली सहलाए जा रही थीं। एकाएक उन्होंने अपने ब्लाउज में से रूमाल निकाला था और सौ-सौ के दो नोट सुरक्षाकर्मी के हाथ में थमा उसके पैरो मे झुक गई थीं—

"भइया, तुम हमारे बड़े बच्चे की तरह हो। मेरे मधुकर को देखते रहन, भइया। इसको बुखार है तीन-चार दिन से। दवा और फल खरीदकर ले आ देना। भगवान् तुम्हारे बच्चों का भला करेगा।" अम्मा बिलखकर रो पड़ी थीं सुरक्षाकर्मी के सामने।

"ठीक है, ठीक है, माताजी। हम लोग इसीलिए तो हैं यहां...चलो भाई, जाओ अंदर।" सुरक्षाकर्मी ने दोनों नोट धीरे से जेब में डाल लिया और मधुकर को अंदर जाने का आदेश दे दिया।

मधुकर थके-थके कदमों से अंदर चला जा रहा था और अम्मा बिलखती हुई खड़ी-खड़ी उसे देख रही थीं।

मानवी ने अम्मा को कंधे से सहारा दिया, "चलो अम्मा।"

और अम्मा ने ऊं-ऊं कर रोते हुए उसके कंधे पर सिर टिका लिया था। उनका पूरा बदन सिसकियों से हिल रहा था। मानवी का कलेजा भी विदीर्ण-सा हो रहा था।

दोपहर हो चली थी—निचाट और बेहाल। पेड़ों पर कौवे रार मचा रहे थे। सडक पर इक्का-दुक्का गाड़ियां भन्न से निकल जा रही थीं। ऑटोरिक्शा खाली नही मिलना था, इसलिए वे पैदल ही मुख्य सड़क की ओर चल पड़े थे। मानवी ने अपने बैग में रखा छोटा तौलिया निकालकर बाबूजी के सिर पर ओढ़ा दिया और अपने सिर पर साड़ी का आंचल रख लिया था। न जाने कितना कुछ अभी देखना-झेलना है उसे—मानवी सोच रही थी। दृष्टि सामने भांय-भांय करती सडक पर टिकी थी।

बीस

पीड़ा के घनघोर अंधकार में सुख के बहुत महीन तंतु का आभास मात्र भी जीवन में उजास भरने का दायित्व संभाल लेता है। जीवन की अमा-रात्रि केवल महाकाल है—पूर्ण विराम, जहां सुख-दुःख, पीड़ा के द्वैत की प्रतीति मिट जाती है। अन्यथा जीवन आशा और विश्वास की पतली डोरी पर भी कंधों पर भारी पीड़ा लादे नटी-सा चलता रहता है। मानवी के जीवन में भी घोर निराशाओं और घुटन के बीच डी.एम. आनंद कुमार का स्नेह उसी पतले प्रकाश-तंतु का काम कर रहा, जिसके सहारे वह जीवन में प्राण पहनाए हुए थी।

अम्मा-बाबूजी भइया के साथ गांव चले गए थे। अम्मा उसके अकेलेपन की सोचकर रो रही थी और बाबूजी चिंतित थे। मानवी उनके जीवन की सबसे अधिक उलझी गुत्थी थी। नौकरी छुड़वाकर गांव में रख नहीं सकते थे—बेटे-बहू की उपेक्षा, गांववालों की रोज की पूछताछ। पहले भी वे यह सब झेल चुके थे, तभी मानवी को नौकरी करने के लिए बाहर आने दिया। कम से कम लड़की मे कुंठा की जगह आत्मविश्वास तो भरेगा। वर की खोज में दिन-महीने-वर्ष बीतते जा रहे थे, पर कोई तैयार नहीं हो रहा था। मन के किसी कोने में यह भी स्वीकार्य था कि मानवी अपनी पसंद के ही किसी योग्य लड़के से विवाह कर ले तो वे रोकेंगे नहीं। कम से कम उसका भविष्य निश्चित तो हो जाएगा, पर जाति और धर्म के नाम पर मन हिचक जाता। कहीं अपने से हीन या दूसरे धर्म का हुआ तो? नहीं, नहीं, मानवी इतनी नासमझ नहीं रही अब। सामाजिक मान-मर्यादा का ध्यान उसे भी है, तभी तो आज तक ऐसी कोई हवा तक नहीं पड़ी उनके कानो मे। सोचकर अम्मा-बाबूजी आश्वस्त थे। इसीलिए डी.एम. आनंद कुमार की बातें मानवी के मुख से सुनकर अम्मा की आंखों में एक सपना डोलने लगा—

"मनु, आनंद की शादी हो गई है क्या?"

"पता नहीं। मैं क्या जानूं, अम्मा?"

"कभी पूछा नहीं...यानी कभी बातचीत में उन्होंने नहीं बताया?"

"यह भी कोई पूछने की बात है? क्या सोचेंगे वे?"

"अरे नहीं, जैसे बाल-बच्चों के बारे में हालचाल लेने पर पता चल ही जाता है।" अम्मा का स्वर हताश-सा हो गया।

"और यदि बाल-बच्चे नहीं हैं तो खट् से मैं अपना आवेदन-पत्र पकड़ा

दू उन्हें? सेवा में, जिलाधिकारी महोदय, निवेदन है कि मैं आपसे विवाह करने के लिए बिलकुल तैयार हूं, कृपया आप मेरी माताजी से अविलंब संपर्क करें।'' मानवी खिलखिलाकर हँस पड़ी थी और तकिये को पेट के नीचे दबा औंधी लेट गई थी। अम्मा भी उसकी हँसी में शामिल हो गई थीं।

''यदि कुंवारे हों तो क्या बुराई है, बेटा? हिंदू हैं, अच्छे पद पर हैं। फिर इतना बड़ा मेरा सौभाग्य कहां जो तेरे लिए ऐसा वर पाऊं?' अम्मा पुनः मूल बिंदु पर आ गई थीं।

मानवी गंभीर हो उठी--

''तुम गलत सपने सजा रही हो, अम्मा! कहां मैं और मेरा अतीत-वर्तमान। और कहां वे? क्या हर जिले में मेरी जैसी नौकरापेशा कुमारी लड़कियां उनसे नहीं मिली होंगी या कोई मुझसे सुंदर नहीं रही होगी? अरे अम्मा, उनका स्वभाव है सभी से अच्छे ढंग से बात करने का, बस। क्यों मैं कोई भ्रम पालूं?''

पर क्या सचमुच उसके मन में कोई भ्रम नहीं पल रहा था? मानवी ने बिस्तर पर करवट बदली।

अभी सात ही बजे थे, पर वह कमरे में आ बिस्तर पर लेट गई थी। पंखा पूरी गति से चल रहा था। अम्मा के चले जाने के बाद घर सूना-सूना लग रहा था। रसोई में गई थी तो मन भर आया था। अम्मा ने जाते-जाते उसके लिए पूड़ियां छानकर और फिर उसी कढ़ाई में आलू-टमाटर की भुजिया सब्जी बनाकर ढंक दी थी रात में खाने के लिए। एक कटोरी में थोड़े-से दूध में दही का जोरन डालते हुए समझाया था--

''रात तक दही जम जाएगी। खा लेना।'' और उन्होंने चुपके से मुंह फेरकर अपने आंसू पोंछ लिए थे।

मानवी चुपचाप दुखी मन से उन्हें यह सब करते देख रही थी। अम्मा पूरे घर में घूम-घूमकर मानवी के अस्त-व्यस्त सामान को ठीक कर रही थीं। भले ही और दिन उनकी उपस्थिति में भी ये सामान ऐसे ही पड़े रहते थे, परंतु जाने से पहले वे इतना कुछ व्यवस्थित कर देना चाह रही थीं जिससे मानवी को कम से कम काम करना पड़े। पर क्या केवल इसी भावना से वे यह सब कर रही थीं? नहीं, मानवी का मन पूरी तरह समझ रहा था। अम्मा अपने हृदय की विकलता को किंचित् कम करने के प्रयास में थीं। एक-एक सामान में मानवी का स्पर्श अनुभव करतीं...और उस पर अपना स्पर्श-जन्य स्नेह टांक रही थीं वे। नारी के अंदर छिपी मां का स्वरूप कितना विशाल होता है— निर्मलता और करुणा से लबालब।

मानवी की आंखें भर आई थीं। दही में चीनी मिलाकर चम्मच से खा, पानी पीकर वह बिस्तर पर आ गई थी। पूड़ी-सब्जी खाने का मन नहीं हुआ।

बिस्तर पर लेटे-लेटे अम्मा-बाबूजी और कभी आनंद कुमार बारी-बारी से उसके विचारों में आकर जैसे ताने-बाने के एक-एक धागे को इधर-उधर उलझाकर चले जा रहे थे और वह किसी अनाड़ी बुनकर की तरह करघे पर झुकी एक-एक धागे को खींचकर सीधा करने के प्रयास में और उलझी जा रही थी। पर इस उलझाव में एक उद्वेलन था, तोष था! खिझलाहट नहीं थी।

सुबह बरतन मांजने वाली ने दरवाजे पर थपथपाया तो मानवी की नींद खुली थी। सामने टंगे कैलेंडर में मुसकराते आशीर्वाद की मुद्रा में हाथ उठाए भगवान् शकर की तसवीर को उसने जल्दी से प्रणाम किया और शीशे में अपना चेहरा एक क्षण को देख, बालों को हाथ से संवारते हुए उसने दरवाजा खोल दिया। अम्मा रहती थीं तो प्रतिदिन सुबह भगवान् की तसवीर को देख प्रणाम करने के बाद वह अम्मा का चेहरा देख लेती थी। बचपन से ही कब यह आदत बन गई, उसे याद नही। बस, इतना याद था कि बाबूजी सुबह उठकर उसका चेहरा देखा करते। सामने न रहने पर उसे बुलाकर देखते। एक बार उनसे कौतूहलवश पूछा था तो बाबूजी ने हँसकर कहा—

"शुभ है तेरा चेहरा। पूरा दिन ठीक बीतता है।" तभी से वह भी सुबह उठकर भगवान् को प्रणाम करने के बाद अम्मा-बाबूजी का चेहरा देखने लगी थी। मा-बाप से शुभ चेहरा और किसका होगा? उनके न रहने पर वह दर्पण में अपना ही चेहरा देख लेती। बचपन में पड़े संस्कार लहू बनकर मनुष्य के पूरे तन मे दौडते रहते हैं, जिन्हें निकाल पाना आजीवन संभव नहीं होता। इसीलिए तो श्रुति और परंपराएं— साथ ही रूढ़ियां भी—शताब्दियों की दुर्गम, आड़ी-टेढ़ी सीढिया चढकर भी साथ नहीं छोड़तीं। एक शरीर से दूसरे शरीर, एक पीढ़ी से दूसरी पीढी मे लहू बन दौड़ती रहती हैं। परिवर्तनकारी नीतियां सिर टकरा-टकराकर लहूलुहान होती रहती हैं। विजयकामी प्रवृत्तियां अपनी संपूर्ण ऊर्जा झोंककर भी इन परंपराओ की शक्तिशाली दुर्ग-दीवारों की खुरचन ही बटोर पाती हैं।

"आज अम्मा-बाबूजी नहीं हैं तो देर तक सोती रहीं, मानवी?" सामने बाउड्री-वाल पर फैली बसंतमालती की लताओं पर पानी की पाइप से फुहार मारते हुए मकान-मालिक अग्रवालजी ने कहा।

"जी अंकल, रात में बहुत देर तक अम्मा-बाबूजी की याद आती रही। सो नही पाई इसीलिए।" मानवी ने पीछे मुड़ते हुए कहा। हड़बड़ी में वह दुपट्टा लेना भूल गई थी। शाम को नहाने के बाद सूती चिकेन का हलका सलवार-कुरता पहने

हा वह सोइ थी।

"क्यों नहीं आकर अपनी आंटी के साथ यहां सो गईं? उन्हें भी अच्छा लगता।"

"जी, सोचा, क्या परेशान करूं?" उसने मुड़कर संकोच के साथ जवाब दिया और दरवाजे के पास पड़े आज के अखबार को झुककर उठाने लगी। शायद दरवाजा बंद रहने के कारण हॉकर वहीं फेंककर चला गया था।

"तुमने तो कर्फ्यू लगवा दिया शहर में।" अग्रवालजी हँसकर बोले।

"क्या अंकल? कब?" वह आश्चर्यचकित-सी कई प्रश्न पूछ बैठी। वैसे दगे और कर्फ्यू इस शहर के लिए अप्रत्याशित नहीं थे, परंतु इधर कई वर्षों से ऐसी कोई स्थिति उत्पन्न नहीं हो पाई थी।

"रामापुरा में। ताजिया उठाने के सवाल पर एक ठेलेवाले से विवाद हुआ और बस शुरू मारपीट! एक कोई सोनकर लड़के को सोनारपुरा में घेरकर मार डाला उन लोगों ने। चौक में भी भगदड़ मची। एहतियात के लिए प्रशासन ने कर्फ्यू लगा दिया।"

"हिंदू के अलावा उनकी तरफ का भी कोई मारा गया?"

"नहीं, ऐसी खबर तो नहीं है। वैसे भी सही खबर तुम लोग कहां देते हो? प्रशासन देने दे तब न?" अग्रवालजी पुनः हँसे थे।

"ऐसी बात तो नहीं है, अंकल। हम लोग पूरा प्रयास करते हैं कि जनता के सामने सही आंकड़े और सही छवि ही पेश की जाए।"

"पर प्रशासन करने दे तब न? इसमें उसकी छवि का भी प्रश्न तो है। सचमुच कितने लोग मारे गए और किस संप्रदाय के, यह बताने पर तो दंगे और भी भड़क सकते हैं न? शायद इसलिए भी छिपाना विवशता होगी।"

"शांति बहाली के लिए कभी-कभी हमें प्रशासन का साथ देना पड़ता है, अकल।"

"देखा, मेरी बात आखिर सत्य हुई न?" वे ठहाका लगाकर हँस पड़े थे।

मानवी भी हँसती हुई अखबार में आज की वह खबर पढ़ते हुए कमरे मे चली गई थी। आज ऑफिस जल्दी पहुंचना होगा। कर्फ्यू की न्यूज, फिर भंडारी साहब से मिलकर फीचर के लिए विषय निश्चित करना होगा। सम-सामायिक ही होना चाहिए। वैसे भी घरों में बंद लोगों के लिए ऐसे समय में अखबार ही माध्यम होता है शहर का हाल जानने के लिए।

मानवी ने झट मंजन किया और गैस पर अपने तथा दाई के लिए चाय का पानी चढ़ा, कपड़े लिए बाथरूम की ओर दौड़ गई। जब तक चाय उबलेगी वह

रखले ह मेमसाहब, रखले ह!'' मुन्नी ने गुस्से में कढ़ाई में झांवां पटका था मानो उसे 'काकी' के मुंह पर मार रही हो।

मानवी के लिए यह कहानी नई नहीं थी। कई बार मुन्नी इस कहानी को दुहरा चुकी है।

''जाने दो। एक दिन गलती पर अपने पछताएगा तुम्हारा आदमी! लो, चाय पीओ।'' मानवी ने एक प्याला मुन्नी की ओर बढ़ाया और दूसरा प्याला स्वय लेकर जाने लगी थी।

पीछे से मुन्नी की आवाज आ रही थी—

''अरे ऊ का पछताई, मेम साहब। आज हम मर जाईं त बाल-बच्चन बिलबिलइहैं, अउर ऊ वोही मुंहझौंसी के ले आके बइठा लेई। अबहीं त हमरै कमाई पर रंडी का पेट भरत हौ, तब समझ में आई...''

मुन्नी के आक्रोश से मानवी को सहानुभूति थी। आवारा पति और चार बच्चो का पालन-पोषण वह किस तरह अपनी हड्डियां गलाकर कर रही है, मानवी अच्छी तरह जानती थी। सुबह से शाम तक वह कालोनी के कई घरों में घुसती-निकलती दिखाई देती। बीच-बीच में घरों से मिले खाद्य पदार्थ वह गली में पिल्लों के साथ खेलते अपने बच्चों को पकड़ाती रहती। कभी-कभी गुस्से में भरा उसका जुमला भी ऑफिस जाती मानवी के कानों में पड़ जाता—

''ऊ दहीजरा तोहने क हाथों-गोड़ ना धोवे लायक हौ? काहे न जाके चापाकलियै पर तुहने आपन इल्लत धो लेते?'' यह कहते हुए उसके होठों के दोनों कोरों पर सफेद झाग बनने-मिटने लगते।

एक दिन उसके इसी आक्रोश को देखकर मानवी ने हँसकर सलाह दी थी—

''इसीलिए तुम मुझे बार-बार शादी कर लेने के लिए कहती हो? ऐसा ही कोई मिल गया तो मेरी कैसे निभेगी?''

''कुछ भी हो, मेम साहब, टाटी त हौ न? बिना टाटी के तो कुकुरौ झाकै लगी, मुंह मारै लगी घरे में। मेहरारू बदे एक टाटी जरूरी बाय। एही मारे लड़की जनमतै माई-बाऊ के कपारे बोझ काहे लद जाला? काहे सबकर नजर बचाव के रखल जाला बिटिया के अउर बड़ होतै कन्यादान कइके आपन बोझ हलुक कै लेलै माई बाप? एही बदे कि दुनिया भरे क बुरी नजर न पड़ै ओप्पर।''

''और अगर लड़की को पढ़ा-लिखाकर अपने पैर पर खड़ा कर दिया जाए तो?'' मानवी ने रुचि ली।

''मेम साहब क बात? पढ़ जाए चाहे कलेट्टर बन जाए, रही त मेहरारू

न? मोंछ न न जाम जाई ओकरे?''

वह मानवी की नादानी पर हँसी थी, और मानवी उसके तर्क पर।

दरवाजे पर खंखारने की आवाज सुनकर मानवी समझ गई थी कि देवता पाडेय आ गए हैं। चाय का प्याला लिए वह बाहर आई थी।

''आज तो सड़क पर सन्नाटा है। कोई साधनै नहीं मिल रहा था।'' कहते हुए देवता बाहर पड़ी कुरसी पर बैठ गया था।

''बैठिए मत, देवता पांडेयजी। जरा दो रिक्शा पकड़ लीजिए। आज आफिस जल्दी चलना है। तब तक आपके लिए चाय बनाती हूं।''

''तो पहले चाय ही दे दीजिए, मैडम। आज घर से पीकर नहीं चला। यहा भी नहीं मिलेगी तो दिन-भर ऐसे ही बीत जाएगा। दुकान तो खुलेगी नहीं आज।''

मानवी को उसका यह अधिकार-भाव चुभने लगा। हीन-ग्रंथि ने सिर उभारा। क्या किसी अधिकारी महिला या पुरुष के साथ भी अपनी ड्यूटी करते हुए यह पांडेय इतने अधिकारपूर्वक चाय मांग सकता था? तब तो सेल्यूट ठोक 'जी सर' करता फिरता। उसे एक सामान्य महिला ही समझकर वह ऐसा बरताव कर पाने का साहस जुटा ले रहा है। उसका माथा भन्ना गया था।

अगले ही पल उसने स्वयं को समझा लिया था। चाय ही तो मांगी है उसने। इसमें इतना उलट-पुलटकर सोचने की क्या आवश्यकता? आज पत्नी का मूड खराब रहा होगा, चाय नहीं दी होगी। पर क्या वह उसे अपनी पत्नी का विकल्प...छिः छिः कैसी बातें सोचती हो मानवी?

उसने अपने अंदर उग आई मानवी की दूसरी शाख को एक घुड़की दी। मध्यमवर्गीय परिवारों की लड़कियों की यही तो एक बुराई है। हर चीज में एक सकुचित सोच—छुईमुई की पत्तियों की तरह। छुआ नहीं कि सिकुड़कर दोहरी। स्वयं में घुरमुराती, भुनभुनाती।

जल्दी-जल्दी उसने गुनगुने पानी में ही चाय-चीनी छोड़कर भगोने को ढक्कन से ढंक दिया ताकि जल्दी उबाल आ जाए और देवता पांडेय को चाय दे दे। अभी वह अपनी घनी मूंछों के बालों को चाय के प्याले में थोड़ा डुबाता-निकालता सुड़-सुड़कर बहुत देर तक चाय पीएगा। गरम चाय से न जाने वह क्यो डरता है कि बार-बार होठों को प्याले से सटाकर सुड़ की आवाज निकाल बिना चाय अंदर खींचे जल्दी से मुंह दूर कर लेता है। हां, मूंछों के कुछ बाल अवश्य चाय में गोते लगा आते हैं हर बार। कई बार इसी प्रकार आजमाने के बाद ही एक बार साहस कर, आंखें मूंद, होठों को बलात् कप से चिपकाए वह थोड़ी गरम चाय सुड़क पाता है और जल्दी से घोंट जाता है, मानो सांप किसी छछूंदर को

झटके से निगल रहा हो। मूंछों पर हाथ फिर तब वह घूंट पर घूंट चाय गले से नीचे उतारता है।

मानवी ने चाय छान आज प्लेट के साथ पांडेय को दी, ताकि वह उसमें ढालकर जल्दी पी ले।

"अरे मैडम, इसकी क्या जरूरत है? ले जाइए इसको। हम इसी से पी लेंगे। इतना सजा-बजा के हमारे घर में चाय थोड़े ही मिलती है। आदत क्यों बिगाड़ रही हैं?" वह हँसा था हो-होकर और प्लेट मानवी की ओर बढ़ा ही।

मानवी उसके उदाहरण पर तिलमिलाकर रह गई थी। प्लेट लेकर मन ही मन उसकी बदतमीजी पर भन्नाती वह तैयार होने अंदर चली गई।

तैयार होकर बाहर आई तो देवता पांडेय चाय पीकर कप कुरसी के नीचे खिसका, आराम की मुद्रा में फैलकर बैठ गया था। दोनों पैर आगे फैला अपने हाथों को तोंद पर हथेलियों से बांध लिया था।

मुन्नी भी बरतन साफ कर पीछे-पीछे निकल आई थी।

"मुन्नी, जा, जरा ये कप अंदर रख आ।" मानवी ने देवता पांडेय को सुनाते हुए, सामान्य महिला के खोल से बाहर निकलते हुए अपना प्रभाव छोड़ने के लिए मुन्नी को यह आदेश दिया था। चौड़े लाल बार्डर वाली बादामी रंग की हैंडलूम की साड़ी का पल्लू उसने कई तहकर कंधे पर पिन से ब्लाउज में टांक लिया था। हाथ में फीचर वाली फाइल और पर्स ले वह दरवाजे में ताला बंद करने लगी।

मुन्नी जा चुकी थी। देवता अभी तक आराम फरमा रहा था। आज मानवी को उसका व्यवहार पता नहीं क्यों अप्रिय लग रहा था? शायद प्रतिदिन अम्मा-बाबूजी के होने से इन सब बातों की ओर ध्यान ही नहीं गया था। चाय अम्मा दे देती थी उसे। ऑफिस में कमरे से बाहर स्टूल पर बैठा वह ऊंघता रहता था या चाय-पान के बहाने बाहर घूमता रहता।

एक बार रोमेश चड्ढा ने उससे मजाक में पूछा था—

"मानवीजी, इस चिकमगलूर की क्या आवश्यकता पड़ गई आपको?"

"बस, ऐसे ही। एक दिन एक सज्जन आए थे। धमकी दे रहे थे एक न्यूज निकलवाने के लिए।"

"मेरे पास भेज दिया होता।"

"कहा। पर उन्हें विश्वास ही नहीं था कि न्यूज मैं नहीं देखती। लगे विधायक वगैरह का रिफरंस देकर धमकाने। मैंने डी.एम. साहब को एहतियात के तौर पर सूचित किया तो उन्होंने यह व्यवस्था कर दी।" मानवी ने तथ्य को आंशिक रूप से छिपा लिया।"

"एस...अब लग रहा है कि कोई वी.आई.पी. पत्रकार यहां काम करता है। हम लोगों पर तो डी.एम साहब की कृपा होने से रही। रोज धक्के-मुक्के खाकर न्यूज ले आते हैं। इसीलिए भगवान् से मनाता हूं कि अगले जन्म में मुझे महिला ही बनाना। बड़े फायदे हैं।"

रोमेश चड्ढा की हँसी तिलमिलाने वाली थी।

"झेल जाओगे मि. चड्ढा!"

"मंजूर है।" कहते हुए रोमेश चड्ढा बाहर चला गया।

कुछ ही देर बाद तारक ने आकर बताया था--

"बिटिया, क्यों इस ससुरे का बवाल पाल ली हो? पुलिस वाले किसी के होते हैं क्या?"

"क्या हुआ, बाबा?"

"अब क्या बताऊं? चड्ढा बाबू से ऐसी-ऐसी बातें कर रहा था तुम्हारे बारे मे ."

"मेरे बारे में?"

"हां, बस, इतने से समझ लो कि चड्ढा साहब उससे कह रहे थे कि ..कि...'भाग्यशाली हो पांडेयजी। ऐसी ड्यूटी किसको नसीब? इतनी खूबसूरत ड्यूटी तो मैं सरकार से बिना एक पैसे तनख्वाह लिए करता रहूं।' तो वह बोला--'आप चड्ढा हैं न इसीलिए इतनी जल्दी खुल रहे हैं। मैं तो लंगोट बांधता हू। बिना खोले नहीं खुलता...' तब तक मैं आ गया था, बिटिया...देखो, उससे पूछना भी हो...तो मेरा नाम मत बताना। ये पुलिसवाले किसी के नहीं होते। चड्ढा के साथ अकसर सुरती खाता है पांडेय।"

मानवी का पूरा शरीर जैसे आग की लपटों से घिर गया था। दूसरे दिन बिना बात के ही उसने अपनी बात शुरू की थी--

"देवताजी, एक बात आपसे कहनी है। मेरे ऑफिस में किसी से न तो ज्यादा संपर्क रखिए और न ही अनावश्यक बातें करिए। मेरा इशारा तो आप समझ रहे हैं न?"

मानवी के तेवर देख एक क्षण को वह सकपका गया था, पर अगले ही पल उसे अपने कुछ होने का एहसास हुआ तो बोल पड़ा--

"अब ड्यूटी में ये तो लिखा नहीं है कि मुंह पर ताला लगाकर बैठना है। अगर बहुत दिक्कत हो आपको तो मेरी रवानगी कर दीजिए। नौकरी है, कहीं भी होगी।"

मानवी के पास कोई जवाब नहीं था। वह असहज हो उठी। बस इतना ही

बोल पाई—

"समय आने दीजिए। वह भी कर दूंगी। कल ही डी.एम साहब से बात कर रही हूं।"

डी.एम. साहब का नाम सुनकर वह कुछ संकुचित हुआ और बाहर जाकर बैठ गया था। उसके बाद से न तो उसने किसी से कोई बात की और न ही मानवी ने डी.एम. साहब से बात की।

"आज रिक्शा तो नहीं मिलेगा। ऑटो कोई मिल जाए तो ठीक है।" देवता पांडेय ने सूनी सड़क पर दूर तक निगाह दौड़ाते हुए कहा।

मानवी ने भी देखा—रोज फुटपाथ पर रिक्शेवालों की कतारें लगी रहती थीं। बीच-बीच में ठेले पर घड़े में 'पना' भरे और उसे लाल कपड़े से ढंक, उस पर हरे आम और पुदीने का गुच्छा फैलाए ठेले वाले 'गरमी की तरावट ले लो भइया!' की गुहार लगाते सड़क की शोभा बढ़ाते थे, परंतु आज नौ बजे तक सडकें इतनी सुनसान और वीरान थीं।

"वो एक ऑटो आ रहा है। रोकूं?" देवता पांडेय ने दूर सड़क पर आ रहे छोटी टेंपो को देखकर कहा।

"उसमें तो सवारियां दीख रही हैं।" मानवी ने आंखों के ऊपर एक हथेली से कैप के आकार का घेरा बना उधर देखते हुए कहा।

"तब, मैडम, आज ऑफिस जाने का इरादा त्याग दीजिए। आज पुलिसवाले खाली टेंपो चलने देंगे तब न? वैसे भी डर के मारे सब आज नहीं निकलेंगे।"

"अच्छा, रोक लीजिए इसे ही। कम सवारियां हैं। आज ऑफिस जाना जरूरी है।" मानवी ने दबी जुबान से कहा। आज उसे भी निकलने में थोड़ा भय महसूस हो रहा था। न जाने कहां कोई हंगामा होने लगे? परंतु न जाना भी भंडारीजी को नाराज कर सकता था।

टेंपो आकर रुक गया था। पीछे दो पुरुष बैठे थे। आगे ड्राइवर के बगल मे शायद खलासी बैठा था, क्योंकि उसके कपड़ों पर जगह-जगह कालिख और मोबिल के धब्बे लगे थे।

"आप, भाई साहब, आगे आ जाइए। आप दोनों लोग पीछे बैठ जाइए।" ड्राइवर ने सभ्यतावश पीछे की एक सवारी को बुलाकर अपनी बगल में बैठा लिया। शायद वह मानवी और देवता पांडेय को एक ही परिवार का समझ रहा था। मानवी देवता पांडेय को आगे बैठाना चाह रही थी, परंतु अवसर हाथ से जा चुका था। मन-मसोसकर वह एक किनारे बैठ गई। देवता पांडेय दूसरी सवारी और मानवी के बीच में बैठ गया था। मानवी को अपने कूल्हों पर पांडेय का आग

की रगड़ महसूस कर गिनगिनाहट-सी महसूस हुई। वह और सिकुड़ गई, पर इससे दो सवारियों के बीच सिकुड़ी पांडेय की भारी-भरकम काया को और फलाव मिल गया था और फिर वही स्थिति।

"आप थोड़ा आगे खिसककर बैठिए, पांडेयजी।" मानवी ने अपनी गोद मे फाइल और पर्स रख दोनों हाथों को उन पर टिका लिया था।

"दो अंगुर की तो सीट बनवाते हैं ससुरे।" पांडेय मुश्किल से अपनी देह को थोड़ा आगे खिसकाकर लाया तो मानवी के हाथों पर उसके तेज दबाव के साथ ही वक्ष पर दबाव बढ़ गया। मन घृणा और पीड़ा से भन्ना गया। पर क्या करे? उसी ने पांडेय से आगे खिसककर बैठने को कहा था। अब कूल्हों से रगड नही तो हाथों पर...उसने हाथों को लंबवत् कर अपने घुटनों को पकड़ लिया। चलो अब इनसे भी छूने का डर नहीं। वह बाहर का दृश्य देखने लगी। आज टेंपो की गति कुछ अधिक थी।

एकाएक गतिभंजक के कारण ड्राइवर ने झटके से ब्रेक लगाया तो देवता पांडेय लगभग उसके ऊपर ही लुढ़क गया। उसके हाथों की कुहनी मानवी के सीने से टकरा गई थी। हाथों को लंबवत् रखने के कारण बगल से वक्ष और पेट का भाग तो अनढंका ही रह गया था। मानवी ने झट अपनी दोनों भुजाओं को सीने पर कस लिया था और फाइल को सामने चिपका लिया। कनखी से देखा। देवता पांडेय सामने देखते हुए भी मंद-मंद मुसकरा रहा था। आंखों में लाल डोरे-से तैर रहे थे। तो क्या जान-बूझकर उसने गिरने का बहाना किया? हां, सचमुच! क्योंकि वह स्वयं भी तो इस अचानक ब्रेक लगने से असंतुलित नहीं हुई थी। फाइल तक तो गिरी नहीं उसकी। खैर, कोई बात नहीं। आज विवशता में उसे यह सब झेलना है। पर यह अंगरक्षक है और इसी की नीयत में खोट होगी तो

नहीं, ऐसा नहीं होगा। हर बात को तिल का ताड़ नहीं बनाना चाहिए। यह एक संयोग हो सकता है—उसने मध्यमवर्गीय नारी को समझाया। अपने तन को स्पर्श से भी बचाकर रखने की मानसिकता बस, अब इसी वर्ग में बची है। वही जोहर व्रत करने का संकल्प जीवित रखे है, करे भले न। अन्यथा निम्नवर्गीय महिलाओं में दो-चार पति बदलना, कई बच्चों के साथ सगाई जाना या विवाहेतर अथवा विवाहपूर्व संबंधों पर इतना अंकुश कहां? अत्यंत उच्चवर्ग या धनाढ्य तथा पश्चिमी संस्कृति से आप्लावित परिवारों की महिलाएं भी इन सब बातों मे दकियानूस नहीं रहीं। तो क्या उसे भी...नहीं, नहीं, आशय यह नहीं है। अब परिस्थितियों के चलते इस तरह के स्पर्श को अपवित्र हो जाने की संज्ञा नहीं दे सकते न? हां, जान-बूझकर, दोनों की सहमति से होता, तब...पर जान-बूझकर

ही तो पांडेय ने ऐसी हरकत की है...पर मैं उसमें शामिल तो नहीं...लेकिन बलात्कार में भी तो...फिर क्या अनिच्छा के कारण लड़की अपवित्र नहीं होती?

ऊंह!, कहां तक सोच डालती हूं मैं! मानवी ने अपना सिर झटका। आज चलकर 'निवेदन' नाम से एक फीचर लिखूंगी, जिसमें सभी धर्मों के लोगों के विचार और इस तरह का उन्माद न फैलाने का निवेदन रहेगा। अच्छा रहेगा जनहित मे।

ऑटो रुका था और पांडेय के बगलवाली सवारी उतरकर चली गई। अब वह फैलकर बैठ सकेगी। पांडेय उधर खिसक जाएगा।

ऑटो चल पड़ा पर पांडेय अपनी जगह से नहीं खिसका।

"जरा उधर खिसकिए।" मानवी ने कुछ रुखाई से कहा तो पांडेय ने उसे ध्यान से देखते हुए थोड़ा खिसकने का अभिनय किया, परंतु खिसका नहीं। अपना दूसर हाथ उसने सीट के ऊपर फैला दिया। और बाएं हाथ से पैंट की जिप ठीक करने लगा। मानवी ने घृणा से दृष्टि फेर ली और बाहर देखने लगी। बदतमीज कहीं का। इतना भी नहीं मालूम कि महिला के बगल में कैसे बैठा जाता है। वह स्वयं ही सिमटकर बैठ गई थी।

अभी ऑफिस पहुंचने में दस मिनट का समय तो लग ही जाएगा। देवता पाडे अभी तक उखस-पुखस कर रहा था। मानवी ने सड़क की दूसरी ओर देखने के बहाने उस पर एक उड़ती निगाह डाली। देवता पांडेय सीट पर सिर टिकाए, आखें बंद किए पड़ा था। चेहरे पर खिंचाव और पसीने की बूंदें छलछलाई थी, मानो वह किसी गहन तनाव में हो। वर्दी का शर्ट बेल्ट के ऊपर से खुलकर नीचे तक लटक रहा था। शर्ट के नीचे उसके हथेली सक्रिय थी। मानवी ने ध्यान से देखते हुए कुछ समझने की चेष्टा की। एक बार हथेली ऊपर उठी तो शर्ट भी थोडी ऊपर उठ गई। देखकर मानवी के तन-बदन में आग लग गई। छि:, पू बदन में नाबदान के कीड़े बिलबिलाने लगे। मन हुआ अपना ही शरीर नोच कहीं फेंक दे या फिर बगल में बैठे इस कोढ़ियाए कुत्ते को किसी नदी में डाल दे। उसे समझ में नहीं आ रहा था कि क्या करे? तुरंत ऑटो रुकवा भी दे तो यहा से कैसे आफिस पहुंचेगी? फिर क्या सोचेगा ड्राइवर और अन्य सवारिया? ऑटो रुकते ही इस हरामजादे की ओर सभी देखेंगे ही...छि:, छि:, क्या सोचेंगे सब उसके बारे में? उसे इस समय कोई भद्दगी नहीं करनी चाहिए। लड़किया ही तमाशा बनती हैं...

मानवी ने अपने को और समेटते हुए ऑटो के प्रवेशद्वार की ओर कर लिया तथा बाहर देखने लगी। मस्तिष्क में सांय-सांय हो रही थी। गुस्से और अपमान

मे सीने में जैसे आग का गोला उमड़-घुमड़ रहा था। आज ही वह डी.एम. साहब से मिलने जाएगी और इस बेहूदे को हटवा देगी। नहीं आवश्यकता है उसे ऐसे भ्रष्ट अगरक्षक की। वह हरींद्र के भय के साये में जी लेगी?

कोई बात नहीं...जो होना होगा वह तो होगा ही। फातिमा से बात करेगी। कोई जगह अगर उसके योग्य होगी तो वह छोड़ देगी यह नौकरी। अध्यापन करने म कम से कम चैन तो होगा। प्राइवेट भी ठीक रहेगा। दो-चार ट्यूशन घर पर पढ़ा लेगी। इसीलिए बाबूजी शुरू से कहते थे कि लड़कियों के लिए अध्यापन ही सबसे ठीक रहता है। सुरक्षित रहती हैं। पर उसने कब बाबूजी की बात काटी? उसी के लिए तो वह उच्च डिग्री लेना चाह रही थी, ताकि किसी विश्वविद्यालय मे लेक्चररशिप मिल सके। पर बीच में ही हरींद्र वाला कांड...

ऑटो उसके ऑफिस के सामने रुक गया था।

"जरा मुझे डी.एम. कार्यालय तक पहुंचा दो, भइया। जो किराया हो रिजर्व क ले लेना।" मानवी ने ड्राइवर से कहा तो पांडेय चौंक गया।

"क्यों?" उसने पूछ लिया।

"बस, ऐसे ही। जरा कुछ जरूरी काम है।" मानवी ने उसकी ओर बिना देखे ही रुखाई से कहा।

"आज तो वे व्यस्त होंगे। ऑफिस में कहां मिलेंगे?" देवता पांडेय टेंपो से उतरकर नीचे खड़ा हो गया था। मानवी को लगा जैसे वह उसके इस अचानक निर्णय से भयभीत हो गया है। उसने सरसरी निगाह से देवता पांडेय को देखा। वह अपना शर्ट बेल्ट के नीचे पैंट में खोंस रहा था। इस भाव से मानो बैठे रहने से शर्ट बेतरतीब हो गई थी। मानवी को एक बार फिर घृणा-सी महसूस हुई। एक बुनियादी भावना के पीछे इतनी निर्लज्जता? संयम नाम की चीज नहीं। लेकिन क्या एक महिला अधिकारी या अपने से उच्च अधिकारी की पत्नी के साथ रहने पर वह ऐसा कर सकता था? नहीं, तब यह भावना सिर ही नहीं उठा पाती। उसे एक सामान्य महिला समझकर ही तो उसने यह हरकत की है। पर उसे क्या मालूम कि उसकी यह हरकत देख ली गई है। वह तो यही समझ रहा होगा कि मानवी ने कुछ नहीं देखा...कैसे सोच लेगा ऐसा? बगल में व्यक्ति क्या कर रहा ह कैसे नहीं पता चलेगा? उसे हटवा देना ही उचित होगा। इतने गंदे इनसान को वह अपने साथ नहीं ढोएगी। नाम देवता, और कृत्य कुत्तों से भी बदतर!

"हूं! मैं ऑफिस से ही फोन कर लूंगी डी.एम. साहब को।" उसने मानो देवता को एक परोक्ष धमकी दी और ऑटो से उतर गई। अपना और देवता पांडेय का किराया दे वह बिना कुछ बोले अपने आफिस में घुस गई थी। आज उसे अपनी

असहायता पर और हीनता व्याप रही थी। क्या किसी अकेली महिला को स्वाभिमान के साथ जीने का कोई अधिकार नहीं? हर जगह भेड़िए। कहां सुरक्षित महसूस करे वह?

उस दिन फातिमा से हँसी-मजाक चल रहा था जनसंख्या को लेकर तो उसने टिप्पणी की थी—

''हमें लगता है 'फातिमा, कि जिस देश या धर्म में जितनी ही परदा है उतनी ही जनसंख्या बढ़ती है। देखो विकसित देशों में, आधी टांगें खोले, बिना ब्रा का ढीला-ढाला पारदर्शी कुरता पहने महिलाएं चली जाती हैं, कोई फर्क नहीं पुरुषो पर। नौकरी कर रहे हैं। बच्चे एक या दो क्रेश में पल रहे हैं। हिंदुस्तानी लड़किया थोडा कम परदा, थोड़ी ज्यादा जनसंख्या बढ़ाती हैं, पर तुम मुसलमान लड़किया, आखें तक नकाब की जाली के पीछे, लेकिन बच्चे, बाप रे बाप आठ-दस या और भी...''

फातिमा हँस पड़ी।

''नहीं जानतीं मानवी, पूरा देख पाने की ललक ही तो सेक्स है! इसीलिए मुसलमानों ने कई-कई बीवियों की सुविधा बनाई अपने लिए। यहां तक कि यदि वे कहीं बाहर नौकरी करने जाते हैं तो वहां भी कुछ समय के लिए बीवी रखना जायज है। फिर लौटते वक्त उसका हरजाना दे, तलाक...सब इस धरती के चोचले। ले-दे के सच्चाई इतनी-सी कि बस, स्त्री-पुरुष का संबंध सत्य है, वाछनीय है। टेनसन ने भी तो यही कहा है...'' दोनों की हँसी रुक गई थी क्योंकि रोमेश चड्ढा बीच में आ गया था।

मानवी ऑफिस में अपने कक्ष के सामने पहुंची तो तारक नहीं था। उसे याद आया कि उसका घर शहर के बीच में है। हो सकता है, आज कर्फ्यू के कारण न आ पाए। ऑफिस में भी कोई खास चहल-पहल नहीं थी। बस सिटी टेवल वालों का कमरा खुला था। मानवी के शरीर में एक विचित्र-सी झुरझुरी दौड़ गई। आज वह अपने कक्ष के बाहर स्टूल पर भी देवता पांडेय को सहन कर सकने मे अक्षम .पा रही थी।

''आप पांडेयजी, आज घर जाना चाहें तो जा सकते हैं, क्योंकि मुझे कई जगह दौड़ना है कर्फ्यू के संबंध में।'' उसने दबे स्वर में कहा।

''अरे, क्यों मेरी नौकरी खाने पर लगी हैं! आज ही तो अधिक खतरा है।''

उसने समझाया तो मानवी ने लाचारी में कह दिया—

''तो ठीक है, बैठिए बाहर।'' उसने टेलीफोन की ओर हाथ बढ़ाया पर ठिठक गई। डी.एम. साहब से हो रही उसकी बातें देवता पांडे भी सुन सकता

है। उसे आनदजी से मिलकर ही बताना होगा। यह घटना तो नहीं बता पाएगी, हां हटाने का निवेदन कर लेगी. .क्या सोचेंगे वे? एक बार अपने ऊपर खतरे की बात करती है यह लड़की और दूसरे दिन अंगरक्षक को हटाने की। जरूर इस लड़की के चरित्र में ही कोई दोष है। नहीं, क्या आनंदजी इतने नादान हैं कि एक महिला की विवशताओं को न समझ सकें?...पर वे इस तरह की स्थितियों से दो-चार हुए हों तब न? उन्हें समझाना ही होगा। उसने टेलीफोन का रिसीवर उठा लिया और डी.एम. साहब का नंबर मिलाने लगी।

"हैलो, जरा डी.एम. साहब से बात करनी है।"

......

"अच्छा, जरा उनसे समय ले लीजिए। मैं मिलना चाहती हूं।"

......

"जी कोई भी समय।"

.....

"क्या? ट्रांसफर हो गया? आज सबेरे फैक्स आया है?"

.....

"कब ज्वाइन कर रहे हैं?"

......

"जी, मैं शाम को मिलना चाह रही हूं। पांच मिनट के लिए ही। प्लीज उनसे समय ले लीजिए। मेरा नाम नोट कर लीजिए...मानवी..."

मानवी टेलीफोन रख, निढाल होकर कुरसी पर टिक गई थी। स्वप्न-टंकी पतंग की डोर एकाएक हाथों से मानो छूट गई थी और वह विवश-सी उसे अपने सामने ही आसमान में उड़ते देख रही थी—निर्निमेष...असहाय...।

उसे मधुकर याद आ रहा था—हरींद्र की कुदृष्टि पर उसकी जान का प्यासा बना। देवता पांडेय की हरकतें भी क्या कम गुनाहगार थीं? उसकी क्या सजा मिलनी चाहिए? कौन देगा सजा? डी.एम. साहब? कौन हैं डी.एम. साहब उसके? कैसे बताएगी ये सब हरकतें? फिर उसके साथ तो पांडेय ने प्रत्यक्षत: कोई बदतमीजी नहीं की...फिर? फिर उसे क्या करना चाहिए? क्या इस घटना के प्रति आंखें मूंद, तटस्थ हो जाए? पर नसों में जो घृणा बिलबिला रही है उसका क्या करे? पांडेय को सामने देखते ही यह घृणा और वेगवती हो उठती है। उसे हटाना ही होगा। पांडेय को अब अपने साथ नहीं रख सकती। पांडेय ही क्या, किसी भी पुरुष को अपने साथ सुरक्षा के लिए नहीं रखेगी। और वह शाम होने का बेसब्री से इंतजार करने लगी—आनंदजी से मिलने जाना है।

इक्कीस

''एक निवेदन सर...''

''बोलो।''

''सर, अब आप जा रहे हैं तो देवता पांडेय को भी हटाते जाइए। बड़ी कृपा होगी।''

''क्यों? और तुम्हारी सुरक्षा?'' आनंद कुमार चौंके थे।

''जी, मैं नहीं सोचती कि उनके साथ रहकर भी मैं सुरक्षित हूं। आखिर ईश्वर या भाग्य भी तो मानना पड़ता है न, सर। ईश्वर जो चाहेगा वही होगा। फिर क्यों एक...?''

''लेकिन जब तक के लिए शिड्यूल है उतने दिन तो...''

''अब पूरे ही होने वाले हैं, सर, दिन भी।''

''लेकिन एकाएक ऐसी बात? क्या उसने कोई अभद्रता...?''

''नहीं, नहीं, सर...वह बात नहीं। अभद्रता क्या करेंगे वे मेरे साथ? बस, यूं ही चाहती हूं कि आपके जाने के बाद दूसरे अधिकारी न जाने क्या कहें? क्या सोचें?'' मानवी का स्वर कुछ दबा था।

''नहीं, कोई न कोई बात जरूर है, अन्यथा एकाएक इतनी वितृष्णा, इतनी घृणा?'' आनंद कुमार ने उसे ध्यान से देखते हुए कहा।

मानवी हँस पड़ी। एक फीकी और निर्जीव हँसी।

''एक बात कहूं, सर! स्त्री-पुरुष की दैहिक संरचना ही भिन्न-भिन्न नहीं होती, बल्कि भावनात्मक संरचना भी अलग-अलग है। स्त्री का प्रेम पुरुष के प्रेम से बिलकुल पृथक् होता है। घृणा भी एकदम पृथक्...जिसे स्त्री ही समझ सकती है, पुरुष नहीं। दोनों के घृणा का स्तर और मानक अलग होते हैं, जिसे शब्दों के तराजू पर नहीं तौला जा सकता। पूर्णतः अनुभूति का विषय...'' मानवी ने अपनी पलकें उठाईं।

आनंद कुमार उसे ही देख रहे थे

''ठीक है। हटा देता हूं।''

''धन्यवाद, सर।'' उसका स्वर कातर था।

"आप जा रहे हैं, सर...आपके रहने से मुझे बहुत सहारा था।" न चाहते हुए भी होठों पर आ गई मन की बात को उसने संभाल लिया।

"अब क्या किया जाए, मानवी? जीने के लिए जैसे बहुत सारे समझौते करने पड़ते हैं वैसे ही नौकरी में भी करने पड़ते हैं।"

भोला मेज पर चाय लाकर रख चुका था।

"अरे भाई, कुछ ठंडा ले आए होते।"

आनंदजी ने कहा तो भोला झेंपते हुए बोल पड़ा—

"वो साहब, आपको जाना है तो सुबह ही मना कर दिया था दुकानदार को। लेकर आया था बड़ी वाली बोतल।"

"अच्छा, ठीक किया। सारा सामान पैक हो गया?"

"जी, बस होल्डाल बांधना है।"

"कितने बजे ट्रेन है? जरा काउंटर से पता करना तो?"

"जी, साहब।" कहते हुए भोला चला गया।

मानवी ने आश्चर्य से पूछा—

"आप ट्रेन से जाएंगे? गाड़ी?"

"अब यहां से कार्य-मुक्त हो गया हूं तो ऑफिस की गाड़ी का कैसे उपयोग करूंगा? फिर अकेले तो जाना है। आराम से सोते हुए रास्ता कट जाएगा।"

"अकेले क्यों, सर? परिवार...? मेरा मतलब आप अन्यथा मत लीजिएगा। बस यूं ही उत्सुकतावश पूछ लिया। बहुत दिनों से जिज्ञासा थी।" मानवी ने अपनी हथेली पर धीरे-से आंचल लपेटते हुए पूछा।

उसका हृदय धड़क रहा था। क्यों? नहीं मालूम।

आनंद कुमार हँस पड़े। उनके चेहरे पर हँसी अच्छी लग रही थी।

"मेरे दो मित्र थे, जब मैं यूनिवर्सिटी में पढ़ रहा था। दोनों मेरे साथ ही कंपटीशन की तैयारी कर रहे थे। दोनों की शादी भी हो चुकी थी। एक की पत्नी गांव में रहती थी और दूसरे मित्र की पत्नी उसी यूनिवर्सिटी में एम.एस-सी. कर रही थी। एक ही वर्ष में दोनों पत्नी-विहीन हो गए।"

"वह कैसे, सर? कोई ट्रेजडी?" मानवी ने आनंद के चेहरे की ओर आश्चर्य से देखते हुए पूछा।

आनंद के होठों पर एक मधुर स्मित छलने लगी थी।

"ट्रेजडी ही समझो इसे। इससे बड़ी ट्रेजडी कुछ हो सकती है क्या कि गांव में रहने वाली पत्नी के पति महोदय की खिन्नता यह थी कि वह विवाह उनकी इच्छा के विपरीत उनके दादाजी ने करवा दिया। पत्नी अशिक्षित और

रूपहीना तो थी ही, साथ में कड़क भी थी। उसे छोड़ मित्र महोदय अपने साथ पढ़ने वाली एक लड़की के साथ सपने सजाने लगे लेकिन आधे-अधूरे सपने लिए इस लड़की के मां-बाप ने उसकी शादी दूसरी जगह कर दी थी। अंतर्जातीय विवाह के पक्ष में नहीं थे वे।''

''च्च...च्च...उन्हें समझौता कर लेना चाहिए अपनी गांववाली पत्नी से।'' मानवी ने सुझाव दिया।

''मैंने भी यही सलाह दी थी, पर उनका कहना था—क्या मैं औरत हूं जो समझौता करूं!''

''क्यों, समझौता केवल औरतों के हिस्से की चीज है?'' मानवी का प्रश्न आनंद कुमार के होठों पर चिपक गया था। वे मुसकरा उठे।

''कहीं मैं आपका समय बरबाद तो नहीं कर रही हूं, सर?'' उसने हड़बड़ाहट में बात बदल दी।

''नहीं, नहीं, अभी मेरे पास तीन घंटे का समय है और काम एक भी नहीं। इसलिए पुराने दिनों को उधेड़ रहा हूं। अन्यथा समय और साथी के अभाव में वे गुंथे-दबे पड़े रहते हैं।''

मानवी को 'साथी' शब्द पर हलकी-सी गुदगुदी हुई हृदय में, पर प्रकट न करते हुए उसने पूछ ही लिया—

''मैं आपके परिवार के बारे में पूछ रही थी।''

''वही तो बता रहा हूं।'' वे परिहास की मुद्रा में थे।

मानवी का मन बुझ-सा गया। क्या इन दोनों मित्रों में से ही कोई एक चरित्र स्वयं आनंद हैं?

''दूसरे मित्र की पत्नी ने भी हम लोगों के साथ ही सिविल सर्विसेज के कंपटीशन का फार्म भरा था। भरा क्या, मित्र ने ही भरवा दिया। संयोग देखो मानवी, उसी वर्ष मेरा और आशिमा का सेलेक्शन हो गया लेकिन मित्र बेचारे सेलेक्ट नहीं हो पाए और इसी कुंठा में वह आज तक कुछ नहीं कर पाए। आशिमा दुखी है, क्योंकि दोनों के बीच कुंठा की एक अदृश्य दीवार खिंचने लगी है। अभी पिछले वर्ष मिली थी एक मीटिंग में। कहने लगी—आनंद, एक विचित्र मन:स्थिति में जीवन चल रहा है। न इस नौकरी को त्याग पाने का कठोर निर्णय ले पा रही हूं और न ही अपने परिवार को बिखरने से बचा पा रही हूं। सोचती हूं, पता नहीं नौकरी छोड़ने के बाद भी दिनेश की कुंठा दूर कर पाऊंगी या नहीं? यह बोझ भी तो कुंठा का ही कारण बनेगा कि मैंने उनकी खातिर नौकरी छोड़ी। फिर मान-मर्यादा, पद-प्रतिष्ठा छोड़ना इतना आसान है क्या सब कुछ? इनसान

हूं, योगी तो नहीं।''

''जी ..'' मानवी किसी बच्चे की तरह ध्यान से आनंद की बातें सुन रही थी।

''उन दोनों का परिणाम मेरे लिए निर्णय न ले पाने का आधार बन गया।''

''क्या मतलब, सर?''

''पुरुष दोनों ही स्थितियों में समझौता नहीं कर पाता—अपने से आगे या अपने से बहुत पीछे।''

''यह तो स्वच्छंद प्रकृति का प्रमाण हुआ। यम-नियम-संयम हमारे धर्म की भूमिकाएं हैं। मन को नियंत्रण में रखना हमारा कर्त्तव्य है। इसके विपरीत आचरण...''

''नो, नो, मैं तुमसे सहमत नहीं हूं। गहराई से महसूस करो तो क्या यह नहीं लगता कि पुरुष मन से ही स्त्री का सह-अस्तित्व यानी समान व्यक्तित्व की चाहत रखता है। यह बात अलग है कि दोनों पलड़े कभी-कभी ही बराबरी पर आकर ठहरते हैं। अधिकतर मामलों में असंतुलन ही दिखाई देता है।''

''जी...मान लेती हूं आपकी बात।'' मानवी ने आनंद के तर्क पर परास्त होते हुए मुसकराकर कहा।

''और आज तक उसी ठहराव की खोज में हूं जो दोनों पलड़ों को एक सही संतुलन पर स्थिर कर सके।''

आनंद ने अपनी स्थिति स्पष्ट की तो मानवी के मन से बोझ हट-सा गया था। पुलक की फुहारों में तन भीगा-भीगा-सा, हलका-हलका-सा बादल बन ऊपर उड़ने लगा था।

''अभी तक आपको सफलता मिल सकी या नहीं, आंशिक भी?'' मानवी ने अपने स्वर को नियंत्रण में रखते हुए पूछा। उसकी आंखों से सपने मौलश्री के फूलों-से झर रहे थे—झर-झर-झर...निःशब्द।

''कुछ...कुछ...''

''जी...'' संकोच से उसने आंखें झुका लीं। लग रहा था यह 'कुछ-कुछ' रास्ते में गड़ा पत्थर का संकेतक है जो गंतव्य की दूरी बताकर पथिक की गति मंद या तीव्र करता है। क्या आनंदजी मुखर नहीं हो सकते? क्यों नहीं कहते कि ठहराव की वह खोज तुम तक आकर ठहर गई है। इतने दिनों से तुम्हें ही तो परख रहा था। अब जाते-जाते अपना निर्णय सुना रहा हूं। बोलो मानवी, स्वीकार है तुम्हें...

''जी?'' एकाएक मानवी के मुंह से निकल गया। वह स्वयं पर भी चौंक

पडी और लज्जित होते हुए अपने स्वीकारात्मक 'जी' का प्रश्नवाचक बना दिया।

"जी?"

"क्या?" प्रश्न का उत्तर प्रश्न। यह क्या? दोनों तरफ भटकाव क्या? शब्दों पर अटकाव क्यों? क्या एक ही मनःस्थिति दोनों तरफ? फिर आनंदजी कुछ बोलते क्यों नहीं? मुझसे अपेक्षा कर रहे हों पहल की, तो भूल जाएं। आज की फिल्मों की नायिका की तरह कूदकर नायक के कंधे पर सवार और 'आई लव यू' का सूत्र-वाक्य दाग सब काम तमाम...नहीं, मानवी अंदर ही अंदर टूट जाएगी, पर इस तरह का प्रदर्शन कर स्वयं को हलका प्रमाणित नहीं करेगी।

"क्या सोचने लगीं, मानवी?" आनंदजी भी मानो बात करने का कोई सूत्र ही ढूंढ़ रहे थे।

"सोचती हूं, अब मुझे चलना चाहिए। आपको भी ट्रेन पकड़नी है " शायद चलने के नाम पर वह वाक्य बाहर आ जाए जो वह सुनना चाहती है।

"एक कप चाय और पी लो...भोला...ओ भोला!"

"जी साहब, ट्रेन राइट समय पर है!"

"ठीक है। एक-एक कप चाय और पिला दो हम लोगों को। मेम साहब को जाना है।"

मानवी ठंडी सांस लेकर चुप हो गई थी। एक अपनापन, एक अपने से बिछुड़ने की कसक की अनुभूति उसके संपूर्ण तन मन मे व्याप रही थी।

"खाना कैसे खाएंगे?" बहुत संभालकर प्रश्न किया मानवी ने।

"कुछ भी। ट्रेन में..." आनंद को अच्छा लगा मानवी का यह पूछना। "लेकिन तुम क्यों चिंतित हो?" उन्होंने उसे ध्यान से देखते हुए पूछ लिया।

वह तनिक संकुचित हो उठी, पर अगले ही पल संभलकर उत्तर दिया—

"मेरे जिले से आप जा रहे हैं। अब कभी आएंगे भी तो मेहमान की तरह। आपके सुख-दुःख का ध्यान रखना हम नागरिकों का कर्त्तव्य है। अतिथि देवोभव। अतिथि हमारे देवता होते हैं। बस इसलिए।"

'हमारे देवता' पर एक अनजाना-सा भावनात्मक दबाव पड़ गया था मानवी द्वारा।

आनंद ने महसूस किया और मुसकरा उठे। आज मानवी से बातें करने मे उन्हे वह दूरी महसूस नहीं हो रही थी जो डी.एम. कार्यालय में बैठने या उस पद के दायित्वों को निभाते समय होती थी। आज उन्हें अपना संपूर्ण व्यक्तित्व अपना-सा और स्वतंत्र लग रहा था।

"और यदि अतिथि का चेहरा कभी विस्मृत हो गया तो? कौन खयाल

रखेगा?"

"ऐसा नहीं होगा, सर। आपने यहां रहते हुए जितना मेरा ध्यान रखा है उसे विस्मृत करना तो जैसे स्वयं को विस्मृत करना है!" मानवी का स्वर आर्द्र था। वह एकटक आनंद के चेहरे की ओर देखते हुए यह बात कर पा रही थी।

"बस, केवल इसी बात के लिए मैं याद रहूंगा?"

उनकी बातों के हलके परिहास में प्रत्यक्ष सत्यांश देख मानवी की सलज्ज पलकें झुक गई थीं। उसे समझ में नहीं आ रहा था कि वह उन्हें क्या जवाब दे?

"साहब, चाय!"

आनंद के चेहरे के परिहास ने तुरंत गंभीरता का आवरण डाल लिया था। परंतु मानवी का सिर थोड़ा-सा अभी तक झुका ही था।

"भोला, जरा मेरे बेडरूम में जो पेंटिंग टंगी थी, उसे ले आना तो।"

"जी, अच्छा।" भोला चला गया था।

"तुम्हें एक छोटा-सा उपहार दे रहा हूं, मानवी। उसे लेने से इनकार मत करना...जानता हूं, बहुत स्वाभिमानी हो तुम। तुम्हारी यह बात मुझे पसंद है। इसके साथ जीवन में कभी समझौता मत करना।"

मानवी की आंखें छलछलाने को हुईं आत्मीयता में पगी बातें सुन। इतने दिनों से सूने पड़े मरुस्थल में वर्षा हुई भी तो पावस के जाते-जाते। फिर न जाने कब तक सावन आए और मरुस्थल भींगे।

"जी साहब, यही न?" भोला लगभग छत्तीस इंच लंबे और चौदह इंच चौड़े एक सुनहरे फ्रेम में जड़ी पेंटिंग उठाए खड़ा था।

"हां, हां, यही!" आनंद ने पेंटिंग को अपने हाथों में पकड़ सोफे पर टिका दिया। मानवी ने उस पर अपनी आंखें टिका दीं। बहुत ही सुंदर पेंटिंग थी। दूर-दूर तक फैले रेगिस्तान पर मानो अभी-अभी एक तेज अंधड़ होकर गुजरा हो—रेत पर अपने कदमों के चिह्न छोड़ता हुआ। रेत की परत-दर-परत, कहीं दूहे, कहीं बिलकुल सुनहरी किरणों में चमकती, सोने-सी। दूर किसी रेत के टीले के पीछे से झांकता सुबह का सूरज और वहां पर अकेला खड़ा खजूर जैसी हरी और नुकीली पत्तियों वाला एक छोटा सा पेड़। किसी गमले में लगाए गए बोनसाई की तरह नन्हा, छतनार-सा। मानवी की आंखें कई बार रेत पर दौड़ीं, फिसलीं और फिर रेत में ही खुदे अक्षरों को पकड़कर सुस्ताने लगीं—"सबमें तुम ही स्वप्नवत्, सौंदर्यवत्।"

"मैं दो महीने पहले जोधपुर गया था तो वहीं से इसे लिया। पोस्टर था। यहां लाकर फ्रेम करवाया। एकाएक नहीं दे रहा। पोस्टरों में से छांटते समय

तुम्हारा ध्यान था...तुम्हारी सुरुचि और तुम्हारे संघर्ष का''

''जी, मैं कुछ कह नहीं पा रही हूं। अत्यंत भावुक क्षणों में शब्द भी साथ छोड़ देते हैं। मैं वैसे ही असहाय महसूस कर रही हूं। मुझे और मेरे संघर्ष को आपने महसूस किया, मैं...मैं...'' मानवी अपने को रोक नहीं सकी। भावनाओं की नदी तटबंधों को तोड़ बह चली। शायद इन अनगिनत भावनाओं के रेले में आनदजी से विलगाव की पीड़ा भी थी।

''मानवी, तुम्हें कमजोर नहीं होना है। जिस तरह संघर्ष कर रही हो, वैसे ही करती रहो। एक न एक दिन यह जो हरा है, वही जीवन होगा। नया सूरज होगा और तब वहां से देखने पर यह बीता हुआ रेगिस्तान और भी सुंदर लगेगा।''

''......''

''इसे अपने बेडरूम में टांगना। दिन-भर के उलझाव और भटकाव के बाद इसकी पंक्तियां तुम्हारा साहस बढ़ाती रहेंगी।''

''......'' बिना कुछ बोले मानवी ने अपनी भीगी पलकें उठाकर आनंद को देखा। उसे कुछ भी समझ में नहीं आ रहा था कि वह क्या कहे? आनंदजी एक पहेली की तरह उसके सामने थे...वह स्वयं भी उसी में उलझती जा रही थी। गांठें खुलने की जगह और कसती जा रही थीं।

''देवता नहीं आया है साथ में?'' एकाएक आनंदजी ने मानो उसे वर्तमान मे ला खड़ा किया।

अब बोलना उसकी विवशता थी—

''जी, आज यहां आने से पहले ही से छुट्टी दे दी...ठीक आदमी नहीं है वह।'' न जाने क्यों मानवी कह ही गई।

''मैं समझ गया। तुमने न बताया होता तो भी। खैर, इसे हटा देने के बाद तुम्हे कोई परेशानी तो नहीं होगी? वैसे कोई भी आवश्यकता हो, कुछ सुझाव लेना हो तो मुझे कानपुर में इस नंबर पर फोन कर लेना।'' आनंद कुमार ने अपना कार्ड जिस पर उनका मोबाइल नंबर लिखा था, मानवी को पकड़ा दिया।

''जी, अच्छा।'' उसने कार्ड पर्स में डाल लिया।

''अच्छा तो, अब....यह पेंटिंग कैसे ले जाओगी?'' आनंद के चेहरे पर एक बेचेनी थी।

''......'' एक मासूम भाव पसरा था मानवी के चेहरे पर।

''ऐसा करते हैं, भोला मुझे छोड़ने के बाद यह पेंटिंग तुम्हारे घर पर पहुचाता आएगा।''

''. ....'' मानवी चुप रही। आनंद के निर्णय पर ही स्वयं को छोड़े हुए थी।

"अच्छा, अब तुम जाओ। अंधेरा हो रहा है। अपने निर्णय पर हमेशा भरोसा रखना। कभी कोई समस्या नहीं आएगी।"

"......."

"वैसे कभी कानपुर का प्रोग्राम बने तो मुझसे मिलने में कोई संकोच मत करना।" वे जबरदस्ती मुसकराने का प्रयास कर रहे थे।

"जी...क्या आप मुझसे बात करेंगे?" मानवी ने सकुचाते हुए कहा।

"चलो, तुम कुछ बोलीं तो। यहां का डी.एम. होने के कारण बहुत बार चाहकर भी बातें नहीं कर पाता था। प्रशासन की नौकरी में अपना व्यक्तिगत जीवन कहीं दब-सा जाता है। दूर रहने पर बात करने में कोई परेशानी नहीं। आगे तो समय तय करेगा।" कहते हुए आनंदजी उठ खड़े हुए।

मानवी भी उठ खड़ी हुई। दरवाजे तक पहुंचकर उसने पलटकर अपने दोनों हाथ अभिवादन में जोड़ दिए। आनंदजी ने भावुकता में उसके जुड़े हाथों को अपनी दोनों हथेलियों में भरकर क्षण-भर को दबा लिया—

"बी केयरफुल, ओ.के.!" और उन्होंने अगले ही पल सचेत होकर जल्दी से अपनी हथेलियां खींच लीं।

मानवी हतप्रभ-सी उन्हें देखती रह गई थी। कुछ देर पहले की पहेली उसके सामने सुलझी पड़ी थी। उसके पूरे शरीर में एक नव-स्फूर्ति-सी जाग्रत हो उठी थी। हलके कदमों से वह कमरे से बाहर निकल गई। बाहर बैठे भोला को रिक्शा तय करने का आदेश मिल चुका था। वह जल्दी से जल्दी 'वह जो हरा था' को छू लेना चाह रही थी, पर बार-बार रेत में धंसे पांव जैसे साथ छोड़ रहे थे।

बाईस

"...आजकल मैं 'लज्जा' पढ़ रही हूं।"

"लज्जा पढ़ने की चीज तो नहीं।"

"धत्, सुनिए ना।"

"हां, यह है लज्जा...किताब में लज्जा कहां है?"

"ओफ्, आपको तो हर समय परिहास। मैं एस.टी.डी. कर रही हूं। बिल बढ़ रहा होगा। कोई सरकारी फोन तो है नहीं कि जितना चाहो, बात कर लो।"

"बिल मैं दे दूंगा। बताओ क्या पढ़ा 'लज्जा' में? मैंने बहुत पहले थोड़ा बहुत देखा था उसे।"

"किताबें देखने की नहीं, पढ़ने की चीज होती हैं।"

"लेखिका अच्छी है। अपनी राय बताओ।"

"हिंदुओं के विस्थापन की त्रासद-कथा है।"

"और धार्मिक कट्टरता का दस्तावेज।"

"इसीलिए तो इस पर इतनी पाबंदियां लगीं।"

मानवी आनंद को टेलीफोन कर रही थी। पल-घड़ी-दिन-माह वर्ष बनते जा रहे थे। दो वर्ष से अधिक हो चले थे आनंद के स्थानांतरण को। गहरी उदासी में एक सांस मकरंद-भरी उसके संपूर्ण व्यक्तित्व में नवीन प्राण फूंके हुए थी। रेतीले पथ पर संभल-संभलकर पांव धरती वह उस 'हरे' की ओर बढ़ती जा रही थी। हर पग धरने के संग वह और निकट होता जा रहा था, पर अब भी पहुंच से दूर, काफी दूर। मानो उसे तपते रेत में चलने का अभ्यास करा रहा हो। ठंडक के एहसास की संपूर्णता महसूस कराने के लिए।

इस बीच आनंद दो बार बनारस आए थे। दोनों ही बार उसके आफिस में कुछ देर के लिए मिलने आए थे, पर इतने औपचारिक कि कोई भांप नहीं पाया। टेलीफोन पर हफ्ते-दस दिन में उससे बातें अवश्य करते। मानवी मधुकर के रिहा होने और व्यवस्थित हो जाने तक व्यक्तिगत जीवन के बारे में किसी भी प्रकार के निर्णय न लेने के लिए कटिबद्ध थी। अभी तीन वर्ष शेष थे। आनंद को यह बात उसने टेलीफोन पर बता भी दी थी। आनंद की ओर से उस पर किसी प्रकार

का काई दबाव नहा था। एक बेल दोना के बीच इतराती, मचलती, बढ़ती जा रही थी— पवित्र, नैसर्गिक। इश्क का हलकापन नहीं बल्कि देवत्व की गरिमा से भरा-भरा प्रेम, जो आंखों में मय बन नहीं छलकता, बल्कि दो पनीली मोतियों पर स्वप्न-सा टंका, पलकों के पीछे छिपा रहता— सकुचाया-सा, लजाया-सा।

पहली बार आनंद ने मानवी को कानपुर से टेलीफोन किया तो प्रसन्नता के मारे उसका हृदय जोर-जोर से धड़क रहा था, जिसे नियंत्रित करने के लिए वह अनजाने ही फोन पर बहुत तेज स्वर में जवाब देने लगी थी। एकाएक उसे अपनी असभ्यता का बोध हुआ तो झेंपकर उसने अपने स्वर को संयत कर लिया।

"वो तुम्हारे गांव के पासवाला लड़का, क्या नाम था...हरींद्र...कभी कोई बात?"

आनंद ने पूछा तो मानवी हँस पड़ी।

"वो आजकल दिखता ही नहीं। दो बार ऑफिस के बाहर से ही लौट चुका था देवता पांडेय को देखकर। सोच रहा होगा, अभी तक पांडेयजी मुस्तैदी से ड्यूटी कर रहे होंगे। शायद इसीलिए फिर कभी आने की हिम्मत नहीं जुटा सका होगा।"

"कर्फ्यू तो काफी दिन खिंच गया इस बार।"

"जी, कोई कर भी क्या सकता है? हिंदू संगठन और मुस्लिम संगठन आमने-सामने तने खड़े हैं। अब सरकार डी.एम. बदले या एस.पी., क्या अतर पडता है जनता को।"

"तुम्हारे ऊपर अंतर पड़ा या नहीं डी.एम. बदल जाने के बाद!" एक शरारत टेलीफोन के तारों में घुस आई थी।

"जी,...ज्ञानवापी के प्रसंग पर प्रशासन चौकन्ना है।" बात बदल दी मानवी ने।

"होना भी चाहिए। अभी एक मंदिर-मस्जिद का मुद्दा सुलझ भी नहीं पाया-तब तक...नहीं होना चाहिए ऐसा।"

"यह सहिष्णुता किसकी ओर से होनी चाहिए?"

"दोनों ओर से।"

"पर क्या आपको नहीं लगता कि जिस इस्लाम में बुत की पूजा का विरोध है, जहां बुत स्थापित हो वहां या उसके आस-पास मस्जिद नहीं बन सकती, या इबादत कुबूल नहीं होती...आदि तमाम तरह की बातें लिखीं हैं, उसी इस्लाम के अनुयायियों ने सभी हिंदू मंदिरों से सटकर ही क्यों मस्जिदें बनाई हैं? विश्वनाथ मंदिर की प्राचीनता का इतिहास तो इससे धूमिल नहीं पड़ जाएगा?"

"एक मानसिकता, एक दुर्दमनीय लोलुपता के चलते कभी किसी शासक ने ऐसा कर दिया होगा। आज सभी लोग लकीर के फकीर हुए हैं।"

"इतना ही नहीं, ये तो बड़े-बड़े प्रसिद्ध मंदिरों की बात है। आप गांवों में, कस्बों में जाइए। हर देवस्थान, चाहे वह पीपल और नीम के पेड़ के नीचे ही क्यों न हो, उसके बगल में एकाध मजार देखने को मिल जाएगी। मेरे गांव के पास ही एक नीम के पेड़ के नीचे बहुत बड़ा शिवलिंग है। लोगों में मान्यता यही है कि यह लिंग वहां गांव से बाहर स्वयं प्रकट हुआ था। कब हुआ, कोई नहीं जानता। मैं भी बचपन से अम्मा को, दादी को वहां पूजा करने जाते देखती थी। इधर दो-तीन वर्ष पहले से देख रही हूं, उसी की बगल में एक मजार उग आई है। दूसरे वर्ग के लोग चादर चढ़ाने, उर्स मनाने इकट्ठा होते हैं। कभी-कभी मुर्गे के पंख भी इधर-उधर उड़ते दिखाई देते हैं। अब आप ही सोचिए, यह तो एक विवाद उत्पन्न करने की ही मानसिकता है न! इस तरह के न जाने कितने उदाहरण कहीं भी आते-जाते दिखाई पड़ जाएंगे। प्रशासन चुप रहता है। शुरू में ही कोई कार्यवाही हो जाए तो भविष्य का एक खूनी फसाद रुक जाए। लेकिन आप लोग भी आंखें मूंदे पड़े रहते हैं।"

"तुम नहीं समझतीं, मानवी, हमारी यानी प्रशासन की भी अपनी विवशताए हैं। इस तरह के विवादों में यदि हम सत्य का भी पक्ष लेते हैं तो हमारे खिलाफ पक्षपात का चार्ज लगा दिया जाएगा। दूसरे पक्ष की जनता धरना, प्रदर्शन करेगी और हमारे स्थानांतरण के लिए भूख-हड़ताल पर बैठ जाएगी। प्रजातंत्र के नाम पर सब कुछ जायज। आप किसी के अधिकार पर प्रहार नहीं कर सकते। क्या किया जाए? हर बुद्धिजीवी बस, चिंतित है, कर कुछ नहीं पाता और जिसके पास चिंतन नहीं है, वह कर सब कुछ जाता है, सोचता कुछ नहीं। देश और समाज पर इसका क्या प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा, इससे उसे कुछ मतलब नहीं।"

आनंद के स्वर में चिंता घुल गई थी।

"अब बहुत हो चुका प्रजातंत्र के नाम पर। कोई संस्कृति और देश के हित की रक्षा के लिए कटिबद्ध कठोर शासक चाहिए—जो इस तरह की ओछी मानसिकता का दमन कर सके। इस तरह के कुचक्र रचने वालों की सुगबुगाहट को कुचल सके।" मानवी ने अपना निर्णय सुनाया।

"तुम तो हिटलरी बातें कर रही हो। तुमसे भी प्रशासन को चौकन्ना रहना चाहिए।"

आनंद हँस पड़े।

"तो रखूं अब?"

"ओ.के., बी केयरफुल।"

मानवी मुसकरा उठी। इसी 'बी केयरफुल' ने किस तरह उसके जीवन मे नए संदर्भों के द्वार खोल दिए। सब कुछ सुनहरी रश्मियों में नहा, सुनहरा हो गया। भावनाएं, मन, भविष्य और वर्तमान—सब कुछ। छोटी-छोटी बातों और घटनाओ को भी वह आनंद के साथ बांटना चाहती। भले ही वे बातें पूजा में चढ़ाए प्रसाद की तरह पूरी की पूरी उसी के साथ रह जातीं, पर देवता को चढ़ा देने का सुख-संतोष उसे एक विचित्र शांति से भर देता। वह जानती थी कि आनंद चाहकर भी इन बातों या घटनाओं के साथ स्वयं को जोड़ नहीं सकते, पर उन्हें सुनाकर तृप्तितोष का लोभ वह संवरण नहीं कर पाती।

"......"

"जानते हैं, एक दिन संयोग से मैं घर पर ही थी। रविवार था। ऊपरवाली आंटी हैं न, वही अग्रवाल आंटी! उनकी बेटी को बेटा, हुआ, बहुत दिनों बाद "

"तो..."

"वही तो बताने जा रही हूं। एकाएक, वो नाजबीबी वगैरह थीं न, आ गई।"

"कौन नाजबीबी?" आनंद समझ नहीं पा रहे थे।

"अरे वही, महताब गुरुजी, जिनका इंटरव्यू मैंने एक बार प्रकाशित किया था।"

"अब, बहुत दिन बीत गए हैं। याद नहीं आ रहा है। क्या हुआ, बताओ।"

"अरे भाई, स्मृति पर दबाव डालिए। एक बार हमने हिंजड़ों के गुरु का इंटरव्यू..." हिंजड़ा शब्द के उच्चारण के साथ मानवी कुछ संकुचित हो उठी। शब्द-बोध और उससे जुड़े हास-व्यंग्य के खुरदुरेपन से। उनके जीवन की ही तरह उपेक्षित और रूखे-सूखे अनगढ़ पत्थर के टुकड़े-सा प्रतीत होता संबोधन—हिंजड़ा। मानवी को इस बात को भी आनंद के साथ बांटना पड़ा—

"बहुत अटपटा लगता है न यह शब्द। किसी के सामने बातचीत में सामान्य रूप से भी कहने में एक दुविधा, एक रुकावट-सी महसूस होती है।"

"उनको कितना कष्ट होता होगा। बदल देना चाहिए यह संबोधन।"

"शब्द तो बहुत हैं, प्रचलित हो गया है यही एक शब्द। मुगलकाल मे बेगमों की सेवा के लिए 'खोजा' के नाम से इनकी सेवाएं ली जाती थीं। विश्व के प्राचीनतम कोश 'अमरकोश' में इनके लिए 'क्लीव' शब्द का प्रयोग हुआ है। परतु ये सब प्रचलन में कम ही हैं।"

"काफी रिसर्च कर लिया है इन पर। वैसे 'इनसाइक्लोपीडिया' ब्रिटेनिका के अनुसार, उभयलिंगी गुणों से युक्त देवियों की आराधना का सर्वप्रथम श्रेय

पूर्ववालों को ही दिया जाता है। स्त्री-पुरुष के लक्षणों वाले व्यक्ति को अंग्रेजी मे 'हरमोफ्रोडाइट्स' कहते हैं। ग्रीस में 'हरमोफ्रोडाइट्स' की मूर्ति स्त्री-पुरुष के प्रेम और सौंदर्य का प्रतीक मानी गई है। वहां की कला और साहित्य में इस देवी का वर्णन बहुत मिलता है। यही कारण है कि आज भी वहां उभयलिंगी गुणो से युक्त प्राणियों को पूज्य माना जाता है।''

''सच! रिसर्च तो आपने भी कम नहीं किया है, सर! और यह कितने आश्चर्य की बात है कि दुनिया के हर भूभाग पर इनके अस्तित्व का वर्णन मिलता है।''

''जी हां। बस आप ही के चदचिह्नों पर चलने का प्रयास कर रहा हू। महाभारत काल में शिखंडी और बृहन्नला के रूप में अर्जुन का विराट के राजमहल मे रहना इस बात का प्रमाण है कि उस काल में भी ये थे और ससम्मान राजदरबार मे प्रवेश पाते थे। मिस्र, बेबीलोन और मोहनजोदड़ो की सभ्यता में भी इनका प्रमाण मिलता है। संस्कृत नाटकों में इनका जिक्र है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र मे कहा गया है कि राजा को हिंजड़ों पर हाथ नहीं उठाना चाहिए। ये सारे प्रमाण ही तो हैं।'' आनंद कुमार टेलीफोन पर बता रहे थे।

''अरे वाह, आपने तो एक नई दृष्टि पैदा कर दी इनके बारे में। अब इस दिशा में एक नया काम आरंभ करूंगी। उनकी अभिशप्त सामाजिक स्थिति पर एक गभीर वैचारिक बहस और पहल की आवश्यकता है।''

''पहले भी कुछ लोगों की दृष्टि इधर गई थी, पर उनकी जिंदगी की ही तरह आधी-अधूरी। कोई सार्थक परिणाम नहीं निकल सका।''

''कारण?''

''ये अपनी निजी जिंदगी में किसी को घुसने की आज्ञा नहीं देते। इनकी भाव-भंगिमा और अश्लील हरकतों से भी लोग कतराते हैं। पुलिस, प्रशासन, सामान्य जनता— सब।''

''परंतु यदि भरपूर प्रयास किया जाए तो इनका समाज के लिए, राष्ट्र के लिए सदुपयोग तो किया जा सकता है। बस, एक प्राकृतिक अभिशाप के अलावा शारीरिक क्षमता या शिक्षित होने पर मानसिक क्षमता में ये किसी से कम नहीं होगे। इनकी कला को परिष्कृत किया जाए, सृजनात्मक कार्यों के साथ जोड़ा जाए तो कैसा रहेगा? मेरा अनुभव जो थोड़ा-बहुत इनके साथ बातचीत का है, लोगों से अलग है।''

''वो कैसे?''

''बहुत संवेदनशील होते हैं ये। हमारे-आपके जैसे ही। इंटरव्यू लेने में जिस

तरह से इनका दूसरा भावुक रूप देखा मैंने, आश्चर्य होता है कि क्या ये वही है जो तालियां पीटते, कमर मटकाते, विचित्र हरकतें करके अपना पेट पालते है?''

''उपेक्षित तो हैं ये।'' आनंद कुमार ने सोचते हुए कहा।

''उपेक्षित अन्य कालों में भी हुए होंगे ये। पर हरमों में या राजदरबार मे जिस तरह इनका उपयोग किया जाता रहा, उसी तरह आज भी किसी अन्य कार्य मे इन्हें लगाया जा सकता है—पुलिस में, सेना में या समाजसेवा में। हमें लगता हे ये जितनी निष्ठा और ईमानदारी से काम करेंगे, उतनी निष्ठा से हमारा काम करना मुश्किल है।''

''हम लोग तो अपने स्वार्थ में उलझ जाते हैं—क्या होगा मेरे बाद पत्नी का? बच्चे कैसे रहेंगे? वगैरह वगैरह।...वैसे कुछेक क्षेत्रों में इनका उपयोग अब शुरू हो चुका है, लेकिन वह भी मात्र एक अस्त्र की तरह। जैसे मुंबई में एक कपनी में बकाया धन की वसूली के लिए इनकी नियुक्ति हुई है और परिणाम यह हुआ है कि जिस ऋण की वसूली वर्षों से नहीं हो पा रही थी, उसे चुटकी बजाकर ये लोग वसूल कर लेते हैं।''

''चुटकी बजाकर नहीं, ताली बजाकर।'' मानवी ने उन्मुक्त हँसी बिखेरी।

''हां, इनके लिए हमारे मुहावरों की आवश्यकता नहीं है। इनकी अपनी भाषा, अपने सिद्धांत हैं...तो मैं कह रहा था कि इन्हें एक अस्त्र की तरह उपयोग किया जा रहा है, अस्तित्व की तरह नहीं। अस्तित्व-बोध होना, उसके प्रति इनमे चेतना आवश्यक है। जैसे मध्यप्रदेश या राजस्थान वगैरह में कुछेक हिंजड़े पार्षद चुने गए हैं, पर वहां भी आज के भ्रष्ट नेताओं को नीचा दिखाने या गंदी राजनीति के खिलाफ अपना आक्रोश प्रकट करने के लिए ही लोगों ने हिंजड़े को चुना है, उसके व्यक्तित्व, निष्ठा या ईमानदारी के कारण नहीं। एक-दो लोगों ने इनके कल्याण की संस्थाएं भी बनाईं, पर वे भी अब अपने-अपने अनेक कारण बता इनसे दूर हो गए हैं।''

''रक्षा और सुरक्षा में इन्हें रख दिया जाए तो भ्रष्टाचार तो खत्म हो ही जाएगा।'' मानवी ने हँसकर कहा।

''तो देवता पांडेय के स्थान पर इनकी नियुक्ति करवा दूं?'' एक उन्मुक्त हँसी फूटी थी आनंद की।

''तुम बता रही थीं अग्रवाल आंटी के नाती होने की बात और उलझ गई इनकी व्युत्पत्ति और समस्या-समाधान में।''

वे हँसे तो मानवी को याद आया।

''हां, तो नाजबीबी आई थी अपने साथियों के संग। अग्रवाल आंटी के यहा

बधाइ गाने...मे बरामदे म बैठा अखबार पढ़ रही थी। एकाएक मेन गेट से ढोलक पीटते, ताली बजाते उनकी पूरी मंडली ही घुस आई। मैं तो एकाएक सहम ही गई। पर नाजबीबी ने मुझे देखते ही पहचान लिया—'आप वही अखबारवाली मेम साहब हैं न? जो मेरी बस्ती में गई थीं।'

"पहचान तो मैं भी गई थी देखते ही पर एक संकोच कि किस तरह इनके साथ अपना परिचय दिखाऊं? आंटी वगैरह क्या सोचेंगी कि मैं इनसे कैसे...देखिए न, आनंद! मनुष्य कैसा स्वार्थी होता है। मेरे अंदर उनसे परिचित होने का भाव अपमान-बोधक लग रहा था और नाजबीबी बिलकुल बेपरवाह। मेरे पास आकर बोली—'हमने अखबार में अपने बारे में, गुरुजी के बारे में वो खबर पढ़ी थी। मल्लू साव की दुकान पर।' "

"ये मल्लू साव कौन?" आनंद ने हस्तक्षेप किया।

"एक चाय दुकानदार। नाजबीबी, वाली गली के नुक्कड़ पर रहता है।"

"अच्छा, अच्छा...तो फिर?" आनंद की उत्सुकता बढ़ गई थी।

मानवी हँसने लगी थी।

"मैंने मल्लू साव का हाल पूछा तो बेचारी नाज उदास हो गई। मेरे ही पास जमीन पर बैठ गई। बताने लगी—'बहनजी बड़ा बुरा जमाना आ गया है। उस दिन गगा नहा, विश्वनाथ बाबा का दर्शन करके मल्लू साव जैसे ही अपनी गुमटी पर बैठे ..दो-तीन ग्राहक भी थे, चाय पीने वाले। अभी सबेरे-सबेरे चाय बनाकर बेचारा छान ही रहा था कि इधर से आ रही एक सफेद कार पर पीछेवाली कार के लोगों ने बगल में आकर गोलियां चलाना शुरू कर दिया। कार में एक आदमी, शायद नेता था, मर गया, एक चाय पीने वाला भी खत्म। मल्लू साव को भी दाहिने सीने पर गोली लगी थी, पर बच गए। अस्पताल में भरती रहे, मेम साहब। एक दिन दो मुस्टंडे मिलने के बहाने आए थे...मल्लू साव ने हमसे बताया...और वो धमकाने लगे कि अगर मुंह खोला तो इस बार बाईं ओर पार हो जाएगी गोली।' "

"पहचान लिया था क्या मल्लू ने हमलावरों को?" आनंद की बातचीत खोज में बदल गई।

"शायद...वही विधायक संत राव का मर्डर हुआ था दो-तीन महीने पहले, उसी समय की बात है। मैं तो सोच ही नहीं पाई कि मल्लू साव की दुकान के पास ही हुआ था।" मानवी ने आनंद को सूचना दी।

"तुम परिचित हो क्या मल्लू से?"

"हां, उसे कैसे भूल सकती हूं?"

"मतलब?" आनंद के प्रश्न में हास्य का पुट था।

"मतलब, कुछ क्षण ऐसे होते हैं जीवन में जो यादगार होते हैं।" मानवी शरारत से मुसकरा उठी।

"अरे भाई, हम भी तो सुनें उस यादगार क्षण के बारे में!"

"नाजबीबी के साथ एक दिन मैंने भी चाय पी थी उसकी दुकान पर। बस.." वह हँस पड़ी।

"बस, और बन गया यादगार क्षण? तब तो एक दिन हमें भी आकर चाय पीनी पड़ेगी उसके यहां।"

"आइए, वैसे कल-परसों में हो सकेगा तो मैं जाऊंगी उसकी दुकान पर।"

"क्यों? कुछ लिखना है क्या? जरा सोच समझकर लिखना। कहीं कोई परेशानी न आए।" आनंद चिंतित स्वर में बोले।

मानवी को अच्छा लगा उनका चिंतित होना।

"अब परेशानियों के डर से लिखना छोड़ने को तो नहीं कहेंगे आप? है न?"

"नहीं, तुम्हें कायर बनाना मेरा उद्देश्य नहीं। आगाह कर रहा हूं। नेताओं के साथ माफिया तंत्र के लोग भी जुड़े रहते हैं। एक अकेली महिला की बोल्डनेस उनके अहं को ठेस पहुंचा सकती है और वे..."

"संघर्षों को चित्रित-भर कर देना मेरे लेखन का उद्देश्य कभी नहीं रहा, आनंद। और व्यक्तिगत रूप से संघर्षों से घबड़ाकर मैं हतोत्साहित तो हुई हूं अवश्य कभी-कभी, परंतु आत्म-समर्पण नहीं किया। नारी को अपने इन्हीं संघर्षों मे से मुक्ति-मार्ग ढूंढ़ना है, आगे बढ़ना है। प्रतिकूल लहरों के साथ यदि वह पुनः अपने पुराने स्थान पर ही पहुंच गई तो सारा श्रम तो व्यर्थ ही जाएगा न?...कही मै भाषण अधिक तो नहीं देने लगी?"

"ना, ना, मैं तुम्हें सुन रहा हूं। अच्छा लग रहा है।"

आनंद के होठों पर पसरी मंद मुसकान को मानवी मन की आंखों से देख रही थी।

"संत राव के हत्यारे पकड़े गए?" आनंद ने पूछा।

"पता नहीं, हत्या के बाद की कार्यवाई न तो प्रेस वाले पता करते है, न उन्हे छापने में कोई रुचि होती है। जबकि एक केस की, वह भी इस तरह के केस के संबंध में पूरी जानकारी जनता को मिलती रहनी चाहिए।" मानवी ने माउथपीस पर अपनी उंगलियां फिराते हुए कहा—

"वैसे मन्नाबाबू की तरफ संदेह की सूई घूम रही है। अभी पिछले चुनाव

म वे चाहते थे कि संत रावजी कुछ पैसे-वैसे लेकर बैठ जाएं, पर वे तैयार नहीं थे।''

''एक अच्छे और बुद्धिजीवी विधायक थे संत राव। उनकी जगह कोई ले नहीं सकेगा। सचमुच, वे मन से जनता और देश के हित में सोचते थे।'' आनंदजी की टिप्पणी सही थी।

''इसीलिए तो कोई अच्छा और शिक्षित व्यक्ति अब यहां की राजनीति मे नहीं आना चाहता। अपराधियों और अशिक्षितों के बीच यही हाल होना है तो ''

''तो क्या? सभी लोग उनके आगे घुटने टेक दें? कुछ न कुछ तो उपाय करना ही होगा। नारी-मुक्ति की ही तरह भ्रष्टाचार से मुक्ति के लिए भी किसी न किसी को संघर्ष करना पड़ेगा। इस क्लीव-संस्कृति को मिटाना पड़ेगा।'' आनंद के स्वर में एक आग्रह था।

''क्लीव-संस्कृति तो बहुत उदात्त संस्कृति समझ में आने लगी है, आनद। कम से कम पीठ-पीछे वार करने की या स्वार्थ-सिद्धि के लिए किसी की लाश पर चढ़कर जाने की मानसिकता तो नहीं उनकी। अब क्लीवों का ही शासन शायद जनता को रास आए। कम से कम उनके पास अपना भविष्य संवारने की लोलुपता, भावी पीढ़ियों के लिए बैंक-बैलेंस बनाने का मोह तो नहीं रहेगा...जानते है, नाजबीबी बता रही थी—हमलावरों को वहां पर उपस्थित कई लोगों ने देखा था, पर पुलिस को बताकर अपनी जान खतरे में डालना किसी ने उचित नहीं समझा। एक डॉक्टर का क्लीनिक तो बिलकुल मल्लू साव की गुमटी से सटा है, पर उस डॉक्टर ने तो एकदम मना कर दिया! कहने लगा, उस समय मैं एक रोगी की जांच कर रहा था और जब तक आवाज सुनकर बाहर आया, तब तक हमलावर भाग गए थे। जब कि जानते हैं, आनंद, नाजबीबी बता रही थी कि उस डॉक्टर की क्लीनिक में रोगी क्या, मक्खी तक नहीं फटकती।''

''दमन, शोषण, भ्रष्टाचार—ये तो हर युग की महत्त्वपूर्ण समस्या रहे है। उसी में कुछ संत, क्रांतिकारी, समाजसुधारक अपने-अपने सत्कार्यों के पुण्य पर अगली कई शताब्दियों तक के लिए अमर हो गए, इसीलिए पीछे पलटकर देखने पर लगता है कि अमुक युग अच्छा था। सद्कर्म-प्रधान था, नैतिक था। क्योंकि इनके विपरीत आचरणवालों को अगली सदियां कंधों पर ढोतीं नहीं। इसलिए इस युग से भी वर्तमान ही इतना आक्रांत हो सकता है, पर भविष्य सार-सार को चुन लेगा।''

''आपको लगता है कि इस युग में भी कोई सारतत्त्व है?''

''बिलकुल! मैं निराशावादी नहीं हूं। तुम्हें क्या लगता है?''

आपके विचारों के ही अनुरूप। वह हँस पड़ी। उस दिन नाजबीबी क आने पर जिन दो बातों ने मुझे प्रभावित किया, उसी को बताने में बातें इतनी लबी खिच गईं।''

''क्या?''

''एक तो आंटी के यहां बधाई गाते उन लोगों ने कोई भद्दा प्रदर्शन— आमतौर मे जेसा वे करने के लिए विख्यात या कुख्यात हैं— नहीं किया। शालीनता के साथ नाच-गाकर जो कुछ आंटी ने दिया, ले लिया।''

''यह तुम्हारे परिचित होने का प्रभाव रहा होगा।'' आनंद ने टिप्पणी की।

''हां, वही मैं करना चाह रही थी कि वे हठ और भोंडा प्रदर्शन इसीलिए करते हैं कि हम उन्हें कभी अपने पास नहीं फटकने देते। एक उपेक्षा और घृणा के साथ हमारे-इनके बीच की दूरी कभी समाप्त करने की कोशिश नहीं की गई। टी वी. पर एकाध सीरियल इनको लेकर बनाए भी गए तो उन्हें एक रहस्यमय और भयानक दुनिया की एक रहस्यमय जाति के रूप में ही प्रस्तुत किया गया! फिल्मो ने भी इनका उपयोग इन्हीं सब स्थितियों में किया या फिर इनके उसी पारंपरिक नाचने-गाने वाले स्वरूप को लेकर। कभी इनके भीतर के इनसान को जाग्रत या प्रदर्शित करने की कोई कोशिश नहीं की गई।''

''और दूसरी बात...?'' आनंद का प्रश्न।

''दूसरी बात तो बहुत ही मार्मिक है! गाने के बीच अपने साथियों को ऊपर ही आंटी की बालकनी में छोड नाजबीबी मेरे पास पुनः आई और मेरे कमरे मे इधर-उधर नजरें दौड़ाने लगी। मैं उस समय अपने लिए चावल-दाल चुनकर खिचड़ी बनाने जा रही थी। पेट भारी-भारी-सा लग रहा था रात से ही, इसलिए कुछ हलका खाना चाह रही थी। मैंने नाजबीबी से पूछा कि उसे क्या चाहिए?''

उसने बहुत व्यग्रता से पूछा—

''मेम साहब कनबासी है क्या आपके पास?''

''कनबासी क्या?'' आनंद ने उत्सुकता से पूछा।

''मैंने भी यही पूछा। उसने झेंपकर कहा—'अरे फोन! मेम साहब, वो आदत पड़ गई है यही सब बोलने की।'

''जरा एक नंबर मिला दोगी, मेम साहब?''

''किसको मिलाना है?'' मेरा प्रश्न नितांत बेवकूफी-भरा था न? पर इसी प्रश्न ने उसके हृदय के तार झिंझोड़ दिए। बोली—'मेरे पापा अभी जिंदा हैं, मेम साहब। कई बार मिलाया, पर भइया उठा लेता है। वह नहीं चाहता कि मैं उन लोगों से कोई संबंध रखूं। इसलिए वह पापा से बात नहीं कराता। कभी वह फोन

काट देता है आवाज [illegible], और कभी मै हा डरकर फोन रख देती हू। आप मिलाएंगी, मेम साहब, तो शायद पापा से मेरी बात हो जाए।'' वह रुआंसी-सी मेरी ओर आशा-भरी आंखों से देख रही थी।

''मैंने उससे फोन नंबर लेकर मिलाया था तो सचमुच एक कड़क आवाज गूंजी थी।

'' '...मेजर साहब बीमार हैं। ऊपर से नीचे नहीं आ सकते। कोई संदेश हो तो दे दें।'

''मैंने कहा—देखिए, मुझे अखबार के लिए उनके कुछ अनुभव पूछने हैं। पूर्व सेनानियों के कुछ विचार...''

''ठहरिए, मैं बात कराता हूं।''

''और तब नाजबीबी की अपने पापा से बात हो पाई। बड़ा ही कारुणिक दृश्य था, आनंद! नाजबीबी रोए जा रही थी और बातें करती जा रही थी...''

''हैलो मानवी, सॉरी, तुम्हारी पूरी बात सुने बिना फोन रख रहा हूं। रात में फिर मिलाऊंगा। शायद कोई इंपॉर्टेंट मेसेज लाया है अर्दली। प्लीज!''

''कोई बात नहीं, आनंद। आप अपना काम देखिए। फिर बात करेंगे। नमस्कार।''

और फोन कट गया था।

अभी बहुत-सी बातें अधूरी थीं बताने को—सोना के बारे में, बूढ़े सोबराती के बारे में और नाजबीबी के पापा के बारे में भी। मानवी बेड पर बैठे-बैठे, दीवार से टेक लगा अधलेटी-सी हो गई। दीवार में मानो कंधे उग आए थे और वह उन पर सिर टिका, आंखें मूंद विचारों में डूब गई थी...नाजबीबी फफककर रो रही थी फोन पर। पापा से बात करते हुए वह भूल गई थी कि कुरसी पर बैठी मानवी बड़े ध्यान से उसकी बातें और मनोभावों को पढ़ने की चेष्टा कर रही थी।

''पापा, भइया नहीं है न आसपास?''

''......''

''आपकी आवाज इतनी कमजोर क्यों है, पापा? ज्यादा तबियत खराब है?''

''......''

''एक मेम साहब हैं, उन्हीं से मिलवाया फोन। कई बार मिलवाया था, पर हिम्मत नहीं पड़ती थी भइया से कहने की कि पापा से बात करा दो।''

''......''

''क्याऽऽ...''

'क्या' के लंबा खिंचने से लगा कि कोई बुरी खबर उधर से नाजबीबी के कानों में घुसी है और वह असंयमित हो रो पड़ी है।

"पापा, यहां हमारी बस्ती में सोबराती की हालत बहुत खराब है...कई वर्षों से। हम लोग बारी-बारी अपनी ड्यूटी लगाते हैं उसकी सेवा में। अब आगे-पीछे कोई नहीं हम लोगों के तो, आपस में नहीं करेंगे तो कौन करेगा? पापा, मैं नहीं समझ पा रही हूं कि क्या करूं? मैं आपके साथ अलग क्वार्टर लेकर रहूंगी। आपकी सेवा करूंगी। पापा, आ जाइए मेरे साथ। आपको उस बस्ती में नहीं रखूंगी, पापा।"

"आप बस मुझे बहला रहे हैं, पापा। भाभी-भइया का स्वभाव मुझे नहीं मालूम क्या? मम्मी के साथ किस तरह का व्यवहार था, मम्मी हमें बताती थी। अब आपको बिस्तर पर ही वे क्या टट्टी-पेशाब करवाएंगे, पापा? आप अपने को और मुझे भी मत छलिए, पापा।"

"......"

"दीदी कभी नहीं आईं?"

"......"

"इतनी बड़ी घर-गृहस्थीवाली हो गईं कि कुछ दिन आकर आपके पास रह नहीं सकतीं?"

"......"

"मैं भइया से बात करूंगी, पापा। आप मेरे पास आकर रहिए। मैं आपको भी मम्मी की तरह नहीं खोना चाहती, पापा।"

वह फूट-फूटकर रो रही थी। उधर से शायद सांत्वना दी जा रही थी।

फोन रख नाजबीबी मानवी की ओर पलटी थी तो आंखों के आंसुओं से काजल और कुमकुम की बिंदी लिप-पुंछकर गालों तक आ गई थी। नाक से पानी गिर रहा था, जिसे नाजबीबी सुड़ककर अपने आंचल से पोंछ रही थी।

"पापा बहुत बीमार हैं, मेम साहब। डॉक्टर जवाब दे चुके हैं। क्या करूं?" उसने अपने आंसुओं की सफाई दी।

"भाई-भाभी ध्यान नहीं देते क्या?" मानवी ने प्रश्न किया।

"अब जिसके पास मां-बाप जब तक होते हैं तब तक वह उनकी कदर नहीं जानता न, मेम साहब। नहीं होने पर शायद समझ में आए। पापा तो बहुत कुछ दबा जाते हैं। मम्मी बताया करती थीं कभी-कभी मुझे।" उसकी आंखों की डबडबाहट में मानवी को अपने अम्मा-बाबूजी का प्रतिबिंब दिखाई देने लगा था...

"मनु, देख तेरे बाबूजी को क्या हुआ है? कब से बेहोश हैं।" अम्मा

दरवाजे के बाहर जीप स उतरते ही बिलखकर मानवी से लिपट गई था। मानवी भी बेहाल-सी दरवाजे पर खड़ी उनकी प्रतीक्षा कर रही थी। कुछ देर पहले ही भइया का टेलीफोन आया था--

"बाबूजी ट्राली से गिर गए हैं। चोट लग गई है। मैं जीप से वीरेंद्र चाचा के साथ बनारस भेज रहा हूं। जरा बी.एच.यू. में एडमिट करवाने के बाद मुझे टेलीफोन कर देना। मैं शाम तक मिलने की कोशिश करूंगा। एक जरूरी मुकदमे की आज अंतिम बहस है। मेरे न जाने पर क्लाइंट केस हार जाएंगे।"

"पर बाबूजी को चोट कैसे लग गई? कहां गए थे?" मानवी घबहराहट और अनिष्ट की आशंका से कांप उठी। बाबूजी के अभाव की कल्पना भी उसे सहन नहीं थी।

"कहा न? ट्राली से गिर गए हैं। ट्राली पर तो गेहूं की डांठ लदी थी। सारे मजदूर कटनी कर अपनी लवनी लेकर चले गए थे। ट्रैक्टर की ट्राली पर सारा डाठ लदवाकर उसी के ऊपर बैठे वे घर आ रहे थे। पुलिया के पास एक बडा-सा गड्ढा था। अंधेरे में दिखाई न देने से ड्राइवर ने स्पीड कम न की होगी और झटका लगने से बाबूजी लुढककर नीचे आ गए होंगे। मेरा अनुमान यही है।"

"क्या आप नहीं थे वहां? कम से कम कटाई के समय तो आपको वहा..." मानवी स्वयं को रोक नहीं पाई।

"इस बुढापे में राम-राम करना चाहिए पर उन्हें तो इतनी माया धरे है। अब मै भी क्या करूं? यहां प्रैक्टिस है, बच्चों की परीक्षाएं हैं। कहां-कहां देखूं अकेले? एक घंटे में पहुंच रहे होंगे लोग। जैसा होगा, फोन जरूर कर देना।"

मानवी ने बिना कुछ कहे ही फोन काट दिया था। उसे भइया के तर्क और अपनी विवशता पर क्षोभ हो आया था। पागलों की तरह कभी वह बाहर गेट तक जाती और फिर अंदर आकर चीजों को उलटने-पुलटने लगती— निरुद्देश्य, बौखलाई-सी। अलमारी में पांच सौ रुपये ही थे। फातिमा से फोन पर सारी स्थिति बता दी थी।

"तू चिंता मत कर। मैं कुछ रुपये लेकर बी.एच.यू. पहुंच रही हूं। आगे व्यवस्था होती रहेगी।"

"क्या करूं, फातिमा? किसी प्राइवेट क्लीनिक में भर्ती कराऊं?" वह घबड़ाई हुई थी।

"नहीं, मैं तो कहूंगी, बी.एच.यू. ही ठीक है। न जाने कहां चोट है। हर फील्ड के विशेषज्ञ वहां मिल जाते हैं।" फातिमा ने सलाह दी थी।

"पर सुना है कि वहां परिचय न हो तो आधे मरीज तो जांच वगैरह की

लबी प्रक्रिया में ही...'' आगे की अशुभ बात होंठों से निकल नहीं सकी।

''नहीं, ऐसा नहीं है। डायग्नोसिस का कोई जवाब नहीं बी.एच.यू. का। फिर किसी न किसी डॉक्टर से परिचय निकाल लेंगे। बस, तू चलने से पहले मुझे फोन कर देना। मैं पहुंच जाऊंगी।'' फातिमा की सांत्वना ने मानवी के रुके आंसुओं का बांध तोड़ दिया। वह फोन पर ही फफक पड़ी—

''मैं बाबूजी को कुछ होता देख नहीं सकती। मैं उनके बिना...''

''कुछ नहीं होगा बाबूजी को। बस, चुप करो। इतनी साहसी होकर भी तुम रो रही हो? दूसरों की समस्या का समाधान ढूंढ़ती हो और अपनी समस्या के सामने घुटने टेक रही हो? कुछ खाया कि नहीं सुबह से?''

''आं, हां...नहीं।'' फातिमा के प्रश्न पर उसे याद आया कि वह गैस पर चावल और सब्जी पकने के लिए रख आई थी। बाथरूम से निकलते ही उसने सब्जी छौंककर दूसरी ओर चावल चढ़ा दिया था, ताकि पूजा करके उठने तक खाना तैयार हो जाए और वह ऑफिस जल्दी आ सके। इसी बीच भइया के टेलीफोन ने उसे इतना अस्त-व्यस्त कर दिया कि उसे ध्यान ही नहीं रहा। वह दौड़कर रसोई में गई थी। चावल के भगोने से धुआं उठ रहा था। सब्जी का पानी जलकर कढ़ाई से चिपक रहा था। उसने हड़बड़ाकर दुपट्टे से पकड़कर चावल का भगोना उतारा था और उसमें एक जग पानी डाल दिया, ताकि नीचे का जला फूल जाए। दाई नाक-भौं सिकोड़ती है जला मांजने में। गैस बुझा उसने पांच सौ रुपये बैग में डाले और अस्त-व्यस्त अवस्था में ही आकर बाहर खड़ी हो गई थी।

''अम्मा, घबड़ाओ नहीं। मैं हूं न?'' कहते हुए मानवी जीप के अंदर झाकने लगी। बाबूजी को पिछली सीट पर लिटाया गया था। उनकी आंखें बंद थीं और माथे पर उन्हीं का सफेद गमछा बंधा था। खून के कुछ धब्बे गमछे के ऊपर तक उभर आए थे। मानवी के पेट में तेज मरोड़-सी उठी थी, जो समूचे पेट को हिलोड़ती हुई-सी सीने पर आकर जमा हो गई।

''चाचा, बाबूजी होश में तो हैं?'' वह बहुत कठिनाई से पूछ पाई।

''नहीं बेटा, जल्दी करो। डॉक्टर ही कुछ बताएंगे।''

मानवी की आंखें भरभरा आईं थीं। जल्दी से अम्मा को संभालकर गाडी में बैठाया था और स्वयं बाबूजी का पैर अपनी गोद में सम्हाल उन्हीं की सीट पर बैठ गई थी। अम्मा बेहाल-सी, सीट पर सिर टेके, आंखें बंद किए दुर्गाजी का कोई मंत्र बुदबुदा रही थीं। आंखों से अनवरत आंसू बह रहे थे। जीप बी.एच.यू. की ओर भागी जा रही थी और मानवी बाबूजी के सीने पर हाथ रख उनकी चलती सास के बारे में रह-रहकर स्वयं को आश्वस्त कर रही थी...

"मेम साहब, आपका बहुत एहसान। आपने मेरे पापा से आज बात करवा दी।" नाजबीबी आंखों से आंसू पोंछते हुए ब्लाउज में खुंसे रुमाल से कुछ मुड़े-तुड़े नोट निकाल रही थी।

"ओफ..." एक झुरझुरी-सी बदन में डाल गई मानवी के। बीते कई-कई दिन किस तरह पल में समा जाते हैं *वर्तमान* के। नाजबीबी की डबडबाई आंखों के आंसू आंचल के कोरों में सूखे भी न होंगे कि मानवी अपने अतीत में एक डुबकी लगा आई थी।

"मेम साहब, ये पैसे..." नाजबीबी हाथ मे रुपये पकड़े कह रही थी।

"क्या? यह क्या?"

"कनबासी का...अरे, फोन करवाया न!" नाजबीबी ने बड़े भोलेपन से अपने शब्दों को सुधारते हुए कहा।

"अरे, तुम पैसा दोगी? कुछ नहीं, कोई पैसा नहीं..." मानवी नाजबीबी के इस *अप्रत्याशित* प्रस्ताव से अचकचा-सी गई थी।

"पर सभी फोनवाले लेते हैं। जो खर्चा आया हो, मेम साहब, बस उतना ही रख लीजिए।" वह अनुनय कर रही थी।

"कोई खर्च नहीं आया। मैं दे दूंगी, जब बिल आएगा तो। अपने लिए फोन करती हूं न मैं, तब कौन देता है?" नाजबीबी को असमंजस से उबारने के लिए वह हँस पड़ी।

"आप हमको बहुत भाती हैं, मेम साहब।" वह मुग्ध भाव से बोल रही थी।

"तो इसी बात पर बैठो, चाय पियो। मैं अभी बनाकर लाती हूं।" मानवी उठने लगी।

"अरे मेम साहब, ऊपर सब कड़-कड़ करने लगेंगे कि मैं कहां चली गई?" उसके स्वर में याचना घुल आई थी। कृतज्ञता के भार से वह और विनम्र हो गई थी।

"जाओ, उन्हें बता आओ कि तुम मेरे पास हो।" मानवी ने सुझाव दिया।

"अच्छा, जाने दीजिए। सब नहीं आने देंगे। अभी सब हल्ला-गुल्ला में हैं, याद ही नहीं होगा कि मैं यहां हूं। चाय पीकर चली जाऊंगी।" वह फर्श पर ही बैठ गई थी।

चाय का प्याला पकड़ते हुए नाजबीबी के हाथ ठिठकते बढ़ रहे थे—एक असमंजस का भाव।

मानवी समझ गई थी।

"कोई बात नहीं। पियो। मेरे यहां और कोई नहीं जो टोका-टाकी करे।" वह हँस पड़ी।

"आप अकेली रहती हैं, मेम साहब? माने कोई घर का आदमी-वादमी " वह विस्फारित आंखों से मानवी को देख रही थी।

"नहीं, कोई आदमी-वादमी नहीं है और! अम्मा-बाबूजी कभी-कभी आ जाते हैं।"

"क्या भाई-वाई नहीं हैं?" उसने अनजाने ही मानवी की दुखती रग पर हाथ रख दिया था।

"हैं, सब हैं! अपने-अपने काम में व्यस्त।" मानवी संक्षिप्त हो उठी।

"शादी भी नहीं हुई है अभी आपकी?"

"अभी तो नहीं।" मानवी के होठों पर एक चंचल मुसकराहट नाच उठी।

नाजबीबी अपने प्रश्नों के विस्तार से कुछ संकुचित हो उठी। विषय-परिवर्तन के लिए उसने चाय का प्याला होठों से लगा लिया और एक गहरी सुड़क के साथ एक घूंट चाय गले के नीचे उतारी। चाय से गीले होठों को जीभ फिराकर साफ किया और गला खंखारकर साफ करने लगी।

मानवी ने ध्यान से उसे देखा था। गले में मंगलसूत्र, कानों में बड़े-बड़े झुमके, बालों को आगे से उभारकर बनाई गई चोटी और चोटी के ऊपरी सिरे पर कपड़े का बना बड़ा-सा नारंगी फूल सेफ्टी पिन से नढ़ दिया गया था। हाथो मे दो मोटे कड़े जामुनी रंग की साड़ी से मेल खा रहे थे। सब कुछ कितना स्त्रियोचित, पर चेहरे पर ताजा बनाई गई दाढ़ी का नीलापन, आवाज और शरीर का बेडौलपन उसे किसी एक तरफ का न करने का हठ-सा किए हुए। कान पर एक अधजली बीड़ी को बुझाकर खोंस लिया गया था।

"बीड़ी भी पीती हो?" मानवी ने असहज सन्नाटे को भंग करने का प्रयास किया।

नाजबीबी चाय का प्याला एक ओर रख हँस पड़ी—एक विवश, फीकी हँसी।

"क्या करें मेम साहब, ग्राहकों के यहां घंटों ठकठेना करने के बाद जब अकेले होते हैं हम तो यह धौंकनी ही साथ देती है।"

मानवी निरुत्तर हो गई थी।

"मेरे पापा बहुत बीमार हैं। भइया-भाभी बहुत ध्यान नहीं देते होंगे। हम उनका स्वभाव जानते हैं—बचपन से।" नाजबीबी घूम-फिरकर अपने पापा की बातें करना चाह रही थी।

''......'' मानवी आंखों से उत्सुकता का भाव प्रकटकर मौन रही।

''क्या हम उन्हें अपने साथ रखें तो कोई कानूनी अड़चन आएगी?'' नाजबीबी पूछ रही थी।

''ऐसा होना तो नहीं चाहिए मेरे विचार से। तुम ही लोग स्वयं को पूरे समाज से काटकर रखते हो। अपने मां-बाप के साथ रहकर अगर पढ़ो-लिखो, आत्मनिर्भर बनो तो शायद यह नरक न भुगतना पड़े।'' मानवी कुछ सोचते हुए बोली।

''पापा को अपमान लगेगा हमारे साथ रहने में। हम हिंजड़ी जो ठहरीं! कोई कुछ कह देगा जो जीते-जी मरन हो जाएगा उनका तो...पर बहुत मन करता है कि उन्हे अपने साथ ही रखूं। मम्मी जब तक थीं तब तक उन्हें दुहांस था। एक- दूसरे से कम से कम अपना दुख-दर्द तो कह लेते रहे होंगे। पर अब कौन है? भइया-भाभी को फुरसत ही नहीं कि दो घड़ी पापा के पास बैठकर हाल ले लें। जब टेलीफोन पर इतना झिनझिनाकर बोलते हैं तो टट्टी-पाखाना क्या कराते होंगे?''

नाजबीबी की आवाज आंसुओं से रुंधकर फुसफुसाहट में बदल गई थी।

मानवी ने सांत्वना-भरी दृष्टि से रोती हुई नाजबीबी को देखा। जरा-सी सहानुभूति मिलते ही इसके आंसू किस तरह पलकों से विद्रोह कर बैठते है। नाजबीबी अपने पिताजी को अच्छी तरह संभाल भी लेगी। हट्टा-कट्टा शरीर है इसका। टट्टी-पेशाब के लिए उठाने-बैठाने में किसी और की मदद नहीं लेनी होगी इसे।

बाबूजी को लेकर वह कितनी परेशान हुई थी! डॉक्टर ने इमरजेंसी मे ले जाकर बाबूजी का आपरेशन किया था। सिर पर चोट से खून जमने और ब्रेन हैमरेज का खतरा बता रहे थे। मानवी ने संकटमोचन बाबा को सवा किलो प्रसाद चढ़ाने की मन्नत मान ली थी। बाबूजी ठीक हो जाएंगे तो विश्वनाथ मंदिर, कालभैरव और मृत्युंजय के मंदिर ले जाएगी उन्हें दर्शन कराने।

आपरेशन के बाद अम्मा ने उससे बीस आने के सिक्के मांगे थे। बेड पर लेटे बाबूजी को सिर से पैर तक ओइंछ कर खूंटे में गठिया लिया था दुर्गाजी के नाम पर। ओइंछते समय स्वयं मानवी भी बुदबुदाती हुई जगदंबा से बाबूजी के स्वथ्य हो जाने की याचना करती रही थी। भय थोड़ा कम हुआ था कि कोई अदरूनी चोट नहीं थी। घाव भरने में दस-पंद्रह दिन लग जाएंगे। डॉक्टर ने खूब तगड़ी एंटीबायटिक और अन्य दवाएं लिख दी थीं ताकि घाव जल्दी सूख जाए। शायद एंटीबायटिक के कारण ही बाबूजी को बार-बार पतली टट्टी हो रही थी। कई बार वह वार्डब्वाय को बुलाकर लाई थी, पर उसकी उपेक्षा से क्षुब्ध होकर

उसने स्वयं बाबूजी को दोनों कांख में हाथ डालकर उन्हें बैठाने की चेष्टा की थी इस चेष्टा में वह हांफ जाती, परंतु अपनी इस परेशानी को वह किसी से बांट नहं सकी थी। अम्मा पॉट लगा-देतीं पर संकोच में बाबूजी का पेट साफ नहीं होता भइया को उसने उसी दिन फोन पर बता दिया था—

"बाबूजी का आपरेशन हो गया है। होश में आ गए हैं।"

"वीरेंद्र चाचा हैं कि चले गए?" भइया ने पूछा था।

"चाचा तो बाबूजी के होश में आते ही चले गए थे। कह रहे थे—'शाम तक आ जाएंगे।' तब तक तुम लोग हो ही।" गांव पर कटाई चल रही थी।" मानवी ने बता दिया।

"देख, ऐसा है, मानवी! इस समय रात हो गई है। सुबह ही बेटू का पेपर है अंग्रेजी का। उसे दिलाकर आ जाऊंगा। मुझे मालूम था, कोई खतरे की बात नहीं। बस, ऊपरी चोट है।"

और भइया दो दिन बाद आए थे। बच्चे वहीं थे। शाम को भाभी ने ही दबे स्वर में कहा—

"चलेंगे नहीं? बच्चे अकेले घबड़ा रहे होंगे।"

"हां...आं, क्यों अम्मा! हम लोग कल-परसों फिर आ जाएंगे। जब तक बाबूजी की पट्टी-वट्टी बदलनी है, डॉक्टर तो किसी को छूने देंगे नहीं। दवा अब आ ही गई है हफ्ते-भर की। कोई दिक्कत तो नहीं होनी चाहिए... वैसे जैसा कहो, वैसा करें"

भइया के प्रस्ताव पर बेड के कोने पर बैठी मानवी के होठों पर एक व्यंग्य-भरी मुसकराहट उभरते-उभरते रह गई थी। उसने चेहरे पर हाथ फिराने के बहाने अपने होठों को गोलाकार बनाकर तर्जनी और अंगूठे के बीच दबा लिया। न जाने क्यों भइया-भाभी के आते ही वह स्वयं को पूरे परिवेश से कटा-कटा-सा अनुभव करती। अम्मा-बाबूजी भी कुछ क्षण के लिए पराए-से लगने लगते, जिन पर वह अनधिकृत अधिकार जमाए-सी लगती—एकदम अकेली, मायूस-सी। ऐसा शायद अत्यधिक भावुकता के कारण होता। अम्मा-बाबूजी के प्यार का बंटवारा उसे सह्य नहीं होता और वह भीड़ में भी अकेली हो जाती।

"......" अम्मा गुमसुम-सी भइया की बातें सुन नीचे फर्श देखने लगी थीं। जबसे बाबूजी को चोट लगी थी तबसे उन्होंने भइया का एक बार भी नाम तक नहीं लिया था। मानवी हठ करके उन्हें कुछ खिला देती तो खा लेतीं, अन्यथा चुपचाप बाबूजी के बेड की रॉड हाथों में पकड़े या तो उन्हें निहारा करतीं या फिर हाथ-पैर सहलाया करतीं।

"हां, बोलो, अम्मा...जैसा तुम कहो ..कहो तो न जाऊं।" भइया अम्मा की ठोढी ऊपर उठाकर दुलराने का प्रयास कर रहे थे। उनके स्वर में चाटुकारिता स्पष्ट थी।

अम्मा उनकी ओर भर आंख देखना भी नहीं चाह रही थीं। उन्होंने धीरे से बेटे का हाथ अपनी ठोढ़ी से हटाया था और बेड के उस पार खिड़की से बाहर देखते हुए बोलीं--

"जाना तो जरूरी है। बच्चे अकेले होंगे। कोई जरूरत होगी तो टेलीफोन कर देगी मनु।"

अम्मा के स्वर की उपेक्षा ताड़ गए थे भइया। उनका चेहरा धूमिल-सा हो उठा, पर अगले ही पल संभालते हुए बोले—

"नहीं, फोन की आवश्यकता नहीं। हम तो स्वयं ही आ रहे हैं कल-परसों...दरअसल अगर हम घर पर नहीं होंगे तो वे सब सुबह देर तक सोते ही रह जाएंगे। फिर खाना-पीना, स्कूल जाना...सबसे बड़ी बात तो आजकल उस मुहल्ले में चोरी वगैरह बहुत हो रही है।"

"......"

अम्मा ने पुनः एक गंभीर दृष्टि उन पर डाली थी और बाबूजी को देखने लगीं थीं। बाबूजी आंखें बंद किए लेटे थे। भइया के एक-दो सवालों का जवाब उन्होंने हां-हूं में दिया था और फिर अपनी कोहनी से आंखों को ढंक चुप हो गए थे। भइया खिसियाए-से अम्मा से बात करने लगे थे।

भाभी के होंठ अप्रियता के भाव से भिंचे थे। अम्मा के बगल में बैठी वे कभी-कभी उड़ती निगाहों से मानवी को देख लेती थीं। सभी लोगों की चुप्पी से वातावरण बोझिल-सा लग रहा था। यह तो अच्छा था कि मानवी ने दौड़-धूप करके प्राइवेट कमरा बुक करवा लिया था, अन्यथा अगल-बगल के रोगी और उनके घरवालों के सामने सब बातें खुल जातीं। वैसे भी आपसी सौहार्द और एक-दूसरे के परिवारिक जीवन में ताक-झांक का अच्छा अवसर रहता है अगल-बगल भर्ती मरीजों के परिवारजनों में। आपरेशन के कुछ घंटों तक प्राइवेट कमरा न मिल पाने के कारण बाबूजी को जनरल वार्ड में ही रखा गया था। फातिमा और मानवी की भागदौड़ देखकर बगलवाली महिला ने पूछ लिया—

"ये दोनों आपकी ही लड़कियां हैं, बहनजी?"

"हूं।" अम्मा ने संक्षिप्त-सा जवाब दे दिया।

"लड़के नहीं हैं आपको?"

"......" अम्मा चुपचाप दूसरी ओर देखने लगी थीं।

पर रहगा तो आधा प्राण यहा पर टगा रहेगा। खाना-पीना सब बंद। यहां भले घिसट-घिसटकर स्टोव पर खाना पकाएंगी, तकलीफ झेलेंगी, पर कह रहा हूं कि घर चली जाओ, पोतियां हैं, हाथ बंटा देंगी काम में...नहीं मानती। बहू का भी जी तो टंगा ही होगा...उसका आदमी है।''

''क्या करूं, बेटी? सब समझती हूं, पर मन नहीं मानता। मां हूं न? नौ महीने गरभ में रखा है।'' उनकी आंखें पुनः भरभरा आई थीं।

''चाचाजी, जल्दी करिए।'' वार्डब्वाय ने बड़ी निर्ममता से उनकी संवेदनाओं की जड़ को हिला दिया था।

रात में बाबूजी को होश आया था, पर नींद की दवा में उनकी जुबान लडखड़ा रही थी। अम्मा ने झपटकर मानवी को जगाया था।

''मनु, देख तो...तेरे बाबूजी क्या कर रहे हैं!'' वह कच्ची नींद मे अचकचाकर जग गई थी। कुछ देर के लिए उसे विस्मृत हो गया कि वह कहा है? दीवारें, खिड़कियां जैसे किसी जादुई महल के रहस्य-से लगने लगे थे, जिसमे वह उन्हें पहचानने का प्रयास कर रही थी। कुछ पल भ्रमित रहने के पश्चात याद कर पाई थी कि वह अस्पताल के कमरे में सोई है। वह लपककर बाबूजी के पास पहुंची थी—

''क्या हुआ बाबूजी? क्या हुआ?''

''ये सब...बहुत...जल रहा है...'' बाबूजी लड़खड़ाते स्वर में उंगली से सिर की ओर इशारा कर रहे थे। अम्मा पास ही खड़ी घबड़ाहट में अपना पेट सहला रही थीं।

''मनु, डॉक्टर से पूछ, क्या हुआ है तेरे बाबूजी को? क्यों अट-पट बोल रहे हैं?'' अम्मा बदहवास-सी मानवी को पकड़कर रो रही थीं।

''घबड़ाओ मत, अम्मा। मैं जा रही हूं।'' उसने कलाई में बंधी घड़ी पर नजर डाली। अभी रात के दस ही बजे थे। वह दौड़ती हुई स्टाफ नर्स के कक्ष मे घुसी थी। रात की ड्यूटी में वही अधेड़ उम्र वाली मोटी नर्स थी, जिससे शाम को बाबूजी को प्राइवेट वार्ड में ले जाने के लिए मदद मांगने पर मानवी से एक झडप हो चुकी थी। एकबारगी कक्ष में उसे देखकर वह ठिठक गई थी। पास मे बैठा जूनियर डॉक्टर उसे ठिठकता देख पूछ बैठा—

''क्या है?''

''जी, वो मेरे पेशेंट को होश तो आ गया है पर सिर में तेज जलन होने की बात वे कह रहे हैं। स्वर लड़खड़ा रहा है।'' मानवी को डॉक्टर का संबल मिला।

''होने का, होने का...कल तक ठीक हो जाएगा।'' नर्स ने बड़ी लापरवाही

से कहा।

"जी, जरा चलकर देख लेते तो बड़ी कृपा होती।"

"सिस्टर, जरा देख लीजिए।" डॉक्टर ने सिस्टर से अनुरोध किया।

"अरे भाई, अभी शाम को तो इंजेक्शन दिया नींद का। अब दूसरा इन्जेक्शन तुरंत तो नहीं दे सकती न?"

"पर कोई पेन-किलर वगैरह देना उचित हो तो..." मानवी अपने क्रोध को पीने का प्रयास कर रही थी।

"अरे भाई, बैंडेज बंधा है न। जलन उसी के कारण हो रहा होगा।" नर्स कुरसी पर पसरकर बैठ गई थी।

"इस समय डाक्टर कौन है ड्यूटी पर? कोई सीनियर डॉक्टर?" मानवी का रुख थोड़ा कठोर हो गया था।

"अपने घर पर होएंगा। सो रहा होगा। क्या काम है?" नर्स ने उसके क्रोध की उपेक्षा करते हुए व्यंग्य से कहा।

"चलिए, मैं देख ले रहा हूं क्या प्रॉब्लम है।" जूनियर डॉक्टर ने स्थिति को बिगड़ने से पहले ही सुधार लिया।

मानवी नर्स को आग्नेय नेत्रों से घूरती हुई डॉक्टर के साथ कमरे की ओर चली गई।

अम्मा-बाबूजी की हथेली अपने हाथों में लिए रगड़ रही थीं। आंखों से बदहवास आंसू झर रहे थे।

बाबूजी बड़बड़ा रहे थे—

"ए सोमनाथ...बोझ...अरे नहीं...वहां मत..." मानवी भी घबड़ा गई।

"डॉक्टर, क्या हो रहा है इन्हें?"

"आप परेशान नहीं होइए। नींद के इंजेक्शन का प्रभाव कम हो गया है इसीलिए...दवाएं कहां है इनकी?" डॉक्टर ने कमरे में दृष्टि घुमाई।

"जी, ये हैं।" मानवी ने दवाओं का पूरा पोलिथीन ही डॉक्टर को थमा दिया।

"भइया, ठीक हो जाएंगे न?" अम्मा रोते हुए पूछ रही थीं।

"हूं, माताजी, आप घबड़ाइए नहीं।" डॉक्टर दवाओं में कुछ ढूंढ़ते हुए बोला।

"मिली?" मानवी अधीर हो रही थी।

"लगता है एक ही थी। इसमें तो नहीं है। मैं लिख रहा हूं, आप उसे तुरंत मंगवा लीजिए। एक घंटे बाद लगा दूंगा तो रात-भर सोएंगे। अभी कल तक इस

तरह की परेशानी रहेगी। तब तक आप लोग संभालिए। कहीं हाथ इधर-उधर न झटकें।'' कहकर डॉक्टर एक सादे कागज पर दवा का नाम लिखकर, मानवी को पकड़ा बाहर चला गया था।

''अम्मा, तुम तब तक बाबूजी को संभाल लोगी?''

''हां। तुम जाओ बेटा, जल्दी से दवा ले आओ।''

''देखो, कहीं हाथ झटककर सिर की ओर न ले जाएं। ऐसे, बेड पर बैठकर दोनों हाथों से पकड़ लो अम्मा।'' मानवी ने अम्मा को बेड पर बैठकर समझाया। ''मैं अभी गई और तुरंत आई।''

''पर कहां मिलेगी दवा?''

''यहीं अम्मा, अस्पताल के बाहर। बस गेट से बाहर ही तो लंका है '' मानवी ने आश्वस्त किया।

अम्मा को तो उसने आश्वस्त कर दिया था, पर इतनी रात में उसकी स्वय की हिम्मत जवाब दे रही थी। पूरा अस्पताल घूमकर बाहर वाले गेट तक जाना और इतनी रात। हालांकि बनारस एक ऐसा शहर है जो कभी सोता नहीं। जागता रहता है। पर जागने वाले केवल संत जन ही हों, आवश्यक तो नहीं। अभी पिछले दिनों ही इसी बी.एच.यू की एक न्यूज आई थी— बिहार से कोई लड़की अपने पिता के साथ एडमिशन लेने आई थी। इतनी दूरी में फैले इस विश्वविद्यालय के सभी भवनों की डिजायन तो लगभग एक जैसी ही है। सारी सड़कें जैसे एक ही ओर को जाती दिखाई देती हैं। कला संकाय हेड से मिलने के लिए विभाग खोजते-खोजते बाप-बेटी लड़कों के छात्रावास पहुंच गए। उनकी अनभिज्ञता और सीधेपन का लाभ कुछ दादा-टाइप कुख्यात लड़कों ने उठाया और लड़की को हेड से मिला देने का वादा कर पिता को गेट के बाहर खड़ाकर अपने कमरे में ले गए और उसके साथ...उफ...!

एक झुरझुरी-सी बदन में रेंग गई मानवी के। बढ़ते कदम अस्पताल की निचली मंजिल पर स्थित लिफ्ट-द्वार तक आकर ठिठकने लगे। इक्का-दुक्का व्यक्ति बरामदे में घूम रहे थे। अधिकतर लोग फर्श पर चादर बिछाए सो रहे थे। दलाल होंगे सब। मानवी ने सोचा। अस्पताल में घूमने वाले दूर से आए मरीजो को ठगने वाले इन दलालों के बारे में मानवी ने सुन रखा था। कुछ तो अपने नशे के लिए खून तक की दलाली करते हैं। हेरोइनबाज रोगियों के घरवालों से सहानुभूति जताकर, उन्हें कुछ सस्ते में खून देने का वादा कर जीवन-भर के लिए उनको अंधेरे में धकेल देते हैं, क्योंकि उनका संक्रमित खून रोगियों को राहत पहुचाने की जगह जहर भर देता है नसों में। कोई दवा सस्ती दिलाने के नाम पर

ठगी करता है। उसे घृणा-सी हुई—कफन-खसोट ऐसे ही होते रहेंगे।

"कहां जा रही हो, बेटी, इतनी रात में?" अचानक इस प्रश्न से वह सिहर उठी। सामने देखा तो जनरल वार्ड वाले वही चाचाजी थे।

"जी, बाबूजी के लिए एक दवा ले आनी थी। बहुत जलन हो रही है उनके सिर में...शायद दर्द..दवा के प्रभाव में बड़बड़ा रहे हैं।" मानवी ने संक्षेप मे बाबूजी की पूरी स्थिति समझा दी।

"इतनी रात में अकेली? अच्छा दो मिनट यहीं रुको। मैं यह दवा ऊपर पहुचा देता हं। भइया को इसी समय नीमा लगाएंगे डॉक्टर। मुझे पकडना पडेगा...पप्पू को भेज रहा हूं। साथ चला जाएगा।"

एक क्षण ठमककर वे बगल की सीढ़ियों से जल्दी-जल्दी चढ़ गए थे। मानवी उनका आग्रह टाल नहीं सकी। वैसे उसे भी किसी सहारे की इस समय सख्त जरूरत थी। पप्पू छोटा ही सही, साथ रहेगा तो ठीक। एक से भले दो।

"चलिए, बुआ।" पप्पू आकर खड़ा हो गया।

"हां, चलो।" वह पप्पू के साथ निर्भीक होकर बाहर निकल पड़ी। उसे नारी-मुक्ति संगोष्ठी याद आ गई। मिसेज कुमार भाषण दे रही थीं—

'ढहानी होगी पुरुषों द्वारा रची दीवार। मुक्त हवा में सांसें लेने के लिए नारी को अपना कदम आगे बढ़ाना होगा। बैसाखियां ढकेलकर अपने पैरों पर खडा होना होगा..'

मानवी मुसकुरा उठी। कैसी बैसाखियां? पप्पू की? या फिर बाबूजी की? कितने कदम चल सकी वह बिना बैसाखियों के? सोया हुआ या बैठा हुआ व्यक्ति बैसाखियां फेंकने की बात कर सकता है, पर वह भी उसकी मूर्खता ही साबित होगी। बैसाखियां फेंकने से पूर्व उसे पांवों के नीचे की समतल जमीन तलाशनी होगी। कदमों को उस पर साधना होगा और तब स्थिति आ जाएगी बैसाखियों के बिना धीरे-धीरे पांव धर सकने की। तब भी तुरंत दौड़ नहीं लगाई जा सकती—पांव और चोटिल हो सकते हैं...

"माचिस मिलेगी, मेम साहब?" नाजबीबी ने घटनाक्रम को वहीं रोक दिया। मानवी का अवचेतन प्रत्यक्ष में लौट आया।

नाजबीबी चाय पी चुकने के बाद मानवी की चुप्पी से घबड़ा गई थी। वह कान पर खुंसी बीड़ी अपने दाहिने हाथ की तर्जनी और माध्यमा में फंसाए माचिस माग रही थी।

"हां, दे रही हूं, पर तुम्हें बाहर पीनी होगी, क्योंकि मुझे बीड़ी के धुए से खांसी आती है।" मानवी उठकर किचेन में चली गई थी।

"हम अब ऊपर ही जा रहे हैं, मेम साहब। वो सब सोच रहे होंगे कि कहा चले गए? पापा को फोन हो गया...एक दिन अकेली आऊंगी, मेम साहब। एक बात करनी है...एक लड़की है हमारे पास—सोना। उसी के बारे में।"

"अच्छा, ठीक है। आना।" मानवी भी अब चाहती थी कि नाजबीबी चली जाए। आखिर उससे क्या बातें की जा सकती हैं? दोनों के समाज और सोच मे जमीन-आसमान का अंतर है। आखिर किस बिंदु पर एक साथ हों बातें—झूठ कह रही हो मानवी। एक बिंदु पर नाजबीबी तुम्हारे बिलकुल समान है—मां-पिता के लिए संवेदना के स्तर पर। बस, अंतर केवल इतना है कि वह चाहकर भी उनके लिए कुछ नहीं कर पा रही है और तुम्हें उनकी सेवा का अवसर मिल जा रहा है। वह भी अपने भाई के व्यवहार पर क्षुब्ध है और तुम भी!

मानवी अंतस् की बात को झुठला न सकी।

बाबूजी को अस्पताल से डिस्चार्ज करवाकर वह अपने फ्लैट पर ले आई थी। उनके स्वास्थ्य में तेजी से सुधार हो रहा था। सुबह आफिस जाने से पूर्व मानवी उनको दलिया, दूध और दवाएं देकर जाती। खाना दोपहर में अम्मा खिला देती। दोपहर में देने वाली दवाओं पर उसने लाल कलम से गोल निशान बना लिया था, ताकि पढ़ने की झंझट और भ्रम की स्थिति न रहे। शाम को लौटते में बाबूजी के लिए फल ले आना नियमित चर्या-सा बन गया था। अकेले रहते हुए अपने लिए उसने कभी फल नहीं खरीदा, पर अम्मा-बाबूजी के साथ रहकर खाने और खिलाने मे एक अलग संतोष मिलता था। कैसे भार लगने लगते हैं संतानों को अपने ही माता-पिता? उसी बीच उसने अपना एक फीचर तैयार किया था—'आमने-सामने', जिसमें बुजुर्गों और संतानों का साक्षात्कार अलग-अलग लेकर उसने एक साथ प्रस्तुत किया था। अस्सी प्रतिशत बुजुर्ग अकेलेपन के अवसाद से पीड़ित थे। उनकी भावनाओं को समझने वाला कोई नहीं था। संतानें यदि योग्य थीं तो अपना परिवार लेकर दूर रहती थीं और यदि अयोग्य थीं तो बूढ़े माता-पिता की उपेक्षा और विरोध करती थीं। बहुत कम ऐसे बुजुर्ग मिले थे जिन्हें बच्चे अपने साथ बहुत सम्मानपूर्वक रखे हुए थे। सभी की एक ही दुखती रग थी—'हम अब बीता समय है। दिन गिन रहे हैं। हम भी और बच्चे भी। बुढ़ापा बहुत खराब होता है, बेटी।'

मानवी ने फीचर छापने के लिए देते हुए सोचा था—इन्हीं परिस्थितियों मे पश्चिमी देशों में समाप्त हुई होगी परिवार की धारणा। बच्चे पैदा होते ही क्रेश में, मा-बाप वृद्ध-हॉस्टल में। धीरे-धीरे लोप होती संवेदना ने एकदम मशीनी और भौतिकता-भोगी जीवन बना दिया होगा और जब एकदम खाली हो गया उनका मन संवेदनाओं और करुणा से तो एहसास होने लगा होगा कि हमने इस दौड मे

कितना कुछ कीमती गंवा दिया। कंगाल हो गए हम। और फिर कुछ पाने, उसे सजोकर रखने के लिए वे दीन-हीन-से भारत का मुंह देख रहे है। कुछ पाने की उम्मीद में भागकर यहां आ रहे। पर हम क्यों उनके इस रीतेपन की ओर आकृष्ट होकर अपना भरा-पूरा किसी अंधेरी खोह मे लुटाकर हाथ झाड़ने की कोशिश मे है?

मानवी बेचैन हो उठी। अपने भाई पर, देश के तमाम भाइयों पर, जो थोडे-से स्वार्थ में कितना कुछ बहुमूल्य खोते जा रहे हैं। मां-बाप का प्यार, उनके जीवन के अनुभव, जो राह की ठोकरों से सावधान कर सकते थे।

"ये आनंद वही हैं, मनु, जो यहां...?" एकदिन अम्मा ने उसके घर आते ही पूछा।

"क्यों? टेलीफोन आया था क्या?" उलटे उसने भी सवाल कर दिया था। इतनी देर में वह निर्णय ले चुकी थी कि उसे क्या कहना है?

"हां, आया था। मैंने बता दिया कि आज देर तक रुकने की बात कहकर गई है ऑफिस में। शायद कोई काम है।"

"और कुछ?"

"बस, कह रहे थे, आएं तो कह दीजिएगा कि बात कर लें। महत्त्वपूर्ण बात करनी है।" अम्मा उसे ध्यान से देख रही थीं।

वह कुछ नर्वस होने लगी, पर अगले ही पल स्वयं को नियंत्रित करते हुए कहा—

"ठीक है। अभी कुछ देर में कर लूंगी।" वह अपना पर्स रखने के बहाने अलमारी की ओर मुंह करके खड़ी हो गई थी।

"बेटी, एक बात कहनी है...अगर..."

"बस, यही न कि लड़का अच्छा है, हो सके तो..." मानवी ने अम्मा की बात हँसकर लपक ली।

"नहीं बेटा, मैं कह रही थी कि हम लोगों का क्या ठिकाना? कितने दिन तेरी सुरक्षा कर पाएंगे? फिर कितने दिन हम अब तेरे पास रह ही सकते हैं। दो भाई हैं, दोनों का हाल देख ही रही है। मनमोहन ने तेरे लिए लड़का देखा है। परसों आया था तो बता रहा था।"

"भइया ने? अरे, घोर आश्चर्य, अम्मा! उन्हें मेरी भी चिंता होने लगी और वह भी इतने वर्षों बाद? क्या करता है लड़का?" मानवी व्यंग्य से बोली।

"चलो, जब से ही चेतें...पर यदि तुझे ठीक लगे तो कर डाल। वकालत करता है मनमोहन के ही साथ।"

"अम्मा, मेरी इतनी उम्र बीत गई, पर कभी भइया ने सोचा था क्या? आज... आश्चर्य हो रहा है। कुछ बात जरूर होगी।"

"हमेशा शंका से जिंदगी कटेगी? तू अपने ढूंढ़ने तो जाएगी नहीं। बाबूजी को तेरे मधुकर के जेल जाने के बाद से तो कहीं अकेले भेजते भी डर लगता है। न जाने कहां चक्कर आ जाए या ब्लड प्रेशर बढ़ जाए। मधुकर से ज्यादा चिंता अब उन्हें तुम्हारी रहती है।"

"पर क्या भइया ने मेरे बारे में सब कुछ बता दिया है वकील साहब को?"

"हां, कह रहा था, तैयार है वह। पहली पत्नी एकाएक बीमार होकर पिछले साल ही गुजर गई। एक बच्चा है। अच्छी प्रैक्टिस चलती है।" अम्मा का स्वर दबा-सा था।

"एस...ये है उनकी ग्रेटनेस। इससे अधिक मेरी भलाई किसमें हो सकती है? बाई द वे, आप उनसे कह दीजिएगा कि जब तक मधुकर जेल से नहीं छूटकर आ जाता, मेरी आत्मा स्वीकार नहीं करेगी कि मैं अपने बारे में कुछ सोचूं। तुम लोगों को गांव में अकेले छटपटाते देखती हूं तो आत्मा कचोट उठती है। क्या सुख मिला तुम्हें संतानों से? कम से कम मेरे ऊपर विवाह का बंधन नहीं है तो तुम लोगों के पास तो चली आती हूं हफ्ते-दस दिन में। विवाह कर लूं तो पूछती फिरूं उनकी मरजी—'जाऊं कि न जाऊं अपने मां बाप के पास?...यदि आपके पास छुट्टी हो तो चले चलिए...'

अम्मा उसके अभिनय पर हँस पड़ीं।

"अरे पागल, सब ऐसे ही थोड़े होते हैं।"

"सब कुछ-कुछ ऐसे ही होते हैं!" मानवी ने दो-टूक उत्तर दे दिया था।

"लेकिन, मनु..."

"तुम्हें मैं साफ-साफ बता दूं...डी.एम. आनंद कुमार भी बहुत सुलझे व्यक्ति हैं। मेरी तमाम परिस्थितियों से भिज्ञ और कुछ के साक्षी भी, जो तुम्हें भी नहीं पता। शायद आज मेरी तरफ से कोई स्वीकारोक्ति मिल जाए तो वे भी..." मानवी सकुचाकर चुप हो गई।

अम्मा की आंखें खुशी से चमक उठीं—

"क्या बेटी, क्या?"

"पर अम्मा, तुम तो जानती हो, मेरी आत्मा पर कितने गहरे घाव हैं। मेरा छोटा भाई मेरी खातिर जेल में है। मैं कैसे...?" उसकी आंखें भर आईं।

"देख मनु, जो भाग्य में होता है, उससे अधिक न मिलता है और न खोता

है। हमें क्या दुःख नहीं है इस बात का? हमारा बुढ़ापा तो और खराब है। यह उम्र है तेरे बाबूजी की खेतों में बोझ ढोआने की? आज मनमोहन अगर हमारे दुःखों के बारे में चिंतित होता तो क्यों तेरे बाबूजी की यह दुर्दशा होती? इसलिए कम से कम तेरी चिंता से तो मुक्त हो जाते हम। लड़की का जीवन अकेले नहीं कट सकता।''

रात में उसने आनंद कुमार को फोन मिलाया।

''कैसी हो, मानवी?''

''ठीक हूं। आज एम.जे. का मेरा रिजल्ट आ गया। पास हूं अच्छे नंबरों से।'' मानवी ने प्रसन्नता-भरी सूचना दी।

''देखो, मैं कहता था कि हताश नहीं होना चाहिए। जब जागे, तभी सबेरा।''

''पर मै सोई कहां थी! बादल घिरे थे।''

''अब धीरे-धीरे सब छंट जाएंगे। विद्यापीठवाली रिक्ति के लिए आवेदन भेजा है न?''

''जी। अब यह डिग्री भी लगा दूंगी। अगर उसमें हो जाता है तो छोड़ दूंगी अखबार की नौकरी।''

''पर, तुम्हारा लेखन न प्रभावित हो।''

''नहीं। तब स्वतंत्र लेखन करूंगी। वैसे इसमे प्रतिबद्धता थी—लिख जाता था, छप भी जाता था। स्वतंत्र लेखन के साथ दोनों ही समस्याएं आएंगी।''

''पर उसमें सुरक्षित रहोगी। एक निश्चित समय रहेगा आने-जाने का, एक निश्चित उद्देश्य। व्यर्थ की भाग-दौड़ और तनाव से बचोगी।''

''जी, अब मैं भी ऐसा ही सोचने लगी हूं।''

''कबसे?''

''जबसे आईने के सामने खड़ी होकर एक दिन अपने सिर में तीन-चार बाल सफेद देखे।'' मानवी जोर से खिलखिलाकर हँस पड़ी।

''वह तो बस, तुम्हारे अनुभवों के पकने की सूचना है। घबड़ाने की आवश्यकता नहीं है। मैं तुमसे पहले का अनुभवी हूं।'' आनंद का भी ठहाका गूंजा।

''ऑफिस से आई तो अम्मा ने बताया कि...''

''तुमने मुझे बताया नहीं कि इस समय अम्मा-बाबूजी आए हैं?''

''बाबूजी का एक्सीडेंट हो गया था। आपरेशन हुआ। फातिमा ने बहुत साथ दिया।''

''मुझे तुम फातिमा भी नहीं समझ सकीं अब तक?'' उनका स्वर गंभीर

हो गया।

"नहीं, यह बात नहीं थी। दरअसल आपकी प्रशासनिक उलझनों में एक और उलझनपूर्ण बात मैं नहीं डालना चाहती थी। और सच कहूं तो भयभीत भी थी .कहीं आप किसी भी कारणवश न आ पाते तो मन का वह विश्वास...सामने ही क्षत-विक्षत हो जाता और..."

"इतना आधा-अधूरा है तुम्हारा विश्वास? ऐसी स्थिति होती ही तो क्या मै तुमसे बताकर तुम्हें विश्वास दिला पाने की क्षमता भी नहीं रखता? पुरुष केवल शोषक, स्वार्थी या अत्याचारी ही नहीं होता। उसका एक स्वरूप और भी होता है। जब तक उस .दूसरे स्वरूप को नारी अच्छी तरह देखने-परखने की ईमानदार कोशिश नहीं करती, द्वैत बना रहता है, दूरी बनी रहती है।"

"अच्छा, एक चिंता की बात ये है..." मानवी ने कमरे में दृष्टि घुमाकर अम्मा को ढूंढ़ा, पर वे शायद किचेन में थीं—उसे निश्चिंत होकर बात करने का अवसर देते हुए। अम्मा की ओर से निश्चिंत हो मानवी ने पुनः धीमे स्वर में बताना शुरू किया ताकि अम्मा न सुन सकें—

"...पिछले हफ्ते बाबूजी को अस्पताल से घर लिवाकर आई तो अम्मा ने जिद की कि मधुकर को देखने का मन हो रहा है। मैं लिवाकर गई थी। हरींद्र भी उसी जेल है।"

"क्या? हरींद्र? वही जो..." आनंद चौंक उठे थे।

"हां, हां, वही। मधुकर बता रहा था कि किसी नेता के मर्डर में फंसा है। हमे उम्मीद है कि वह मन्नाबाबू का आदमी ही है। कहीं संत राव वाले मर्डर मे वही न रहा हो? क्योंकि यह अफवाह कई महीने तक थी कि संत राव के मर्डर के पीछे मन्नाबाबू का पूरा हाथ है। "मानवी चिंतित-सी बता रही थी।

"यह तो सचमुच चिंता की बात है। कुछ कह रहा था मधुकर?"

"कह रहा था कि अब तुम लोग यहां मिलने मत आया करो। मैं ठीक हू उस दिन दुर्भाग्य से हरींद्र से भी कुछ लोग मिलने आए थे। मुझे देखते ही पहले तो वह झेंपा, फिर धूर्तता-भरी आंखों से घूरकर मुसकराने लगा। अम्मा तब से बहुत चिंतित हैं मधुकर को लेकर। क्या मधुकर का ट्रांसफर दूसरे जेल में आप नही करवा सकते?"

"मुश्किल तो है, पर कोशिश करता हूं। तुम इस आशय का एक आवेदन-पत्र आई.जी. जेल को लिखकर अम्मा के साथ पर्सनली जाकर उनसे मिल लो। सारी स्थिति समझाकर उनसे निवेदन करो ट्रांसफर का। बता दो कि उसे हरींद्र से खतरा है। इधर मैं भी प्रयास करता हूं।"

''ठीक है, आनद। मै बहुत चितित हू। इस समय मुझ...''

''मैं जानता हूं, तुम पूरी बात कभी नहीं कहोगी। मेरे सहारे की आवश्यकता है– यह कहने-भर की भी अधिकार-भावना तुमने अपने अंदर डेवलप नहीं की है। यह तुम्हारा गुण भी है, दुर्गुण भी। ऐनी वे, बी केयरफुल। फोन करती रहना। मै चिंतित रहूंगा। हां, मेरी दो बहनें बनारस जा रही हैं। शायद तुमसे भी मिलेंगी। सूचित इसलिए कर रहा हूं कि परेशान मत होना। उन्हें सब मालूम है। ओ.के, बस, फ्रेंडली ट्रीट करना।''

''जी, पर इस समय?'' वह हड़बड़ा गई थी इस अप्रत्याशित सूचना से।

''क्यों, इस समय क्या हुआ है? अम्मा-बाबूजी से भी मिल लेंगी। उसमे एक मेरी बड़ी दीदी हैं। वह तुमसे बहुत दिनों से मिलना चाह रही हैं। अम्मा से भी कुछ बातें करेंगी।''

''पर आनंद, आपको तो पता ही है कि मैं अभी...यानी मेरा मतलब ''

''कुछ नहीं। अकेले जूझने से कोई पद्मश्री नहीं मिलने जा रही तुम्हे। वैसे भी वे केवल बातें करने जा रही हैं-- तुमसे मिलने। बाकी तो तुम्हारी इच्छा के खिलाफ कुछ नहीं होना है। मैं भी जानता हूं, उन्हें भी समझा दिया है। पर इससे एक निश्चिंतता तुम्हारे परिवार और मेरे परिवार दोनों में आ जाएगी। ऐसी ही तुम्हारी इच्छा होगी तो तीन वर्ष तो पलक झपकते बीत जाएंगे। तुमसे बातें करते, तुम्हारा लेख पढ़ते...क्या लिखा इस बीच?'' आनंद ने उसे सहज करते हुए बात बदल दी।

''एक दिन सारनाथ गई थी। तिब्बती महिलाओं, से, उनकी व्यथा, देश के प्रति उनके दृष्टिकोण पर उनका इंटरव्यू लेना चाह रही थी।''

''मिला?''

''हां, बड़ी मुश्किलों के बाद। पहले रिम्पोछे से परमिशन लेनी पड़ी तब जाकर हॉस्टल के वार्डेन ने ले जाकर महिलाओं से मिलाया।''

''तिब्बती यूनिवर्सिटी गई थीं क्या?''

''हां, क्योंकि वहां से ज्यादा संभावनाएं थीं। एक ही जगह मेरे सारे पात्र मिल गए। वैसे व्यक्तिगत रूप से मैं जिन इक्का-दुक्का तिब्बतियों से मिली, वे तैयार नहीं हुए इंटरव्यू देने को।''

''निर्देश होगा उन्हें या फिर एक भय। कहीं कुछ उलटा न हो जाए।''

''हो सकता है। पर एक बात भारतीय और तिब्बती महिलाओं दोनो में समान मिली मुझे कि एक आज़ाद देश की शोषित, प्रताड़ित नारियां हैं, दूसरी परतंत्रता के कारण शोषित प्रताड़ित हैं, लेकिन स्थिति समान है दोनों की। यहा भी

अस्तित्व म आन से पहले से ही अपने अस्तित्व को बचा पाने के सकट से गुजरती है नारी, वहां भी। फफककर रो पड़ी थी एक तिब्बती लड़की। बोली—'यदि लडका होता है तो वहां पर उसे सेना में भर्ती करने के लिए रख लेते हैं और लडकी होती है तो मार डालते हैं। जो किसी तरह जीवित रह जाती हैं, उनके ऊपर तरह-तरह का अत्याचार होता है।' "

"यह तो बहुत जबरदस्त फीचर बना होगा, मानवी।"

"हां, पर अफसोस होता है कि इन सबसे क्या फायदा? जिनके लिए लिखा जा रहा है, शोषक हों या शोषित, उनकी स्थिति में रंचमात्र भी अंतर आता है क्या? कोई सुधार? जी में आता है, फिर एक बार हो जाना चाहिए प्रलय। ये सारी असभ्यताएं धरती के नीचे दफन हो, आने वाले नए युग के पुरातत्त्व सर्वेक्षण के लिए एक बर्बर सभ्यता के अवशेष बन जाने चाहिए।"

"और हम-तुम प्रेम की भग्न मूर्तियां।" आनंद का ठहाका गूंजा था।

मानवी लजा उठी। एकाएक पूछ लिया—

"आपकी दोनों बहनों की विदाई में एक-एक हैंडलूम की साड़ी दूं? बुरा तो नहीं मानेंगी न?"

"वाह, बड़ी समझदार हो गई हो...ठीक रहेगा। दीदी को तो साड़ी पसद आएगी पर निन्नी को सलवार-सूट का कपड़ा खरीद देना। पर बहुत औपचारिकता मे पड़कर अधिक पैसे-वैसे खर्च करने के चक्कर में मत पड़ना।" आनंद ने हिदायत दी।

"फिर भी मेरे यहां पहली बार आ रही हैं। कुछ तो करना ही होगा। उनसे तो नहीं कह सकती न कि मन लागा मोर फकीरी में।" मानवी भी हँस पडी।

"हमने वैसे उन लोगों से ये तो नहीं कहा। हां, यह जरूर बता दिया है कि एक हठयोगिनी, संन्यासिनी के यहां जा रही हो तुम लोग।"

"धत्...अब रख रही हूं। अम्मा अकेले किचेन में हैं।" मानवी झेंप गई थी।

टेलीफोन रख मानवी बाहर गेट तक चली आई थी। हवा में उड़ते नन्हे मुलायम पंख की तरह उसका मन हलका हो रहा था। कुछ देर तक गेट के पास लगी रातरानी की पत्तियों को सहलाती रही थी वह।

तेईस

नाजबीबी की बस्ती में एकाएक खलबली-सी मच गई थी। सुबह-सुबह अभी वे सभी सोकर ठीक से अपनी दिनचर्या से खाली भी नहीं हुए थे कि एकाएक चार-पाच पुलिसवालों का एक जत्था उनकी बस्ती में आ पहुंचा था और एक-एक घर मे घुसकर तलाशी लेने लगा था।

पहले तो महताब गुरु उखड़े थे—

"ऐ है, कोई खजाना उठा लाए हम सरकार का क्या कि छापा मारने आ गए। चलो हटो, बाबू। अपने धंधे पर जाओ, बेकार में हमारा टैम न बरबाद करो। हमे भी धंधे पर जाना है।"

"ऐ बूढ़ी...अरे, बुढ़ऊ...!" सिपाही अपने संबोधन में ही अटकने-भटकने लगा।

"बूढ़ी बुढ़ऊ होंगे तुम्हारे सुड्डा-सुड्डी। हम महताब गुरुजी हैं। बोलो, क्या बात है?" महताब गुरु ने एक जोर की ताली बजाई और कमर को एक झटका दे गुस्से में पुलिसवालों को घूरने लगे। एक सिपाही उनकी कोठरी में घुसकर चारपाई पर रखे सामान को उलटने-पुलटने लगा था।

"ओए छिबरी, हमसे पूछो! क्या ढूंढ़ रहे हो? ये है संदूक। इसमें बेसरा माता के भंडारा का हिस्सा रखा है। और ये हैं हमारी बेसरा माता। अगले जनम मे तुम भी इनकी पूजा करोगे तब इस तरह से वर्दी की अकड़ भूल जाएगी, बाबू।" महताब गुरु ने चिढ़कर बक्से को सिपाही के सामने पटक दिया।

"ए होश में रहो! ज्यादा बक-बक मत करो। एस.पी. साहब के आदेश से हम लोग आए हैं...तुम लोग यहां लड़के-लड़कियों का गलत धंधा करते हो?"

"धंधा? अरे क्या मजाक करते हो, बाबूजी? हम लोग क्यों करेंगे ऐसा धधा? अल्ला रसूल अगर हमें इसी लायक बनाया होता..."

महताब गुरु की बात अनसुनी कर दोनों सिपाही कोठरी से बाहर निकल चमेली के घर की ओर बढ़ गए।

एकाएक महताब गुरु को सोना का ध्यान आया और एक झुरझुरी-सी पूरे

बदन मे दौड गई थी बूढी टागे भय से धरती के साथ चिपक गइ बड़ी कठिनाई से उसे घसीटते हुए वे नाजबीबी को सावधान करने के लिए उसके घर की ओर चले।

सुबह-सुबह सोना हैंडपाइप के पास खड़ी मुंह धो रही थी। स्कूल की पुरानी वाली ट्यूनिक, जिसे अब छोटी हो जाने के कारण उसने घर में ही पहनना शुरू कर दिया था, को पानी के छींटे से बचाने के लिए उसने चड्डी के ऊपर खोस लिया था। गोरी-गोरी कुछ मांसल जांघें बचपन की चौखट लांघती-सी प्रतीत हो रही थीं। महताब गुरु का मन हो रहा था कि सोना का फ्राक अपने-आप नीचे फिसल जाए और उसकी जांघों को ढंक ले। मुई, ये लड़की कितनी जल्दी बडी हो रही? ग्यारह-बारह साल तो किस तरह उड़कर बीत गए इसको छिपते-छिपाते। पर आज की यह मुसीबत? कहीं पुलिस वालों को शक हो गया तो? उन्होने अपनी लाठी को दो बार तेज-तेज जमीन पर पटका, मानो उसमें लगी मिट्टी को झाड रहे हों, पर उसके पीछे उद्देश्य यही था कि किसी तरह सोना और नाजबीबी उनकी ओर मुड़कर देख लें और वे उन्हें संकेत कर दें। सोना ने सचमुच उनकी मोर मुड़कर देख लिया—

''अरेऽऽ...'' सोना की आधी-अधूरी बात महताब गुरु के पीछे आ रहे दो पुलिसवालों को देख थम गई थी।

छैलू बालटी लिए पानी भरने आ रहा था। अपने सांवले पेट पर नाभि से ऊपर पाजामे का नाड़ा बांधे, कंधे पर गमछा लटकाए शायद वह नहाने की तैयारी मे था। एकाएक सुबह-सुबह अपनी बस्ती में पुलिसवालों को देख शंका में उसकी भौहें फड़कने लगीं। मौके की नजाकत को भांप उसने तुरंत सामान्य बनकर कहा—

''अरे सोना, तू कब उठकर यहां चली आई? मैं तुझे ढूंढ़ रहा था कि मेरी बिटिया कहां चली गई?''

''जी, कक्का...वो हम तो मम्मी के साथ ही...'' सोना हड़बड़ाई-सी छैलू कक्का की इस बात का उत्तर ढूंढ़ रही थी कि वह तो रोज मम्मी के साथ सोती है, फिर कक्का उसे अपने पास क्यों खोज रहे थे? छैलू ने बालटी रखने के बहाने झुककर सबसे छिपा, अपनी एक आंख दबाकर सोना को चुप रहने का संकेत किया था।

''चल, जरा पानी चला तो, बिटिया। मैं नहा लूं तो बालटी भरकर ले चलना।'' सहमी-सी सोना चुपचाप हैंड पाइप चलाने लगी। छैलू वहीं नहाने की मुद्रा में बैठ गया।

"ऐ क्या नाम है तुम्हारा?" दरोगा-सा दिखने वाला व्यक्ति हैंडपाइप के पास आ गया था।

नाजबीबी अपने बाएं हाथ पर पाउडर वाला मंजन लिए दाहिने हाथ की तर्जनी से मलते-मलते खड़ी हो गई। अभी तक वह सारी वस्तुस्थिति से अनभिज्ञ हैंडपाइप के चबूतरे की बारी पर बैठी, सिर झुकाए मंजन कर रही थी। होठों के चारों ओर फैला लाल मंजन का झाग चू रहा था।

"जी मेरा...?" छैलू पूछ रहा था।

"हां, हां..."

"जी, मेरा नाम छैलबिहारी है। यहीं पास में रहता हूं।" छैलू ने हाथ उठाकर अपनी बस्ती से दूर दूसरी बस्ती की ओर संकेत किया।

"ऐ लड़की, चड्ढी उतार।" दरोगा की गुर्राती आवाज और अटपटे आदेश से सहमकर सोना रोने लगी थी।

"साहब, यह मेरी भतीजी है।" छैलू ने बात संभाली।

"और रहती है हिंजड़ा बस्ती में?"

"नाहीं, सरकार। वो सरकारी नल में पानी नहीं आता है न, इसीलिए यहा..."

"स्साला, झूठ बोलता है? तू खुद तो हिंजड़ा है और इसे अपनी भतीजी बना रहा है?" एक जोरदार बूट की ठोकर छैलू की नंगी पीठ पर पड़ी थी और वह तड़प उठा था। उसे पता ही नहीं चला था कि कब सोना के हैंडपंप चलाने से घबड़ाहट में उसका सामने का पाजामा नहाने के नाटक में भीग गया था और झिल्लड़ कपड़े के अंदर से उसके अंग पारदर्शी हो उठे थे।

"बता, कहां से लाया इस लड़की को?" छैलू के बालों को मुट्ठी में पकड़कर एक और ठोकर जमाते हुए दरोगा ने कड़ककर पूछा।

"सरकार, हम क्यों ले आएंगे किसी की लड़की?" कराहते हुए छैलू ने अपना बाल छुड़ाने की चेष्टा की।

"फिर ये लड़की आसमान से टपक पड़ी? बोल...?"

"दोहाई माई-बाप की..." छैलू बालों के खिंचाव से चीख-सा पड़ा।

"मम्मीऽऽ..." सोना इस अप्रत्याशित दृश्य से डरकर, दहाड़ मारकर रो पडी थी और नाजबीबी की कमर पकड़ चिपक गई थी। नाजबीबी स्वयं हतप्रभ-सी यह सब घटते देख रही थी। उसे समझ में नहीं आ रहा था कि वह क्या करे? इतना तो अवश्य स्पष्ट हो गया था कि पुलिस सोना के लिए ही आई है। उसने हथेली का मंजन नीचे गिरा दिया और सोना को एक ओर खड़ी कर, दरोगा की

वर्दी पकड़ छैलू को छुड़ाने लगी--

"अरे, क्यों मार रहे हो इसे? मुझसे पूछो, बाबूजी, क्या बात है?"

"यह लड़की कहां से आई है? कहां से लाए तुम लोग?" दरोगा थोड़ा हांफ रहा था।

पीछे दो सिपाही राइफल की बट जमीन पर टिकाए उस पर अपना हाथ धरे बड़ी लापरवाही से इधर-उधर देख रहे थे। वे शायद पहली ही बार इस बस्ती में आए थे।

"यह मेरी लड़की है। मेरे साथ रहती है।" नाजबीबी का स्वर दृढ़ था।

"अच्छा, तो तुम लोग भी बच्चे पैदा करने लगे?" एक सम्मलित हँसी तीनों सिपाहियों की गूंजी।

"तुम लोगों के बच्चे अब हमीं पैदा कर सकते हैं और पाल सकते हैं।" नाजबीबी क्रोध में शब्दों को चबा रही थी।

"चुप रहो! जितना पूछ रहा हूं उतना ही जवाब दो।" दरोगा तिलमिलाकर गुर्राया।

"बताती हूं...तू सोना, जा कोठरी में तो।" नाजबीबी ने सोना को कोठरी की ओर धकेलते हुए कहा।

"नहीं, लड़की की हमें अभी जांच करनी है...ऐ लड़की, रुको!"

दरोगा की कड़कती आवाज से सोना के उठते पैर धरती से चिपक गए थे। वह फूट-फूटकर रो रही थी। उसे अपनी सू सू दिखाने में शर्म और अपमान महसूस हो रहा था।

"ए मुरत, ए ऐसे सिदाई नहीं टेपेगा। सान्त्रा बिहारी करके ए जो कि ममवी कर खुर चटका।"[1] चमेली और अकरम भी आकर खड़े हो गए थे और पुलिस वालों की ज्यादती देख चमेली ने अपनी सांकेतिक भाषा में नाजबीबी और पास खड़े अकरम को समझाया।

"लो ये कुबाड़ा[2] देखो फिर अपनी टुलनी[3] का देखना।" जरजराकर नाजबीबी ने अपना पेटीकोट साड़ी सहित ऊपर उठा दिया।

अकरम और चमेली एक साथ ताली पीट-पीटकर कमर लचकाने लगे थे।

"ए मुरत, कड़े कर! चिस्सेरेवाल कुछ बड़मा दे पतवाईदास[4]।" महताब गुरु की डांट सुन नाजबीबी, चमेली और अकरम रुक गए थे।

"सरकार, एक मिनट हमारी भी सुन लीजिए। हम बताते हैं। क्यों लड़की

---

1. ये ऐसे नहीं मानेगा। नंगे होकर ताली बजा और नाच।, 2. मांस, 3. थोड़ी बड़ी लड़की, 4. चुप रहो। कुछ रुपये देकर, प्यार से समझाकर चलता करो।

को हलकान कर रहे हो? देखो, कैसे टप-टप आंसू गिर रहे हैं आंखों से।" महताब गुरु ने दरोगा को नरमी से समझाने का प्रयास करते हुए सोना की ओर दयापूर्वक देखा।

सोना नाजबीबी से चिपकी खड़ी थी। छैलू कभी पुलिसवालों को तो कभी सोना को देख रहा था। उसे समझ में नहीं आ रहा था कि उसके इतना सतर्क रहने के बावजूद किसने पुलिसवालों से मुखबिरी कर दी?

"हमें धोखे में डालने की कोशिश कर रहे थे तुम लोग? सरकार ने यह वर्दी बस, ऐसे ही नहीं दे दी है।" दरोगा कड़क मिजाज लग रहा था। ईमानदार भी।

फिर महताब गुरु ने एक कोशिश और की—

"बस सरकार, दो मिनट के लिए आ जाइए हमारी कोठरी में। हम बता रहे हैं इसके बारे में...नाज, सोना को छैलू के साथ छोड़ तू भी आ, नहीं तो सरकार को हमारी बात पर विश्वास नहीं होगा। कसम अल्ला रसूल की जो एक बात भी झूठ बोलूं। बेसरा माता फिर हमें अगले जनम में यही जिस्म दे जो एक भी बात छिपाऊं! बस, दो मिनट के लिए आ जाइए, साहब, हमारी कोठरिया की ओर।" महताब गुरु दोनों हाथ जोड़े गिड़गिड़ा रहे थे।

"तुम लोग यहीं ठहरो। देखूं, ये क्या बता रहे हैं?" दरोगा ने अपने सिपाहियों से वहीं सोना और छैलू के पास खड़े रहने को कहा।

नाजबीबी से छूटते ही सोना छैलू से जाकर चिपक गई थी—

"कक्का, ये लोग क्यों आए हैं?"

"चुप रहो, बिटिया। कोई बात नहीं। हम हैं न?" छैलू उसे झूठा दिलासा दे रहा था, पर अनहोनी की आशंका से उसका मन भी बैठा जा रहा था। दोनो पुलिसवाले यमदूत की तरह उसके सामने खड़े थे, अन्यथा उसने सोच लिया था कि मौका मिलते ही वह सोना को ले जाकर मल्लू साव के यहां छिपा देता और स्वयं कहीं गंगा के उस पार रेती में जा मुंह गड़ाकर पड़ा रहता। पर इस समय भोलेनाथ भी धूनी रमाए अपने में मगन हैं, शायद इसीलिए उसकी मुसीबतें नहीं समझ रहे।

"हे भैरो बाबा...!" छैलू के मुंह से अनजाने ही एक आह-सी निकल पडी।

"क्या गुरु, तुम भी काशी के कोतवाल के भगत हो क्या?" एक सिपाही हँसा था।

छैलू सिटपिटाकर चुप हो गया। दरोगा की ठोकर टीस उठी।

''अच्छा बताओ, कहां से उठा लाए ये लड़की?'' दूसरे ने सवाल किया।

''अरे, पहले यह पूछो कि क्या कर पाते हो?'' पहले सिपाही ने हँसकर कहा।

छैलू क्रोध से तिलमिला उठा। धीमे स्वर में बोल ही पड़ा—

''वही, जो आप अपनी बेटी के साथ करते हैं।''

''स्साले, हमें अपनी तरह ही समझता है।''

''नहीं, साहब, आपकी तरह अपने को समझता हूं। बेटी से भी बढ़कर इसे मानता हूं। कलेजे के टुकड़े की तरह संभालता हूं। इस तरह का आपका सवाल दरोगाजी की मार से ज्यादा दुःख दे रहा था, बस इसलिए जवाब दे दिया। माफ करें, बाबूजी।'' छैलू ने मार के डर से पुनः हाथ जोड़ दिए थे।

''चालू चीज हो, गुरु!''

सिपाही दूर-दूर तक फैले वरुणा के कछार को देखने लगा।

''सड़क से आने-जाने वालों को कभी पता लगता होगा कि इतनी पतली सुरंग की तरह यह गली इतनी दूर जाकर खुलती होगी?'' दूसरे ने खुले मैदान को आखों से नापते हुए कहा—

''अब इस खुले में रात में आप चारपाई डालकर पूरी बारात टिका लीजिए। किसी को पता नहीं चलेगा...जरूरत पड़ी तो टांग-भर पानी में छपाक से कूदे और पार! अब खोजते रहिए शहर में आप।'' उसने शोध करते हुए बताया।

''सच कह रहे हैं आप। कम से कम जाड़े और गरमी-भर तो अच्छा बिजनेस चलता होगा। बरसात में पानी यहां तक पहुंच आता होगा तो मंदी हो जाती हो भले।''

''क्यों बे, इस जमीन पर ऐसे ही कब्जा किए बैठा है या पट्टा करवाए है?'' सिपाही के प्रश्न पर छैलू सिर झुकाए चुपचाप खड़ा रहा।

''स्साला, रास्ता ठीक-ठाक हो तो यहां बढ़िया होटल या फ्लैट बनवाया जा सकता है। कुरसी खूब ऊंची करवाकर नीचे गैरज वगैरह और ऊपर रहने के लिए। बस, पूंजी रहे चौचक तो।''

''बरसात में कहां तक पानी चढ़ता है, जी?'' सिपाही ने छैलू से पुनः पूछा तो इस बार उत्तर देना उसकी विवशता थी, अन्यथा झुंझलाहट में एकाध हाथ पुनः पड जाने का भय था।

''जी साहब, बरसात में तो हम लोगों के घर के अंदर तक हलरने लगता है। चौकी के ऊपर चौकी रखकर उस पर किसी तरह खाना-सोना होता है। कभी-कभी तो छत पर प्लास्टिक तानकर रहना पड़ता है। बड़ा कीच-काच हो जाता

है।'

"हूं...दरोगाजी आ रहे हैं।" सर्वेक्षण का कार्य बीच में ही बाधित हो गया था।

वे कुछ सावधान की मुद्रा में खड़े हो गए।

दरोगा के पीछे-पीछे नाजबीबी अपनी साड़ी सामने हाथ से ऊंचा उठाए दूसरे हाथ से दरोगा को कुछ समझाते हुए चिरौरी कर रही थी। उसके चेहरे पर फेफिया-भाव पसरा था। पीछे-पीछे लाठी टेकते महताब गुरु भी आ रहे थे।

"साहब, बस थोड़े दिनों की मोहलत और दे दीजिए, सरकार! हम खुद ही समझा-बुझाकर पहुंचा आएंगे। हम सच कह रहे हैं।"

छैलू को पास आती नाजबीबी की ये आवाज सुनाई दी तो उसके कान खड़े हो गए। उसने सोना को दोनों हाथों से पकड़ अपने पेट से चिपका लिया।

"देखो, तुम लोगों के खिलाफ कंप्लेन है। मैं तुम्हें इतनी सहूलियत दे रहा हू कि थाने नहीं बुला रहा, कोई कार्रवाई नहीं कर रहा और..." दरोगा अकड़ा।

"जी, माई-बाप! वो तो आपकी बहुत-बहुत मेहरबानी। हम समझ रहे है। बस, इतनी-सी छूट और दे दीजिए, साहब! फूल-सी बच्ची का दिल टूट जाएगा। हम समझा-बुझाकर उसे पहुंचा आएंगे और आपको खबर भी कर देंगे, साहब! भोलेनाथ की कसम।" नाजबीबी अपना गला छूकर सौगंध खा रही थी।

"बस, अब कुछ नहीं सुनना मुझे। कल तक पहुंचा आओ। हमने तुम्हारी सारी बातों पर विश्वास कर लिया, पर तुम लोगों ने अब तक पुलिस को अंधेरे मे रखकर अपराध तो किया है न? इस पर तो तुम सब लोगों के ऊपर केस चल जाना चाहिए। अब बात ऊपर तक पहुंच गई है...हम तुम्हें महीने-पंद्रह दिन तक मौहलत दें तो ऊपरवालों को क्या जवाब दें? हमारी नौकरी चली जाएगी। बहुत कडक अफसर आया है इस बार। जैसा कहा है, वैसा ही करो। पहुंचा आने पर हम तुम्हें बचा लेंगे और कोई केस भी नहीं चलेगा। शिकायत बेबुनियाद हो जाएगी। पर, कल तक का ही समय है। उसके बाद मुझे कार्यवाही करनी ही पड़ेगी। ऐसे तो मैं रिपोर्ट लगा दूंगा कि शिकायत पर पुलिस जांच करने गई पर मौके पर ऐसा कुछ नहीं पाया गया। हां, लड़की को अच्छी तरह समझा देना। कही वही जाकर न भंडा-फोड़ आए?" दरोगा नाजबीबी को समझा रहा था।

गली के मुहाने पर घूंघट काढ़े मलिन बस्ती की औरतें और बच्चे एक-दूसरे पर औंधे-झुकते इस तरफ का नजारा बूझने का प्रयास कर रहे थे। पुलिस का सुबह-सुबह इधर आना कौतूहल के केंद्र में था, जिसने उन्हें दबे पांव पीछे-पीछे गली के इस मोड़ तक आकर ताकने-झांकने को विवश कर दिया था।

"किसे पहुंचा आने की बात दरोगाजी कर रहे हैं?"

धड़कते हृदय में बुलबुले-सा उठा प्रश्न गले में ही अटक गया था छैलू के। दरोगाजी के बूटों की टोकर ताल ठोंककर मूंछों पर ताव दे रही थी और सहमा-सहमा-सा कमजोर प्रश्न गले में दुबक गया था। आंखें फाड़े वह सिपाहियो के साथ गली की ओर जाते दरोगा की पीठ निहारता खड़ा रह गया। चमेली, अकरम और नाजबीबी के साथ वह गली के मोड़ तक भी उन लोगों को विदा करने नहीं जा सका।

दरोगाजी की वापसी देख गली का मुहाना पलकर में साफ हो गया था। उसी तरह जैसे पतली नाली में फंसे कूड़े और पोलिथीन एक बाल्टी पानी के साथ सर्र से बह जाते हैं।

पूरे दिन-भर उनकी बस्ती में मुर्दनी-सी छाई रही। ऐसा लग रहा था जैसे अभी-अभी वे अपने किसी साथी को हमेशा के लिए विदा करके आए हों।

छैलू गमछा लपेटे नाजबीबी की कोठरी के सामने ईंट रखकर बनाए गए चबूतरे पर बैठा कुछ सोचता रहा। ऊमस और गरमी से बदन चिपचिपा रहा था। घमौरियों के दाने तपकर और लाल हो गए थे। महताब गुरु भी अपनी कोठरी मे चौकी पर लेटे छत घूरते रहे थे। चमेली दो मोटी रोटियां सेंक चटनी के साथ खाने के लिए बगल में ढंक आई थी, पर महताब गुरु का खाने का जरा भी मन नहीं हुआ।

दो रोटियां बना वह सोना के लिए भी लेकर पहुंची थी। पता नहीं दुखी नाज ने चूल्हा भी जलाया होगा या नहीं?

सोना गुमसुम-सी चारपाई पर बैठी कभी मम्मी को तो कभी छैलू कक्का को देख रही थी। उसे इतना तो समझ में आ ही गया था कि सुबह की घटना उसी को लेकर हुई है, पर अपनी गलती वह समझ नहीं पा रही थी।

"सोना ने कुछ खाया कि नहीं, छैलू?" चमेली ने चबूतरे पर हाथ से टेककर चढ़ते हुए पूछा।

"नहीं। नाजबीबी कुछ बना रही हैं अब।"

"मैं रोटियां ले आई हूं। सुबह से खाली पेट होगी वह।" चमेली ने आंचल मे छिपाकर चटनीवाली कटोरी के ऊपर रखी रोटियों को नाजबीबी के सामने पडी थाली में रख दिया।

नाजबीबी सिर झुकाए-झुकाए चमेली की सहानुभूति पर सुबक पड़ी। बुदबुदाहट-भरे स्वर में बोली—

चमेली, कौन पूछेगा कल से उसे?...क्या खाया, क्या पिया? इतन नखरे करती है खाने में यहां। वहां कौन सहेगा इसकी?''

''जी कड़ा कर, नाज। उसे समझाना होगा सब कुछ। वह समझ जाएगी। हमारी भी मजबूरी और अपनी भी। नहीं रख सकते हम उसे अपने साथ। भगवान ने ही नहीं बनाया हमें इस लायक, नाज।'' चमेली की आंखें भी नम थीं।

सोना चारपाई से उतरकर उसके पास आ गई। उसका चेहरा भी उतरा हुआ था।

''क्या हुआ है, चम्मो चाची? मम्मी सुबह से ही रो रही है। कुछ बोलती नही। छैलू कक्का भी कुछ नहीं बता रहे।'' वह रुआंसी हो उठी थी।

''कुछ नहीं, बेटा। जब छोटी-सी थी तू, तब तुम्हें नहीं पता था। अब तो तू सब समझती है न? हम हिंजड़ा हैं...और तू एक...'' चमेली को शब्द नहीं सूझ रहे थे।

नाजबीबी ने धीरे से उसका हाथ दबा दिया और सोना को छैलू कक्का को बुला ले आने के बहाने बाहर भेज दिया।

''हिम्मत नहीं पड़ रही है, चमेली, सोना को सच बताने की। क्या करूं?...पता नहीं उसके दिमाग पर क्या असर पड़े जब यह जानेगी कि वह एक पागल औरत के पेट से जन्मी है...और वह मां भी मर चुकी है। बाप का पता नही। हम लोगों ने किस-किस तरह उसे जिलाया है?'' नाजबीबी की आवाज भर्राई थी।

''लेकिन बताना तो पड़ेगा ही, नाज। नहीं तो वह न जाने क्या सोचेगी हम लोगों के बारे में?'' चमेली ने फुसफुसाहट-भरे स्वर में समझाया।

''......''

''महताब गुरु ने क्या कहा?'' चमेली ने नाजबीबी की चुप्पी तोड़ने की कोशिश की।

''वही जो दरोगा ने कहा।'' नाजबीबी ने स्टोव पर चढ़ी बटुली का ढक्कन उतारते हुए कहा।

''क्या कहा उसने?''

''कह रहा था, कल तक नारी उद्धारगृह भेज दो चुपके से। वहां की मालकिन से मिलकर वो सब समझा देंगे।''

''कुछ लिया भी? हम लोग तो नहीं गए कि गुरुजी कहीं बिगड़ न जाएं।'' चमेली की उत्सुकता पेट में नहीं समा रही थी।

''हुंह...'' नाजबीबी ने घृणा से सिर को झटका दिया और कलछुल से दाल

चलाने लगी।

"क्या बना रही हो?...मैं तो चटनी और रोटी इसलिए आई कि सोना अभी तक भूखी है। शायद तुम कुछ न बना रही हो।"

"मन तो सही में नहीं कर रहा था। पर सोचा कि सोना को चने की दाल पसद है। वही चढ़ा दिया बटुली में। चावल बना दूंगी। खा लेगी। फिर पता नही कब उसे खिला पाऊंगी।" नाजबीबी की आंखें पुनः भर आईं।

"कभी-कभी उसे आने तो देंगे सब यहां?" चमेली ने प्रश्न किया।

"पता नहीं। हम लेकर जाएंगे तो दस तरह की लिखा-पढ़ी, थानापुलिस सब करना पड़ेगा। दरोगा कह रहा था कि सोना को सिखाकर वहां छोड़ आओ। आगे हम संभाल लेंगे। बस, तुम लोग कभी वहां मिलने मत जाना।" नाजबीबी सुबक पड़ी।

"हाय, हाय, बीमार-आराम पड़े तो भी नहीं जाएंगे देखने?"

"नहीं, एकदम मना किया है। नहीं तो वहां की मालकिन सोना को नही रखेगी।"

"पर अकेली सोना कैसे..."

"कह रहे थे, वहां इसी तरह की लड़कियां रहती हैं...जिनके मां-बाप नही होते, कोई नहीं होता या फिर घर-परिवार से निकाल दी गई होती हैं। सरकार से पैसा मिलता है उनकी परवरिश का।"

"पढ़ाते भी हैं वहां?" चमेली हैरान थी।

"पता नहीं।" नाजबीबी आंचल से आंसू पोंछ रही थी।

"जब सरकार इतना खर्च कर रही है तब जरूर पढ़ाते भी होंगे।" चमेली ने अपना विश्वास प्रकट किया।

"बक्सा में उसके कपड़े-लत्ते के साथ कॉपी-किताब भी भर दूंगी। पता नही, जाते ही सब खरीदेंगे कि नहीं? कम से कम पढ़ाई का हर्जा तो नहीं होगा।" नाजबीबी का हर वाक्य उसके कलेजे को छेदता हुआ-सा निकल रहा था।

"पर स्कूल तो दूर पड़ेगा यह? कहां है वह घर जहां सोना को छोड़ने जाना है?" चमेली ने उत्सुकता से पूछा।

"यहीं कहीं है...पास ही। महताब गुरु को पता बताया है। उन्हीं को लेकर कल भोर में..." नाजबीबी का कंठ अवरुद्ध हो गया था। ऐसी पीड़ा उसे तब भी नही हुई थी जब उसने अपने मम्मी-पापा का घर छोड़ा था। तब शायद ऐसी पीडा मम्मी को हुई होगी जिसे नाजबीबी आज महसूस कर पा रही थी सोना को छोडने के समय।

घर मे शादी पड़ी थी नदिनी दीदी की उसके बारे म बहुत छिपाकर मौसी के यहां गोद-भराई की रस्म की गई थी ताकि मुहल्ले-टोलेवालों से कोई भनक न लग जाए वर-पक्ष को।

इसके पूर्व कई शादियां कट चुकी थीं। कभी लड़का अभी नहीं चाहता कहकर तो कभी लड़की नौकरीवाली होनी चाहिए जैसे बहाने गढ़कर।

पर नंदरानी लाख छिपाने के बाद भी कारण समझ जाती भी कि उसके शरीर का विज्ञान ही नंदिनी दीदी के विवाह में बाधक बनता है। कभी-कभी अपने ही हाव-भाव या चाल पर वह कुढ़कर रह जाती। ऐसा क्यों हो रहा उम्र के साथ-साथ? वह समझ सकने में असमर्थ थी।

कभी-कभी अपनी इहलीला ही समाप्त कर लेने का मन करता, पर मृत्यु की पीड़ा का भय पांव पीछे लौटा देता। मम्मी-पापा के बिना रह सकने की कल्पना भी नहीं कर सकती थी वह। जब विवाह से एक महीने पूर्व ही लडकेवालों ने साफ-साफ मनाकर दिया तो मम्मी और पापा सिर थामकर बैठ गए थे। नंदन भइया गुस्से में फट पड़े थे—

''लगता है, नंदरानी के कारण घर में किसी की शादी तो नहीं ही हो पाएगी, समाज में भी हम मुंह दिखाने लायक नहीं रहेंगे।''

''अरे, चुप रे, नंदन! नंदरानी सुन लेगी तो उसका मन कितना अधीर होगा। वह अभागिन क्या करे? स्वयं तो नहीं गढ़ा उसने अपना शरीर? मेरी कोख ही ऐसी ऐबही रही तो वो क्या करे?'' मम्मी सिसक पड़ी थीं।

नंदरानी ने सुन लिया था दूसरे कमरे से। अपराधी की तरह सबसे छिपकर छत पर, कोने में जाकर बैठ गई थी। किशोर मन में उथल-पुथल के बीच एक हाहाकार मचा हुआ था। संग की सहेलियों का मजाक छुरे की तरह हृदय पर खच्-खच् घाव कर रहा था—

''क्या नंदरानी, तुम कैसे चलती हो? हम लोगों की तरह चलो।''

''...कहीं हिंजड़े देख लेंगे तो तुम्हें भी वही समझ बैठेंगे।''

''समझ बैठेंगे या फुसलाकर उड़ा ले जाएंगे?''

''फिर बजाती रहना ताली और लचकाती रहना कमर।''

उसकी वास्तविकता से अनभिज्ञ सहेलियां ठिठोली करतीं और वह मन ही मन कुंठा में आकंठ डूब जाती।

एक दिन बगल वाली आंटी के यहां का पता पूछने कुछ हिंजड़े उसके दरवाजे पर भी आ गए थे। वह बाहर तार पर गीले कपड़े सूखने के लिए डाल रही थी। पता बताते समय वे सब उसे बहुत ध्यान से देखते हुए कुछ अपनी भाषा

मे बातें करने लगे थे। वह भयभीत-सी दौड़कर मम्मी के पास चली गई थी।

"मम्मी, बाहर जाओ! देखो, वे क्या पूछ रहे हैं?" वह हांफ रही थी।

"क्या हुआ? तू इतना हांफ क्यों रही है?" मम्मी आंचल से अपना चेहरा पोछती बाहर आ गई थीं। नंदरानी बाहर के कमरे की खिड़की को बंद कर उसकी दरार में से झांकती उनकी बातें सुनने लगी थी।

"ये बिट्टी आपकी ही लड़की थी?"

"हां, क्यों?" मम्मी का स्वर सूखा था। वे पुनः आंचल से पसीना सुखाने लगी थीं। शायद मम्मी घबड़ा भी रही थीं उनके प्रश्न से।

"माता जी, वो कुछ..."

"बस, अब आप लोग जाइए। बगलवालों के यहां बच्चा हुआ है, मेरे यहा नही।" मम्मी जल्दी से अंदर आने के लिए मुड़ी थीं।

"मतवा, वो हमारी बिरादरी की है!"

"हे, ज्यादा बढ़-चढ़ के न बोलो। चलो, भागो यहां से!" मम्मी दहाड उठी थी। ममता के लुटने के विचार मात्र से उनके डर ने अंदर से एक खूंखार आदमखोर सिंह का आकर ग्रहण कर लिया था।

"आप चाहे जितना छिपा लीजिए, एक न एक दिन तो उसे अपनी बिरादरी मे आना ही होगा। वो आपके पास रह ही नहीं पाएगी। हम कोई जोर-जबरदस्ती नही करेंगे, मावा। वो खुद ही चली जाएगी अपनी बिरादरीवालों के संग।" कहते हुए उनकी टोली बगलवाली आंटी के घर की ओर बढ़ गई थी।

मम्मी ठकुआई-सी खड़ी उन्हें जाता देखती रही थीं। आदमखोर न जाने कहां दुबक गया था। ममता अधीर हो फूट पड़ी थी। नंदरानी खिड़की पकड़े-पकडे हिलक-हिलककर रोने लगी थी। मम्मी अंदर आई थीं और उसे अपनी दोनों बाहों मे जकड़कर सीने से लगा लिया था। निःशब्द कुछ देर उसकी रुलाई को अपने सीने में उतारती रहीं और जब भरकर छलकने को हुआ तो होठों को जोर से भीच लिया।

"मैं उन लोगों के साथ कभी नहीं जाऊंगी, मम्मी।" नंदरानी ने अपना आसुओं से तर चेहरा उठाकर मम्मी को देखा। मम्मी के चेहरे पर हताशा और पीडा का सागर लहरा रहा था। आंखें आंसुओं की धार से उस पर वेदना के अक्षर बना-मिटा रहीं थीं।

"मम्मीऽऽ, मुझे मत भेजना इन सब लोगों के साथ। मैं नहीं जाऊंगी।" नदरानी ने मम्मी को अपने दोनों हाथों से झिंझोड़ते हुए गिड़गिड़ाकर कहा।

"कौन तुझे इनके साथ भेजेगा? मैं हूं न अभी जिंदा—तेरी मम्मी...मैं रखूंगी

अपने पास। क्यों कहीं जाएगी तू?'' मम्मी के आर्द्र स्वर में दृढ़ता थी।

पर उस दिन के बाद से वह दृढ़ता विवश-सी होने लगी थी जब नंदिनी दीदी की कई शादियां केवल नंदरानी के कारण कटने लगीं। नंदन भइया के उस दिन के क्रोध और घृणा ने नंदरानी को एक झटके में वही निर्णय लेने को विवश कर दिया था, जिसे सोच-सोचकर उसका हृदय दहल जाता था।

पूरे परिवार के संकटों की गठरी बांध वह बनारसवाली गाड़ी में आकर चुपचाप बैठ गई थी। मम्मी के सीने से चिपक, दुलार में अपना कान सटा हृदय की धक्-धक् सुनना और सुनते-सुनते सो जाना से विलगाव की असह्य पीड़ा से आखों ने बंद होने से इनकार कर दिया था। भोर के अंधेरे में ट्रेन की खिड़की से मुंह सटाए वह लगातार रोती जा रही थी। कभी-कभी मम्मी के सीने की धक्-धक् उसके अपने सीने में उतरती महसूस होती और वह अपने कपड़ोंवाला बैग जोर से भींच लेती।

मम्मी के सिरहाने छोड़े पत्र की लिखावट से मम्मी की धुंधलाई आंखें बार-बार याद आ रही थीं। क्या सोचेंगी मम्मी? नंदरानी घर छोड़कर भाग गई? कैसे किसी को बताएंगी? पर वह करे भी तो क्या? सब की उन्नति में बाधक ही तो थी उनकी नंदरानी। चलते समय अपने दो-तीन सलवार-सूट स्कूलवाले बैग मे भर लिए थे। मम्मी का ब्लाउज भी वहीं कुरसी पर सूख रहा था। बाजार से आने के बाद निकालकर पसीना सुखाने के लिए उन्होंने कुरसी पर फैला दिया था। न जाने क्या सूझा उसे कि ब्लाउज को भी लपेटकर बैग में रख लिया— मम्मी की निशानी रहेगी पास। ट्रेन में याद आया तो भरे मन से उसने बैग खोलकर धीरे से उठाकर उसे नाक से लगा लिया...मम्मी की सुगंध...ओह...अब कितनी दूर हो गई वह मम्मी से...नंदरानी ब्लाउज को अपने गालों से सटाए हुए बिलख पड़ी। आसू एक बार फिर मम्मी के सीने ही सोखने लगे।

ट्रेन चली जा रही थी। सभी भोर की निद्रा का आनंद ले रहे थे। नंदरानी को अपने जीवन के अंधेरे की कोई भोर नहीं दिखाई दे रही थी...

''मम्मी, छैलू कक्का आ गए।'' सोना न जाने कब आकर नाजबीबी के पास बैठ गई थी। उसकी कुहनी के टिहोके से नाजबीबी अतीत की सुरंग से निकलकर बाहर आ गई थी, पर अतीत का कुहरा उसके चेहरे पर छाया हुआ था।

''आ सोना, तू खाना खा ले। सुबह से भूखी है हम लोगों के साथ...छैलू, तू भी...'' नाजबीबी ने सोना की थाली उठाकर उसमें एक किनारे दाल परोसते हुए कहा।

''नहीं, मुझे तो भूख नहीं है, नाजबीबी। फिर कुटैम हो गया है।'' छैलू ने

अपने सिर पर हाथ फेरते हुए कहा। उसका मन उद्विग्न लग रहा था।

"कौन रोज ऑफिस के टाइम पर खाता था जो आज कुटैम हो गया। चल, दो रोटी खा ले।"

चमेली ने मीठी झिड़की दी। चमेली की झिड़की से छैलू की अधीरता का बाध टूट पड़ने के आतुर हो उठा। कहीं सभी लोग उसकी इस दशा को जान न ले, इसलिए वह चारपाई पर घुटनों के बल बैठ खिड़की से बाहर देखने लगा, मानो बाहर कुछ देखना ही उसका उद्देश्य था। गमछे के कोने से मक्खी उडाने के बहाने उसने अपना चेहरा जोर से रगड़ा था। नाजबीबी उसकी दशा समझ रही थी।

बस्ती के बाकी लोग तो घंटे दो घंटे के लिए सोना के साथ मनबहलाव करने के लिए खेलते-खिलाते थे, पर छैलू तो जैसे सोना के बाप की तरह था। स्कूल ले जाने, ले आने की जिम्मेदारी के साथ ही उसकी बीमारी-आरामी, खरीददारी और नाजबीबी के धंधे पर होने या कभी-कभी अपने गिरिया के साथ कहीं देर रात रुकने तक सोना को अपने साथ रखने, खिलाने-पिलाने—सबका उत्तरदायित्व छैलू ही निभाता आ रहा था।

आज सोना को नारी उद्धारगृह में छोड़ आने की सूचना मात्र से वह विकल हो उठा था। कल से क्या होगी उसकी दिनचर्या? सोना के बिना उसे क्या करना होगा?

सब कुछ तो सोना के आसपास ही कालचक्र-सा घूमता रहता था। उसके अपने कौन-से काम थे? सोना के स्कूल चले जाने और आने के बीच का समय वह बीमार सोबराती की सेवा में गुजारता आया था। पर कितनी लंबी बीमारी के बाद पिछले वर्ष सोबराती ने अपने इस हठी तन को त्याग दिया था। उस समय सोना कितना रोई थी! डर के मारे वह कोठरी से बाहर नहीं निकल रही थी। बस, छैलू कक्का की गरदन पकड़े झूलती-सी बैठी रही उसकी गोद में। वह भी तो सोबराती के अंतिम संस्कार में केवल सोना के कारण ही भाग नहीं ले पाया था। अपनी बस्ती के सारे रीति-रिवाजों को ताक पर रखकर वह सोना को गोद में लिए बैठा रहा।

"छैलू, जा तब तक दो सेट फ्रॉक और चड्ढी...अच्छा नहीं...समीज-सलवार ले आ दद्दन की दुकान से।" नाजबीबी को महताब गुरु की वर्जना याद हो आई—

"अब सोना बड़ी हो रही है। टांगें ढंकने वाले कपड़े खरीदना।"

"किस रंग का?" बहुत मुश्किल से छैलू पूछ पाया।

"जो भी उस पर जंचे। तुझे तो सब मालूम है।" नाजबीबी भारी मन से बोली और संदूक से पैसे निकालने मुड़ी।

"रहने दो। इस बार मेरे कपड़े पैसे का कपड़ा पहन ले सोना।" कहता हुआ छैलू झट बाहर निकल गया था।

"कहीं जाना है क्या, 'मम्मी?" सोना ने कौर मुंह में रखते हुए पूछा तो नाजबीबी को लगा जैसे उसकी सांसें फूल रही हों। कंठ के पास न जाने कैसा गुबार-सा जम गया कि उसे बोलने में भी कठिनाई होने लगी। सुबह से ही जिस प्रश्न के उत्तर के लिए वह स्वयं को तैयार नहीं कर पा रही थी, वही एकाएक उसके सामने तनकर खड़ा हो गया था।

"हां बेटी, कल तुझे जाना है। वहां बहुत-सी लड़कियां रहती हैं...तुम्हारी सहेलियां बन जाएंगी। यहां इस बस्ती में तेरे साथ बात करने वाला..."

"मैं कहीं नहीं जाऊंगी, कहीं नहीं जाऊंगी! मुझे नहीं चाहिए सहेलिया।" नाजबीबी की बात को आधे-अधूरे में ही काटती हुई सोना खाना छोड़कर उठ खडी हुई।

"सुनो बेटी, तुम्हारा यहां रहना ठीक नहीं है। पुलिसवाले भी कह रहे थे।" चमेली ने सोना को समझाने का प्रयास किया।

"क्यों?" वह रुआंसी हो उठी पुलिसवालों की बात पर। सुबह की घटना ताजा हो उठी मस्तिष्क में।

"इसलिए कि हम हिंजड़े हैं, बेटी।" चमेली मायूस होकर बोली।

नाजबीबी अपनी संदूक के पास सिर पकड़े बैठी थी।

"तो क्या हुआ?" सोना अपने हठ पर अड़ी थी।

"तू एक इनसान की औलाद है, बेटी। हम तुझे नहीं रख सकते।"

"मम्मी, देखो, चम्मो चाची क्या कह रही हैं? हम नहीं जाएंगे कही।" सोना ने रोते हुए दौड़कर नाजबीबी को पकड़ लिया था।

नाजबीबी उसे सीने से चिपका बिलख पड़ी थी।

"क्या करूं बेटी, हम नहीं चाहते, पर ये दुनियावाले..." दोनों सिसक रही थी।

चमेली भावुक-सी दोनों को देख रही थी।

"वही डक्टरवा अपना मुंह पिटवाया होगा। उसी ने जाकर पुलिस वालों को खबर किया होगा।" चमेली ने गुस्से से हवा में हाथ लहराते हुए कहा।

"आं...क्या?" नाजबीबी सोना को एक तरफ कर चमेली के पास आकर खडी हो गई थी।

''हा, हा, वही दिनेशवा...दस ठो दवाई की शीशी रखकर बड़ा सिविल सर्जन बना है नरकटहवा...वही जाकर बताया होगा पुलिसवालों को। मल्लू साव को गोली लगी थी तो बयान देने में पोंकनी छूट रही थी, छैलुआ को लोगो ने मारा-पीटा तो तुम्हीं बता रही थीं कि वो दवाई नहीं दिया कि माथा फूट गया है मारपीट में, पहले रपट लिखाओ...और हमारी मुसीबत में जाकर कान भर आया पुलिस का।''

चमेली गुस्से में बड़बड़ा रही थी और नाजबीबी का खून खौल रहा था उस डाक्टर पर। सचमुच चमेली की बातों में दम था। डॉक्टर के अलावा अन्य किसी को भी पता नहीं था सोना के बारे में। एक मल्लू साव को उसने बताया था तो जब इतने वर्षों तक वे चूं नहीं किए तो आज पुलिस को क्यों खबर करने जाएगे बेचारे? इतने भले आदमी पर व्यर्थ शंका कैसे करे? सचमुच यह कृत्य उसी डाक्टर का होगा।

उस दिन सोना स्कूल से लौटी थी तो अनमनी-सी लग रही थी। एकाएक पिछवाड़े सू-सू करते समय उसे कुछ लाल-लाल-सा दिखाई दिया। घबड़ाकर वह नाजबीबी के पास आई और रोते हुए बोली थी—

''मम्मी, ये देखो, ये क्या हुआ?''

नाजबीबी किसी बीमारी की आशंका से घबड़ा उठी थी। लपककर छैलू को पुकारा, पर वह समान लेने पांडेयपुर गया था। चमेली को आवाज देती वह लबे-लंबे डग भरती सोना को उठाए डॉक्टर दिनेश की दुकान में पहुंच गई थी।

''डॉक्टर साहब, यह देखिए, मेरी बच्ची को क्या हो गया है। टप्-टप् खून चू रहा है। रुकने का नाम नहीं ले रहा है, भइया। जल्दी दवा दे दीजिए, चाहे जितना पैसा लगे।'' नाजबीबी हांफते हुए सोना को बेंच पर बैठाकर ब्लाउज मे खुसे नोट निकालने लगी थी। वह भूल ही गई थी कि आज तक सोना की वास्तविकता छिपाए रखने के लिए वह बीमारी में उसे छैलू के साथ किसी दूर के डाक्टर के पास ही भेजती थी। पर आज सोना की यह हालत देख वह घबड़ाहट में सब कुछ भूल चुकी थी। किसी अनहोनी की आशंका से उसका हृदय धाड-धाड़ धड़क रहा था। ऐसा तो उसने कभी किसी के साथ होते नहीं देखा।

''कहीं दर्द हो रहा है, बेटा?'' डॉक्टर ने सशंकित भाव से नाजबीबी को देखते हुए सोना से पूछा।

''जी पेट में...थोड़ा-थोड़ा।'' सोना सहमी हुई थी।

''कितने वर्ष की है लड़की?'' डॉक्टर ने भेद-भरे ढंग से जानना चाहा।

नाजबीबी के बदले चमेली ने जवाब दिया था—

''होगी कोई नौ-दस बरस की।''

''बड़ी हो गई है यह। खान-पान से कभी-कभी लड़कियां समय से कुछ पहले भी बड़ी हो जाती हैं। चिंता की बात नहीं है। कोई बीमारी नहीं है यह। मैं पेटदर्द की दवा लिख दे रहा हूं। ज्यादा दर्द होने पर दे देना एक गोली। बाकी सब ठीक हो जाएगा चार-पांच दिन में।'' और डॉक्टर ने उसे विधियां समझा दी थी।

नाजबीबी आश्वस्त हो जब डॉक्टर को फीस पकड़ा रही थी तभी डॉक्टर ने सोना को ध्यान से देखते हुए पूछा था—

''ये लड़की तुम लोगों के साथ ही रहती है?''

''हांऽऽ...क्यों?'' नाजबीबी सतर्क हो उठी। उसे अपनी भूल का भी एहसास हुआ।

''कहां से मिली तुम लोगों को?'' डॉक्टर ने अनावश्यक प्रश्न से नाजबीबी चिढ उठी थी।

''कहीं से मिली कि आसमान से टपकी—सब आपको कैसे बता दूं? आप डॉक्टरी खोले हो कि थाना!'' और नाजबीबी ने सोना को गोद में उठा लिया था।

चलते-चलते चमेली डॉक्टर की ओर अपना हाथ मटकाक हँस पड़ी थी।

''तू यहीं सोना के पास बैठ तो, चमेली। मैं मंजू और शबनम को लेकर उस झोंझड़ से निबट आऊं। मुंहजार की उन हत्यारों को पहचानने में तो नानी मर रहीं थी। तब तो डर के मारे महीनों दुकान बंद किए रहा और छोटी-सी लडकी के पीछे पड़ गया। रुक तो...''

इस समय चमेली ने याद दिलाया तो नाजबीबी का माथा ठनका था। गुस्से मे बड़बड़ाती नाजबीबी तेज कदम बढ़ाती गली की ओर मुड़ गई थी। गुमसुम सोना इन बदली परिस्थितियों में एकाएक सचमुच बड़ी हो गई थी।

एक हफ्ते से अपने आस-पास घट रही बातों में स्वयं को तलाशना शुरू कर दिया था उसने। बचपन छिटककर दूर चौखट पर खड़ा हो गया था—शायद बाहर उन्मुक्त कुलांचे भरने के लिए, जो इन उलझनों में अब कतई संभव नही था।

चौबीस

"मम्मीऽऽ..." सोना की घुटी-घुटी सिसकियों से पूरा बदन हिल रहा था। वह नारी उद्धारगृह के छोटे-से लॉन में बनी पत्थर की बेंच पर बैठी रो रही थी। आज यहा उसका तीसरा दिन था। जबसे आई थी तबसे वह लगातार रो रही थी। पूछने पर उसकी रुलाई और तेज हो जाती। मम्मी का बिलखता चेहरा याद आ जाता—

'बेटी किसी को हमारे बारे में मत बताना, नहीं तो तुम्हें भी पुलिस परेशान करेगी और हमें भी...'

और सोना सहमकर सिर नीचे झुका रोने लगी। छैलू कक्का की पीठ पर पुलिस के जूतों के निशान मस्तिष्क में कौंध जाते। कहीं मम्मी को भी...नहीं, नही, वह किसी को नहीं बताएगी कि वह कहां से आई है।

नारी उद्धारगृह की वार्डेन पहले बहुत बहला-फुसलाकर पूछती रहीं, पर अत मे सोना की रुलाई और मुंह न खोलने से समझ लिया था कि कम उम्र में बहुत ही सताई हुई यह लड़की होगी जिसे उद्धारगृह में विवशता में आना पड़ा है। अन्यथा इतनी कम उम्र में बच्चे मां-बाप को छोड़कर भागने की हिम्मत नहीं जुटा सकते। जरूर उसके मां-बाप नहीं होंगे या सौतेले हो सकते हैं, जिन्हें बच्ची के गुम हो जाने की चिंता भी नहीं। वार्डेन की आंखों में एक कृत्रिम प्यार और चमक उभर आई थी। पुलिस को सूचित कर उन्होंने अपनी कागजी कार्रवाई पूरी की और उसे परवीन वाले कमरे में ही रहने का आदेश दे दिया।

इस समय सोना और परवीन दोनों लॉन में बैठी थीं। सोना अपनी हथेलियो मे चेहरा छिपा सिसक रही थी। उसका हृदय पीड़ा से उमड़ रहा था। मम्मी बहुत याद आ रही थीं। परवीन उसे ढांढ़स बंधाने का प्रयास कर रही थी।

"चुप रहो, सोना! अब रहना तो यहीं है, फिर इतना रो क्यों रही हो?" कल से सोना की रुलाई देख उसे न जाने क्यों उससे सहानुभूति-सी हो रही थी।

सोना को भी परवीन को छोड़कर कोई भी अच्छा नहीं लग रहा था। परवीन उससे चार-पांच वर्ष बड़ी थी— सांवला रंग, ठिगना कद और दुबला-पतला शरीर, लेकिन देखकर उसे कोई सोना से बड़ी नहीं कह सकता था। चेहरे पर उम्र से अधिक का अनुभव अवश्य स्पष्ट परिलक्षित था।

"नहीं परवीन, मैं मम्मी के बिना नही रह सकती। मैं वापस चली जाऊंगी।"
सोना बेहाल हो उठी। आंसुओं से उसका चेहरा तर हो गया था।

"अब तुम वापस जाओगी तो भी तुम्हारी मम्मी अपने साथ नहीं रखेगी।"

"क्यों?" सोना ने भीगी आंखों से परवीन को ध्यान से देखते हुए पूछा।

"हो सकता है, पहचानने से भी इनकार कर दें।"

"आखिर क्यों इनकार कर देगी?"

"समाज में बदनामी का जो डर है!"

"मैं नहीं मानती। मेरी मम्मी ऐसी नहीं है।" सोना पुनः फफक पड़ी थी। उसे लग रहा था जैसे कोई अपनी मुट्ठी में उसका नन्हा-सा कलेजा लेकर मसल रहा हो।

"पर मेरी मम्मी तो ऐसी ही हैं।" परवीन ऊपर आकाश देखते हुए बोल रही थी।

"क्या? तुम्हारी मम्मी अच्छी नहीं है?"

"नहीं, मेरी असली मम्मी तो...दादी बताती थी कि तारा बन गईं। ऊपर से मुझे देखती होंगी। चाहे मैं जहा रहूं, पर दूसरी वाली मम्मी अच्छी नहीं है।"

"क्या करती थीं?"

"हमेशा मारती-पीटती थीं। एक दिन चीनी ले आने दुकान पर मैं गई। आते समय पोलिथीन फट गई। सारी चीनी कीचड़ में गिर गई।...पानी बरसा था उस दिन...बस पापा ने भी मारा, मम्मी ने भी मारा...मैं भागकर गाड़ी से दिल्ली चली गई। फिर एक आदमी यहां पहुंचा गया। तबसे यहीं हूं। मैडम ने बताया था कि उन्होंने मेरे मम्मी-पापा को पत्र लिखा था, पर उन लोगों ने बदनामी के डर से मुझे वापस नहीं लिया...मैडम बता रही थीं..." परवीन की आंखों की तरह ही स्वर में भी रिक्तता और तिक्तता थी।

"क्या लड़कों को भी मम्मी-पापा मारते होंगे तो वे भी घर छोड़कर भाग जाते होंगे?" सोना ने मासूमियत से पूछा।

"पता नहीं। मारेंगे क्यों? और अगर मेरी मम्मी-पापा की तरह होंगे तो जरूर ही..."

"तो लड़के कहां रहते हैं? ऐसा ही कोई...?"

"होता है। ऐसा ही होता है। रामनगर में एक है न? एक दिन पुनिया दीदी बता रही थीं– उनका भाई उनके साथ ही मेले में खो गया था...पर भाई को पुलिस वहां ले गई।"

"तो क्या उन्हें भी मां-बाप बदनामी के डर से वापस नहीं लेते?"

"धत्, लड़कों की कैसी बदनामी? बस, लड़कियों के साथ ऐसा होता है! क्या कहेंगे लोगों से कि उनकी लड़की घर से भाग गई और अब वापस.. "

परवीन सोना के भोलेपन पर हँस पड़ी थी मानो दुनिया-भर का अनुभव उसके पास हो।

"पर मैं तो भागकर नहीं आई यहां। मुझे तो मम्मी ही चुपके से यहां छोड़ गई।" सोना ने प्रतिवाद किया तो परवीन चौंककर उसे देखने लगी।

"क्या कह रही हो? मम्मी छोड़ गई हैं? अपनी मम्मी हैं?"

"परवीन दीदी, आप किसी से मत कहिएगा, नहीं तो वे लोग मेरी मम्मी को भी मारेंगे।" सोना को अपनी त्रुटि का एहसास हुआ तो वह परवीन से अनुरोध करने लगी थी।

"कौन मारेगा?" परवीन को आश्चर्य हुआ।

"वही पुलिसवाले...छैलू कक्का को भी मारा था उन लोगों ने।"

"पर तुम्हें तुम्हारी मम्मी क्यों छोड़ गईं?"

"लड़कियो, चलो अंदर। शाम हो गई है।" वार्डेन की रोबीली आवाज सुनकर दोनों चौंककर खड़ी हो गई थीं।

"दीदी, आप मैडम से मत कहिएगा।" सोना परवीन का हाथ पकड़ धीमे स्वर में गिड़गिड़ा उठी थी।

"ठीक है। नहीं कहूंगी।"

सोना ने मैडम के पास पहुंचने से पहले पीछे घूमकर अपनी आंखों को जोर से रगड़कर साफ किया। आंसू की दूसरी बूंदें पुनः डबडबा आईं। उन्हें पीने की कोशिश में उसकी नाक लाल हो उठी।

"चलो, सोना! मैडम इधर ही आ रही हैं।" परवीन ने सिर झुकाए फुसफुसाकर कहा।

"तो इतना डरने की क्या जरूरत है?" सोना ने तुनककर धीरे से पूछा।

"तुम अभी नहीं समझोगी। नई-नई आई हो न?"

सोना के कुछ कहने से पूर्व ही वार्डेन रीता देवी उनके पास पहुंच आई थीं।

"क्या बात है, परवीन, कमरे में रहना अच्छा नहीं लगता क्या? गली-गली चक्कर काटने के बाद भी अभी मन नहीं भरा?" मैडम का तीखा स्वर और क्रोध-भरा चेहरा देखकर सोना सहम उठी। कल तक उसे पुचकारने वाली मैडम आज एकाएक इतनी रोबीली और गुस्सेवाली कैसे हो गई?

"सोना, जाओ तुम भी अंदर। बाहर ताक-झांक न किया करो। गली-मोहल्ले के लोग तुम लोगों को छत से देखते होंगे।" मैडम की कड़कती आवाज

सोना के लिए भा उभरी थी।

"जी, मैडम।" वह भयभीत-सी परवीन का हाथ पकड़े गेट के अंदर चली गई थी।

"तुम चलो कमरे में, मैं अभी आती हूं संजू से मिलकर।" नारी उद्धारगृह के भवन के आंगन में पहुंचकर परवीन कोने वाले कमरे की ओर मुड़ गई थी। आगन के चारों ओर लगभग चार-फीट चौड़ा बरामदा था और बरामदे में ही सभी कमरों के दरवाजे खुलते थे। कुल मिलाकर पंद्रह-बीस छोटे-छोटे कमरे होंगे, जिनमें निराश्रित लड़कियां रहती थीं। एक कमरे में कम से कम दो आर आवश्यकता पड़ने पर उससे अधिक भी हो जाती थीं। सभी कमरों में बस, एक-एक छोटी खिड़कियां थीं जो बरामदे में ही खुलती थीं और एक-एक लकड़ी के दरवाजे थे, जिन पर तारकोल से पुताई कर पानी-दीमक से बचाने का प्रयास किया गया था। आंगन के फर्श में चौड़ी-चौड़ी पत्थर की पटिया जडी हुई थीं। उत्तर की तरफ के दो कमरे आधुनिक ढंग से सुसज्जित थे। बड़े-बड़े परदे, मेज-कुरसी, टेलीफोन और टी.वी. भी था। कोने में एक बेड, जिस पर कभी मैडम आराम करतीं या फिर कोई विशिष्ट मेहमान आकर ठहरता था। एक कमरा मैडम का आफिस जैसा था, जिसका दरवाजा बाहर लॉन में खुलता था। पश्चिमी बरामदे मे भी एक दरवाजा था जो लॉन की ओर खुलता था। यह लड़कियों और कर्मचारियो के उपयोग के लिए था। मैडम के आफिसवाले कमरे से लगा हुआ था दूसरा कमरा जो कभी-कभी ही खुलता होगा शायद। आज सुबह जब दाई झाड़ू लगा रही थी तो सोना ने चुपके से झांककर देखा था।

परवीन के संजू से मिलने चले जाने के बाद सोना अपने कमरे में आई थी और अपनी चौकी पर निढाल होकर बैठ गई थी। सावन-भादों बन गईं आखें। बादल थे कि थमने का नाम नहीं ले रहे थे। डबडबाई आंखों से उसने कमरे की छत को निहारा था। मद्धिम-सी पीली रोशनीवाला बल्ब आंसुओं से धुंधला गया था। कमरे में चारों ओर सीलन-भरी एक विचित्र-दुर्गंध पसरी थी—शायद बाहर की हवा और धूप न आने के कारण।

"उफ् मम्मी, कहां भेज दिया तुमने?" सोना के अंतस् से एक मौन चीत्कार-सी निकली थी।

"जीवन सुधर जाएगा, बेटी। मेरे साथ रहकर तुझे क्या मिलेगा? केवल लोगों की हँसी और मजाक।" कमरे की मद्धिम रोशनी में मम्मी की आकृति उभर आई थी, मानो उसकी पीडा सहलाने वे स्वयं चली आई हों।"

"मम्मी, मुझे ले चलो। मैं यहां नहीं रहूंगी।"

"बेटी, मैं मजबूर हूं। तुझे अपने साथ नहीं रख सकती।"

आंसुओं से तर-बतर मम्मी का रूखा-सूखा-सा चेहरा कातर हो उठा था, उसी दिन की तरह जिस दिन उसे यहां आना था। पूरी रात मम्मी जागती रही थीं। सोना का सिर सहलाते-सहलाते एकाएक वे सिसक पड़तीं। सोना चुपचाप उनके सीने में सिर छिपाए, दुबकी पड़ी थी। उसे भी नींद नहीं आ रही थी। कल सुबह ही सबको छोड़कर कहीं और जाकर रहने की कल्पना मात्र से उसका मन रो रहा था, पर वह मम्मी के सामने संयत बनी रही थी। बहुत पूछने पर मम्मी ने बताया था कि वह उनकी बेटी नहीं है। उसे तो पाला गया है। उसकी अपनी मम्मी उसे जन्म देते ही मर गई थीं।

दुःख हुआ था सोना को, पर उस अनदेखी मां के लिए मन इतना नहीं रोया था जितना अपनी इस मम्मी के लिए। एक उथल-पुथल लिए वह चुपचाप अपना बैग ले रिक्शे में बैठ गई थी। आज भी छैलू कक्का ही उसके साथ थे। मम्मी बस, गली के नुक्कड़ तक उसे छोड़ने आई थीं। बार-बार भरे गले से उसे हिदायत दे रही थीं—

"रोना मत। हम यहीं हैं। इसी शहर में तो। जब भी कोई जरूरत होगी..." आगे की बात रुंधे गले में अटक गई।

छैलू कक्का ने नारी उद्धारगृह के कुछ पहले रिक्शे से उतारते हुए उसे चिपका लिया था।

"खाना ठीक समय से खा लेना, सोना! बिस्कुट और नमकीन का पैकेट है न अंदर बैग में? जब भूख लगे तो खा लेना। मैं आऊंगा कभी-कभी देखने। पर किसी को बताना मत, बेटा, नहीं तो अनर्थ हो जाएगा।" उन्होंने अंतिम निर्देश दिया था।

गली में सन्नाटा था। भोर की निद्रा में सभी लोग मग्न थे और सोना भारी कदमों से नारी उद्धारगृह के गेट की ओर बढ़ रही थी। उसने पीछे मुड़कर देखा। छैलू कक्का एक पेड़ के नीचे अंधेरे में खड़े थे। उसका मन हुआ वह पीछे पलट ले और दौड़कर छैलू कक्का के साथ वापस चली जाए, पर पुलिसवालों के सताने के भय ने उसे अपनी इच्छा दबा लेने को विवश कर दिया। भरी आंखों से वह अपने भविष्य का द्वार खटखटाने लगी थी।

परवीन अभी तक नहीं लौटी थी। सोना ने उठकर दरवाजा अंदर से बंद कर लिया और अपना बैग खोल लिया था। बिस्कुट का पैकेट एक तरफ बिस्तर पर रख अपने नए वाले कपड़ों—सलवार-कमीज की पोलीथीन में छिपाकर रखी स्टील के फ्रेम में मढ़ी तसवीर निकाली थी। तसवीर में वह मम्मी के गले में बाहें

डाले खिलखिलाकर हँस रही थी। पर मम्मा के चेहरे पर एक तनाव, एक उलझन स्पष्ट दीख रही थी। उसने अपने स्कर्ट के घेरे से तसवीर को रगड़कर पोंछा मानो मम्मी के चेहरे की उलझनें साफ कर रही हो। अपने प्रवेश-फार्म में चिपकाने के लिए पासपोर्ट साइज की फोटो खिंचवाने वह मम्मी के साथ रात में पास के स्टूडियो गई थी। फोटोग्राफर ने व्यंग्य से हँसते हुए पूछा—

"किसकी फोटो खींचनी है? तुम्हारी या इनकी?" उसने बारी-बारी से मम्मी और सोना को देखा था।

मम्मी उसके हँसने पर चिढ़ गई थी। स्वयं को संयत करते हुए बोली थी—

"मैं क्या फोटो खिंचवाऊंगी, बाबूजी? इस बिटिया का खींच दो। पढ़ती है न यह।"

"अच्छा, तुम लोगों में भी...?"

फोटोग्राफर के प्रश्न को बीच में काटते हुए मम्मी गरज पड़ी थी—

"तुम्हें फोटो खींचना है या हमारा..."

"छोड़ो न, मम्मी। क्यों हर जगह तमाशा करती हो?" सोना को मम्मी का गुस्से में ताली पीटकर कमर लचकाना अच्छा नहीं लगा था।

मम्मी बेबस-सी चुप हो गई थी।

फोटोग्राफर हँस पड़ा था। सोना चुपचाप कुरसी पर फोटो खिंचवाने बैठ गई। सामने जल रही दो भारी-भरकम लाइट के सामने उसकी आंखें चौंधिया रही थी। कुछ देर में सामान्य होने पर उसने पीछे खड़ी मम्मी की ओर देखा था। वे बहुत हसरत से उसे ही निहार रही थीं। सोना को मम्मी पर बहुत प्यार आया। कितना उग्र हो जाती हैं मम्मी जरा-सी बात पर।

"एक फोटो हम दोनों की खींच दीजिए।" सोना ने मम्मी को पकडकर अपने बगल में बैठाते हुए कहा।

"छोड़ बेटी, हम कभी अपनी फोटो नहीं खिंचाए हैं।" वे हड़बड़ाकर उठने लगीं थीं।

"अरे, तो आज खिंचवा लो न।" फोटोग्राफर ने मुसकराते हुए कहा और अपना कैमरा संभालने लगा। मम्मी चुपचाप सोना की बगल में बैठ गईं।

फोटो खिंचवाने के बाद मम्मी रसीद बनवाने काउंटर पर पहुंची थीं।

"किस नाम से...?"

"नाजबीबी।" अपनी साड़ी की खूंट से रुपये निकालते हुए उन्होंने कहा था।

"नाम तो बहुत अच्छा है तुम्हारा...आज जरा शेविंग कर लिए होते तो चेहरा

साफ आता—बिलकुल वहीदा रहमान की तरह।"

मम्मी आपे से बाहर हो उठीं—

"देखो बाबूजी, जब हम अपने धंधे पर होते हैं, आपके घरों में नाचते-गाते हैं, तब हँसी-मजाक करते हो तो हमें बुरा नहीं लगता। पर इस समय तो आप अपने धंधे पर हैं फिर यह हँसी ठिठोली...?"

मम्मी के दोनों हाथ ताली बजाने के लिए चमक उठे थे। स्टूडियो मे उपस्थित अन्य ग्राहकों के चेहरों पर हँसी छलक उठी। सोना शर्म और अपमान से खिसियाई हुई दुकान से बाहर निकल आई थी। मम्मी को अपनी गलती का आभास हुआ था और वे भी लंबे-लंबे डग भरती उसके पीछे हो लीं।

घर पहुंचते ही मम्मी ने उसे दुलार से अपनी गोद में बैठा लिया।

"मेरी सोना नाराज है क्या?" उन्होंने उसके गुस्साए चेहरे को हाथ से अपनी ओर घुमाते हुए प्यार से पूछा।

"हूं। क्यों तुम ऐसे करती हो? मुझे शर्म आती है जब लोग हँसते हैं तो।" सोना ने अपनी नाराजगी व्यक्त की थी।

"अच्छा, आज से अब एकदम नहीं करूंगी। क्या करूं, बेटी? आदमी का धंधा धीरे-धीरे उसकी आदतों में घुल जाता है।" मम्मी ने अपने दोनों कान पकड़कर माफी मांगने के अंदाज में कहा था।

सोना पिघल उठी—

"छोड़ क्यों नहीं देतीं यह धंधा? कोई दूसरा काम नहीं कर सकतीं क्या?"

मम्मी भावुक हो उठीं। सोना ने प्यार से मम्मी का चेहरा अपनी हथेली से सहला दिया। मम्मी के इस खुरदरे चेहरे के पीछे छिपी ममता की नदी में वह हमेशा ही नहाती रही थी। उनके जिस मर्दाना और सपाट चेहरे तथा आवाज पर लोग उपहास करते थे, वही चेहरा सोना को कितना अच्छा लगता था! एक दिन उसने मम्मी के पास बैठते हुए कहा था—

"जब मैं बड़ी होकर पढ़-लिख लूंगी और नौकरी करने लगूंगी तो तुमसे तुम्हारा धंधा छुड़ा दूंगी।" सोना ने अपनी मम्मी की भाव-विह्वल आंखों में झांकते हुए कहा।

"बेसरा माता तुम्हारी इच्छा पूरी करें, बेटी।" मम्मी का आशीर्वाद-भरा हाथ सोना के सिर पर आ गया था।

"और तुम्हें बाहर भी नहीं निकलने दूंगी। किसी को देखने नहीं दूंगी...तब कैसे हँस पाएंगे लोग?"

सोना के भोलेपन पर मम्मी न्योछावर हो उठीं।

"अरे नाज, चलो जल्दी! धंधे का टैम निकला जा रहा है। जजमान सब ड्यूटी पर जाएंगे तो घर की मेहरारू साफै बहाना मार देगी कि कहां से पैसा लाऊं? जाओ, बाद में आना।" चमेली चाची, मंजू, शबनम और अनवर चाचा एक साथ ढोलक और घुंघरू लिए कमरे में आए थे। मम्मी को लेकर उन्हें गहकियाने जाना था। सोना छैलू कक्का के साथ स्कूल जाने के लिए तैयार थी।

"बलइया लूं। अपनी सोना क्या फब रही है इस्कूली डरेस में!" रेहाना ने सोना के आगे दोनों हाथों को फैलाकर प्यार से कहा। उसके कानों के बड़े-बड़े झुमके हिल उठे थे।

"हाय, हाय, नजर मत लगाइयो रेहाना मेरी चांद को।" चमेली चाची ने अपने दोनों हाथों को दोनों कानों से सटाकर चट् की आवाज निकाली थी और अनवर चाचा ने ढोलक पर इतने जोर की थाप दी कि सभी लोग चौंक उठे।

"ये क्या अनवर, कान ही उखाड़ लोगे क्या? तुमसे अच्छा तो अकरम ही है न।" शबनम ने कानों को हाथों से ढंकते हुए कहा।

"नहीं, मैं तो सोना बिटिया की नजर भगा रहा हूं।" अनवर की बात पर सभी हँस पड़े थे।

मम्मी ने घुंघरू निकालकर गठरी में डाल लिया।

"दरवाजा बंद कर ले, बेटी। छैलू कक्का के साथ चली जाना स्कूल। कोई आए तो पहले खिड़की से झांककर तब दरवाजा खोलना।" मम्मी ने बाहर निकलते हुए सोना को हिदायत दी थी।

"अरे, यहां हम लोगों के घर की ओर किसकी आंख उठाने की हिम्मत पडेगी? तुम खामखा चिंता करती हो नाजबीबी।" अनवर ने समझाया था।

"हां, हां, इतने बड़े गबरू पहलवान मरद के यहां रहते किसका डर?" चमेली चाची ने एक धौल अनवर चाचा की पीठ पर जमाते हुए कहा था।

चाचा के खिसियाए चेहरे के पीछे एक टीस उमड़ने-घुमड़ने लगी थी।

उनके जाने के बाद सोना चारपाई पर बैठ गई थी। खिड़की में से झांककर देखा तो सामने अभी छैलू कक्का बालों में कंघी फेर रहे थे। वह बैग लिए-लिए चारपाई पर उठंग गई थी। सामने दीवार पर बेसरा माता की तसवीर लकड़ी के फ्रेम में मढ़ी झूल रही थी। बगल में ही शंकर भगवान की फोटो भी टंगी थी। उसे याद आया, उस दिन जब वह नहाकर आने के बाद बेसरा माता के सामने हाथ जोडे प्रार्थना की मुद्रा मे खड़ी हुई थी तो मम्मी ने आकर उसे पीछे से पकड़ लिया था।

"ना बेटी ना, ये केवल हमारी देवी हैं। तुम इनकी पूजा न करो।"

और दूसरे ही दिन मम्मी ने शंकर-पार्वती की वह तसवीर लाकर बगल में टाग दी थी। वह जाकर बेसरा माता की तसवीर के सामने खड़ी हो गई थी। मम्मी की जिंदगी के बारे में अब तक वह थोड़ा-बहुत समझने लगी थी।

'क्यों किया मेरी मम्मी के साथ यह अन्याय? क्यों नहीं उसे भी मेरी सहेली की मम्मी की तरह बनाया, बेसरा माता? मम्मी मेरे स्कूल नहीं जा पाती, मै उसके साथ कहीं घूमने नहीं जा पाती, आखिर इसीलिए न?'—बुदबुदाते हुए वह रो पड़ी थी।

"खट् खट् खट्..." दरवाजे पर पड़ रही थाप से उसकी सोचों का ताना-बाना टूटा था। उसने मम्मी की तसवीर पुनः कपड़ों के तह में लपेट बैग में रख दी और दोनों हाथों से आंखें मलते हुए दरवाजा खोल दिया।

"अरे, इतनी जल्दी तुम सो भी गईं, सोना? खाना नहीं खाना है क्या? घंटी कब की लग चुकी।" परवीन दरवाजे पर खड़ी पूछ रही थी।

"तुमने खा लिया क्या?"

"नहीं, अभी नहीं। खाने गई थी तो वहां मैडम ने हाजिरी लेनी शुरू की। कामिनी दीदी नहीं मिल रही हैं। अपने कमरे में भी नहीं हैं। बाथरूम वगैरह सब जगह लड़कियां खोज आई हैं। वे कहीं नहीं मिल रही हैं। मैडम परेशान हैं। मैं दौडी आई तुम्हें ढूंढ़ने।" परवीन कुछ परेशान थी।

"कहां गई होंगी कामिनी दीदी? कहीं अपने घर...?"

सोना की आशंका पर परवीन हँस पड़ी।

"तुम्हें तो हर समय घर सुझाई देता है। घर जाना ही होता तो इतने वर्षों तक न जातीं?"

"तो आखिर कहां...?"

"यहां से मैडम के साथ ही कभी-कभी लड़कियां कहीं जा पाती हैं, पर आज कामिनी दीदी कहीं चली गई हैं, मैडम तो यहीं पर हैं।" परवीन भी चिंतित हो उठी।

"कहां जाती हैं लड़कियां मैडम के साथ? अपने घर?"

"पता नहीं। आज तक मुझे कहीं तो नहीं लेकर गईं। एक बार मैंने कहा था घुमाने को तो बोली—'छोटी लड़कियों को ज्यादा नहीं घूमना चाहिए। बाद में कभी ले चलेंगे।' "

सोना की जागृत होती नन्हीं-सी उम्मीद मुरझा गई थी। मैडम के साथ मम्मी के घर तक जाने की इच्छा मन में ही जलकर बुझ गई। सिर झुकाए उसने दरवाजे

सोना से बरदाश्त नहा हुआ। रुलाई रोकते-राकते वह भी जोर से हिलककर रो पड़ी। इस तरह का दृश्य उसने कभी नहीं देखा था। यहां आते ही उसे यह सब देखना पड़ेगा, उसे इसकी कल्पना भी नहीं थी। भयभीत-सी उसने परवीन को कसकर पकड़ लिया।

"ये क्या रो रही है जी? ले जाओ इसे उसके कमरे में।" बड़े बाबू रमानाथ ने सोना की ओर उपेक्षा से देखते हुए परवीन से कहा।

"नई आई है अभी, दो-तीन दिन पहले।" सुपरवाइजर श्रीप्रकाश ने जानकारी दी।

उधर मैडम आरती को लथाड़ते हुए खाना बनानेवाली महराजिन को छत पर जाकर देखने का आदेश दे रही थीं।

परवीन सोना को पकडकर अपने कमरे की ओर ले चली। सोना के पग डर के कारण उठ नहीं पा रहे थे। उसे समझ में नहीं आ रहा था कि आखिर कामिनी दीदी बिना बताए भाग क्यों गईं? और गईं भी तो कहां?

"बहनजी, ऊपर मुंडेर से साड़ी बांधकर कामिनी नीचे गली में उतरकर भाग गई है शायद। साड़ी लटकी है।" महराजिन ने सूचना दी तो सभी के चेहरे पर हवाइयां उड़ने लगीं।

एक साथ मैडम और बड़े बाबू तथा मेस मैनेजर दौड़ते हुए सीढ़ी की ओर गए थे।

लड़कियां डरी-डरी-सी एक-दूसरे का मुंह देख रही थीं। आगे बढ़ते सोना और परवीन के कदम भी रुक गए।

"अब क्या होगा, परवीन?" सोना डरी-सी पूछ रही थी।

"देखो क्या होता है? कभी पहले तो ऐसा नहीं हुआ।"

परवीन पुनः लड़कियों की ओर वापस आ गई। सोना वहीं किंकर्त्तव्यविमूढ-सी खड़ी कानाफूसी करती लड़कियों को देख रही थी। भूख न जाने कहां उड गई थी। मम्मी को भूल वह कामिनी दीदी के बारे में सोचने लगी थी। कहां होगी वे? क्यों किया ऐसा? शायद उन्हें भी अपनी मम्मी की याद आई होगी। अच्छा किया भाग गईं। पर छत से चोरी से क्यों? कहकर जातीं। क्या मैडम जाने न देती...तो क्या वह भी यदि जाना चाहेगी तो मैडम नहीं जाने देंगी?

वह बेचैन हो उठीं कैसे मम्मी को सूचना भेजे वह? नहीं रहना चाहती वह यहां।

पिंजड़े में बंद पंछी की तरह उसका नन्हा मन तड़फड़ा उठा।

पच्चीस

आज बहुत दिनों बाद नाजबीबी छैलू के साथ मल्लू साव की दुकान पर सुबह-सुबह चाय पीने आई थी। सोना के जाने के बाद तो जैसे सभी कामों ने उससे नाता तोड़ लिया था। गुमसुम-सी कोठरी में बैठी वह सोना की छोड़ी फ्रॉक को उलटती-पलटती रहती। विह्वल होने पर कभी उसे होठों से लगा चूमती तो कभी सूघकर सोना की सुगंध याद करती। कला बनाने वाली कापी भी भर जाने के कारण सोना यहीं छोड़ गई थी।

"मम्मी, जब आऊंगी तो दूसरी कापी खरीद देना। यह भर गई है।" सोना भावुकता में मम्मी को अपनी वापसी का आश्वासन दे रही थी, ताकि वे रोएं नही, जबकि स्वयं वह अंदर से विकल थी।

"अच्छा बेटी, खरीद दूंगी।" नाजबीबी ने डबडबाई आंखों को छिपाते हुए दूसरी ओर मुंह फेर लिया।

"इसमें देखो, तुम्हारी तसवीर मैंने बनाई है। देखो...ये है मेरी मम्मी, ये मेरा नया घर, ये पीछे बर्फवाला पहाड़ है। जब शरबत पीने का मन होगा, चीनी लेकर पहाड़ पर चढ़ जाएंगे हम दोनों और बर्फ में घोलकर पीएंगे ठंडा-ठंडा।" सोना ने कला की कापी में स्वयं बनाए चित्र की व्याख्या करते हुए बताया।

"हूं..."

"और ये देखो चूहा और उसकी मम्मी...बिल्ली देख रही है इसे कि कब उसकी मम्मी हटे और कब चूहा का बच्चा...तुम रो रही हो मम्मी?"

नाजबीबी से कला की कापी में वही वाला पन्ना खुल गया था और वह बिलख पड़ी थी—

"हां बेटी, इस समय भी मैं रो रही हूं, पर तुम चुप कराने नहीं आ रही हो।"

"नाजबीबी, तुम पागल हो जाओगी। सुबह से शाम तक सोना के लिए बिसूरती रहोगी तो नए घर में उसका मन लगेगा? हुड़केगी बच्ची। चलो, आज मल्लू साव की दुकान पर चाय पी आते हैं।" छैलू ने नाजबीबी को हाथ पकड़ उठाया। सोना की कला की कापी को ध्यान से देखते हुए उसने ऊपर टांड पर

सहेजकर रख दिया। जानते हुए भी कि अब सोना का इस बस्ती में आना असभव है, फिर भी।

परसों नाजबीबी के गिरिया रामसरन ने भी उसे संदेश भेजा था, पर नाजबीबी ने साफ मना करवा दिया था छैलू से—

"जा कह दे, बीच में चार बरस कभी नाजबीबी की सुध लिया? अब फिर यहा तबादला होकर आ गया तो संदेश भेजता है? कह दे, जिसके लिए करती थी ये सब उद्‌म, वो तो चली गई। अपना पेट इतना भारी नहीं। भर लूंगी नमक-पानी से।"

"लो नाज, चाय...आज बहुत दिनों बाद इधर दिखाई दी हो!" मल्लू साव ने बाएं हाथ से चाय पकड़ाते हुए कहा। दाहिने हाथ के पंजे में सड़न फैलने से रोकने के लिए डाक्टरों को उसे कलाई के पास से काटना पड़ा था, तब-से मल्लू साव ने बाएं हाथ से ही काम करने की आदत डाल ली थी।

"हां साव, क्या करूं? अब किसी बात में दिल् नहीं लगता।"

"क्यों? कोई बात है क्या?"

"नहीं, जमाने का रंग-ढंग देखकर मन होता है, सारे पापियों को खडा करके सरकार अगर हमें बंदूक दे दे तो उड़ा दूं।" नाजबीबी ने मल्लू साव के बगल वाली डॉक्टर की दुकान की ओर घृणा से देखते हुए कहा। डॉक्टर आकर अपनी दुकान का शटर खोल रहा था।

"तुम तो नेताओं जैसी बात कर रही हो। एलेक्सन लड़ जाओ...जैसे तुम्हारे बिरादरी वाले एक-दो हैं।" मल्लू साव ने दूसरा पुरवा छैलू को पकड़ाते हुए कहा। वे डाक्टर को नहीं देख पाए थे।

छैलू ने जोर से खखारकर डॉक्टर की दुकान की ओर मुंह करके थूक दिया। डॉक्टर कनखी से उन लोगों की ओर देखते हुए उनकी बातें सुन रहा था। जबसे उस दिन नाजबीबी ने आकर रोगियों के सामने ही उसका कालर पकड़कर बेइज्जत किया था तबसे वह मन ही मन बहुत सहमा हुआ था। पुलिस में शिकायत की थी तो दरोगा ने मजाक वाले अंदाज में टाल दिया था—

"क्या यार, मुंह भी लगते हो तो किसके? बेइज्जती किसकी है इसमें? जाओ, मस्त रहो।" वह अपना-सा मुंह लेकर लौट आया था। परंतु इस समय छैलू के खखारकर उसकी ओर थूकने से वह स्वयं को रोक नहीं सका था—

"ऐ, दिखाई नहीं देता? दिमाग खराब हो गया है क्या?" वह गरजा था।

"हे बाबू, पनारा पर तुम अपना कुरसी जमाकर बैठे हो तो थूकने कहा जाऊं? किसी के जेबा में?" छैलू तमककर खड़ा हो गया। वह भी अपने मन की

भड़ास निकालना चाह रहा था। जब से सोना गई है तब से एक विचित्र परिवर्तन उसके स्वभाव में हो गया है। हमेशा चुप रहने वाला छैलू अब वह बात-बात मे उग्र हो उठता है। सोना के जाने की बात उन लोगों ने मल्लू साव को जान-बूझकर नही बताई। क्या फायदा अपना उघड़ा सभी को दिखाने से।

"अरे छैलू, क्यों सुबह-सुबह फसाद करते हो? चुपचाप चाय पीओ।" मल्लू साव ने कोई नया विवाद न बढ़ाने के लिए छैलू को टोका। झगड़े-टंटे से दूर रहते हुए भी किस तरह का हादसा उन्होंने झेला था।

छैलू शांत होकर चाय पीने लगा।

"एक चाय और देना, साव।" नाजबीबी ने अपना खाली पुरवा साव के आगे बढ़ा दिया।

"आज की खबर कुछ पढ़ी कि नहीं, नाजबीबी?" मल्लू साव ने चाय उडेलते हुए पूछा।

"कहां, साव? अपनी ही खबर नहीं तो दूसरे की खबर क्या पढ़ूं?" उसने ठडी सांस छोड़ते हुए कहा।

"लेकिन यही खबर तो पढ़ने लायक है। बाबा विश्वनाथ की नगरी में कोई पाप ज्यादा दिन तक नहीं चलता। भोलेशंकर उसका घड़ा तुरंत फोड़ते हैं।"

"हुआ क्या, साव?"

"अरे, ये पूछो कि क्या नहीं हुआ? बड़े-बड़े लकदक सफेद कुरते वाले, खाकी वर्दी के कुछ आला लोग और दूसरे अफसर सब लपेट में आ गए है।"

"कोई यहां भी घोटाला हुआ क्या?" नाजबीबी ने लापरवाही से पूछा। आए दिन अखबारों में इस तरह के भ्रष्टाचार और घोटाले के बारे में वह मोटी-मोटी पंक्तियों का शीर्षक पढ़कर छोड़ देती थी। शायद ऐसा ही कुछ यहां भी राज खुला होगा।

मल्लू साव केतली भट्ठी पर चढ़ाकर, अखबार अपने सामने फैला आज के समाचार का निष्कर्ष सुनाने लगे थे—

"...वो भागी हुई लड़की शहर से सटे गांव इमिलिया में मिली। जब पुलिस वालों ने कड़ाई से पूछताछ की तो उसने पूरी बात कबूल दी। सभी बड़े अफसरो के चेहरों की पहचान तक बता दी।"

"वो कैसे जानती थी कि वे बड़े अफसर हैं?" नाजबीबी ने पुनः लापरवाही से पूछा।

"वही तो मजे की बात है। यह जांच-पड़ताल दो दिन से लगातार चल रही है। उसके बताए हुलिए पर उसे ले जाकर दिखाया जा रहा है। वो सभी को

पहचान-पहचानकर बता रही है कि ये ये लोग आते थे बराबर।''

''अरे उसके पीछे कोई न कोई जरूर होगा। ये सब फंसाने की साजिश है। क्या नाम है लड़की का साव?''

''कामिनी। नारी उद्धारगृह से भाग गई थी दो दिन पहले।''

''क्या? जरा फिर से पढ़ना साव इस खबर को।'' नाजबीबी नारी उद्धारगृह का नाम सुनते ही चौंक पड़ी।

''अरे यहीं, जो आगे चौराहे से जाकर बाएं मुड़कर अंदर गली में हैं। अरे, बस तीन किलोमीटर है यहां से...भले क्या नाम है वहां का?'' मल्लू साव अपनी स्मृति पर जोर डालकर उस जगह का नाम याद करना चाह रहे थे। छैलू ने पुरवा सडक पर फेंक दिया और बेचैनी में अखबार उठा देखने लगा था—'नारी उद्धारगृह की वार्डेन गिरफ्तार, कई आला नेता और अधिकारी इसकी लपेट में' शीर्षक पर उसकी निगाहें टिक गई थीं। वार्डेन की तसवीर साफ नहीं थी। शायद फोटो लेते समय धक्का-मुक्की में कैमरा हिल गया होगा। बगल में कामिनी की तसवीर साफ-साफ छपी थी। वह जल्दी-जल्दी पढ़ने की चेष्टा करने लगा था।

''छैलू, जरा मुझे भी बताओ तो क्या हुआ?'' नाजबीबी के चेहरे पर बेचैनी थी।

''वो एक लड़की किसी तरह से वहां से भाग निकली थी। उसी ने बयान दिया है कि वहां उन सबसे गलत धंधा करवाया जाता है। बडे-बड़े लोग रोज आते है। उनमें से किसी को छांटकर कहीं ले जाते हैं और फिर पहुंचा जाते हैं। जो लडकी विरोध करती है उसे मारा-पीटा जाता है। सिगरेट से जलाया जाता है। देखो, इस तसवीर में इसकी पीठ की फोटो है। कितने दाग हैं इस पर।'' छैलू के चेहरे पर घृणा पसीने के रूप में फूट रही थी और आंखें अगले समाचार पर टिकीं थी।

''आगे बता कि बस, अपने ही पढ़ रहा है रामायण?'' नाजबीबी झल्ला पडी।

''बता रहा हूं। पूरा पढ़ लेने दो।''

''अरे, तो बोल-बोलकर पढ़ न!''

''क्या बात है, नाजबीबी! इस समाचार के लिए एकाएक इतनी बेचैन क्यो हो?'' मल्लू साव ने आनंद लेने के लिए पूछा।

''क्या बताऊं, साव? अरे एही कोढ़िया डकटरवा के कारण...''

''सारी लड़कियों से पूछताछ चल रही है। उन्हें किसी से मिलने नहीं दिया जा रहा है, ताकि किसी प्रकार के दबाव में आकर उनका बयान प्रभावित न हो। शक की सूई यहां के एक नेता की ओर भी घूम रही है, जो जान-बूझकर यहा

पर रुके हुए हैं, ताकि उनकी गैर-मौजूदगी में सारे तथ्य खुल न जाएं। उनके साथ के एक वरिष्ठ पुलिस अधिकारी का नाम भी एक संवासिनी ने बताया है। वे शीर्षस्थ नेताओं और प्रशासनिक अधिकारियों से अपने बचाव की गुहार लगा रहे हैं। नारी उद्धारगृह के कागजात को सील कर दिया गया है। रेकार्डों और बयानों के आधार पर एक सनसनीखेज समाचार प्रकाश में आया है कि दो संवासिनियों की शायद हत्या भी कर दी गई है, क्योंकि वे इस तरह के शारीरिक शोषण के खिलाफ थीं, परंतु वार्डेन रीता देवी का कहना है कि वे दोनों ही लड़कियां चरित्रहीन थीं और अपने प्रेमी के साथ फरार हो गई थीं। उनकी गुमशुदगी की रिपोर्ट थाने में लिखवा दी गई थी। पुलिस इस प्रकरण की भी खोज कर रही है।''

छैलू अखबार पढ़ रहा था और नाजबीबी अपनी अधूरी बात छोड़ ध्यान से सुनने लगी थी।

''हाय राम, मेरी सोना...कहां फंस गई जाकर रे...हे बेसरा माता...उसकी रक्षा करना माई!'' नाजबीबी अपना सीना पीटकर रोने लगी थी।

''क्या हुआ, नाजबीबी? क्या हुआ?...शांत रहो...कुछ बताओ तो सही।'' मल्लू साव आकर नाजबीबी के सामने खड़े हो गए थे।

नाजबीबी विह्वल-सी अपने दोनों पैरों को जमीन पर फैलाकर निढाल-सी बैठी रो रही थी।

''अरे, चुप भी रहो, नाजबीबी! जो देखेगा वो क्या सोचेगा?'' मल्लू साव परेशान थे।

''अरे, मल्लू भइया! वो ही डक्टरवा के आग लगाने से हम अपनी सोना को वहां पहुंचा आए...ऊंऽऽ ऊंऽऽ ऊंऽऽ...'' नाजबीबी फूट-फूटकर रो रही थी।

''क्या? कब...?''

''वही जाकर पुलिस में रपट कर आया था। इसीलिए दरोगा ने कहा तो हमें भेज आना पड़ा वहां।'' छैलू ने अपनी आंखें पोंछते हुए कहा।

''ओह हो...उसी वाले में?'' मल्लू साव भी परेशान हो उठे थे। दो-चार अगल-बगल के लोग भी नाजबीबी को रोता देख आकर खड़े हो गए थे। पहली बार किसी हिंजड़े को रोता देखना उनके लिए किसी आश्चर्य से कम नहीं था।

छैलू ने वस्तुस्थिति की गंभीरता को देखते हुए नाजबीबी का हाथ पकड़कर उठाया था और फुसफुसाते हुए बोला—

''चलो, तमाशा मत करो यहां? चलो, लुढ़कनी[1] से चलते हैं। बाहर से कुछ तो पता चलेगा।''

---

1. रिक्शा

नाजबीवी ने स्वयं को संभाला और गुजर रहे एक रिक्शे को रोककर उस पर वैठ गई। छैलू ने चाय के पैसे देने के बहाने मल्लू साव के पास जाकर फुसफुसाते हुए कहा—

"साव, अभी किसी को कुछ मत बताइएगा। बोल दीजिएगा, नाज की तबियत खराब थी। ले जा रहा हूं दिखाने।"

मल्लू साव ने सहमति में सिर हिला दिया और छैलू लपककर रिक्शे पर बैठ गया था। रिक्शा चल पड़ा और रिक्शे के चेन की तरह नाजबीबी और छैलू के विचार भी आगे चलने लगे थे। अगर किसी तरह सोना दिख जाए तो उसे इशारा कर देंगे कि अपना सामान वगैरह छोड़कर भाग आए वह।

"पर पुलिसवाले इस समय तो कुत्ते को तरह सूंघ रहे हैं...कहीं..."

"अरे, उसे लेकर कुछ दिन दूसरे शहर..."

"पर वहां भी तो डाक्टर की तरह ही लोग...फिर?...चलो पहले देखते है .नहीं होगा तो वो अखबारवाली मेम साहब से मदद मांगेंगे। बड़ी अच्छी है बेचारी। शायद कुछ मदद कर ही दें।"

"पर क्या वे सोना के बारे में जानती हैं?"

"हां, एक बार मिल गई थीं तो मैंने उनसे सब बता दिया था। वही नए घर के बारे में पूछना था, जानकारी चाहिए थी...पर क्या मालूम था कि इतनी जल्दी सोना को भेजना पड़ जाएगा?"

"लेकिन तुम सबको क्यों बताती फिरती हो सोना के बारे में?" छैलू इस बार भड़क उठा।

"सबको कहां? बस आज तक दो लोगों को बताया। मल्लू साव और मेम साहब...उन लोगों ने आज तक कहीं चूं तक नहीं की। पर यह डॉक्टर.." नाजबीबी अपराधी की तरह छैलू को सफाई दे रही थी।

"...बस यहीं रोक दो...यहां से पैदल चले जाएंगे गली में।" छैलू ने रिक्शा सडक पर छोड़ दिया और दोनों पैदल ही चल पड़े थे।

"हे भगवान, हमारी सोना की बस एक झलक दिखा दे।" दोनों मन ही मन प्रार्थना कर रहे थे।

"तुम यहीं पेड़ के पास खड़ी रहो। वो देखो, दूर, वो वाली बिल्डिंग...वही है। मैं पता करके आता हूं। तुम्हें देखकर शायद वे कुछ नहीं बताएंगे।"

"चुप कर! अब मैं नहीं छिपाऊंगी अपने को। इन बेईमान भ्रष्ट इनसानो से बुरी हूं क्या जो स्वयं को छिपाऊं? सारी बातें खोलकर सबके सामने रख दूंगी। बेचारी अनाथ, बेसहारा लड़कियों का सहारा बनने के नाम पर इतनी धांधली?

..इतना कुकरम? बनते हैं सब रखवाले?...परजा के...जनता के? अभी तक पैसा-रुपया पर ही सबकी नीयत डोलती रहती थी, हजम करने के लाख उद्यम अपनाते थे। अब बेसहारा बहू-बेटियों पर भी नीयत डोलने लगी। कुत्ते की औलाद सब...एक कुकरिया से पेट नहीं भरता इनका...हरामजादे...'' नाजबीबी ने गुस्से में पच्च से थूक दिया सड़क पर और तेज-तेज कदम बढ़ाने लगी थी। छैलू में उसे रोकने का साहस नहीं हुआ।

''ऐऽऽ, यहां कहां? ये जच्चा-बच्चा केंद्र है क्या?'' पुलिसवाले ने अपनी ओर उन दोनों को बढ़ता देख डांटा।

नारी उद्धारगृह के दरवाजे के सामने वे दोनों सुरक्षा के लिए बैठाए गए थे।

नाजबीबी उनकी कड़कदार आवाज से प्रभावित हुए बिना ताली पीटकर बोली—

''आप किसी जच्चा से कम हो क्या, बाबू?''

दूसरा वाला सिपाही मुसकरा उठा।

''हे बाबूजी, आपसे एक मदद लेने आई हूं। करेंगे?'' नाजबीबी उन पुलिस वालों की बेंच के पास उकड़ूं बैठ गई और ब्लाउज के अंदर रूमाल में बंधे नोट निकालकर गिनने लगी थी।

''क्या काम है?'' सिपाही ने पूछा।

''इसी में एक लड़की रहती है बाबू, सोना। सोना नाम है उसका। उसी को एक बार मिला दो।'' वह गिड़गिड़ा उठी थी।

''तुम क्या करोगे मिलकर? फिर इस समय? तुम नहीं जानते कि इस समय कौन-सा बवाल मच रहा है?''

''जानते हैं, बाबू! इसीलिए तो मिलना चाहते हैं। बस एक यही उपकार कर दो, बाबू।'' नाजबीबी ने सौ-सौ के पांच नोट सिपाही के पैर के पास रख दिए थे।

''देखो, इस समय हम ऐसा नहीं कर सकते। हमारी नौकरी चली जाएगी। बड़ा हंगामा मचा है शहर में यहां के कांड को लेकर।'' सिपाही का स्वर नरम पड़ गया था।

''यहीं क्यों? दिल्ली तक चर्चा है।'' दूसरे ने नोटों को लोलुपता से देखते हुए कहा।

नाजबीबी का मन मुरझा गया।

छैलू एकटक बिल्डिंग की ओर देख रहा था। शायद सोना कहीं से उन्हें देख ले।

''ये नोट उठाकर रख लो। हम कोई मदद नहीं कर सकते।'' सिपाही ने नोटों की ओर इशारा किया।

''नहीं बाबू, अब ये आपके नाम निकल ही गए हैं तो इन्हें आप ही रखिए...यहां की लड़कियों को खाना-पीना ठीक से मिल रहा होगा न?'' नाजबीबी ने बिल्डिंग की ओर इशारा कर पूछा।

''हां, हां, बिलकुल। पर तुम लोगों को इसमें...ये सोना कौन है?'' सिपाही को कौतूहल हो रहा था।

उसके प्रश्न का जवाब दिए बिना नाजबीबी ने अपना दूसरा प्रश्न पूछ दिया—

''यदि यहां की किसी लड़की के माता-पिता या सगे-संबंधी उसे निकालकर ले जाना चाहें तो?''

''कोई नहीं चाहता। अपनी बदनामी के डर से कोई नहीं मुंह खोलता। वही कामिनी की फोटो तो निकली है, कोई आकर क्यों नहीं ले जा रहा है?''

''पर अगर कोई ले जाना चाहे तो?''

''डी.एम. साहब को हलफनामा देकर लिखा-पढ़ी करके ले जाए। पर ऐसा होगा क्यों? ऐसा ही होगा तो अब तक इसमें की सारी लड़कियां अपने-अपने ठिकाने पर होतीं। पर रोज एक न एक बढ़ती ही जाती हैं, घटतीं नहीं।''

''भइया, बस एक झलक हमें सोना को दिखा दो।''

''हटो, हटो, भागो यहां से। शायद कोई मंत्रीजी आ रहे हैं विजिट करने।'' एकाएक दोनों सिपाही उठकर खड़े हो गए थे। उनका स्वर बदल गया था।

गाड़ी का सायरन 'हाऊंऽ हाऊंऽ' करता शायद इधर की ओर ही आ रहा था। नाजबीबी और छैलू उठकर गली में कुछ दूर आगे जाकर खड़े हो गए थे। एक सफेद कार के आगे पुलिस की जीप नारी उद्धारगृह के सामने आकर रुक गई थी। बिजली की फुर्ती से आठ-दस पुलिस वाले खटाखट जीप से उतरकर कार के आस-पास खड़े हो गए थे। सफेद लकदक कुर्ते में नेताजी उतरे थे। भीड़ के कारण उनका चेहरा साफ दिखाई नहीं पड़ रहा था। वे गेट के अंदर घुसे थे। साथ-साथ पुलिसवाले भी अंदर चले गए।

केवल वही पहले वाले दोनों गार्ड बाहर खड़े रह गए थे।

''वो देखो छैलू, वो मेम साहब!'' नाजबीबी ने गली की ओर संकेत किया।

''कौन मेम साहब?''

''अखबारवाली! अरे वही जो हमारी बस्ती में आई थीं एक बार। हम उनके घर पर भी मिल चुके हैं। सोना के बारे में उन्हें बता चुकी हूं।'' नाजबीबी पास

आती मानवी को देखते हुए बोलती जा रही थी।

मानवी के पीछे दो व्यक्ति और थे। एक के गले में कैमरा लटक रहा था और दूसरे के हाथ में एक छोटा-सा बैग।

''नमस्ते, मेम साहब!'' नाजबीबी ने पास पहुंचकर अभिवादन किया तो छैलू ने भी हाथ जोड़ दिए।

''अरे, नाजबीबी! तुम यहां कहां?'' मानवी ठिठककर रुक गई थी।

''मेम साहब, आप हमारी मदद कर दीजिए। आपको सब अफसर लोग जानते होंगे। हमारी सोना इसी में है। उसे वापस दिला दीजिए। हमारी कोई नहीं सुनता।'' नाजबीबी हाथ जोड़कर गिड़गिड़ा उठी।

''क्या, सोना? वही जिसके बारे में एक दिन तुमने बताया था...जो किसी पागल महिला के...?''

''हां, हां, वही मेम साहब! आपसे अनाथ आश्रम का पता पूछ रही थी मैं। पर उसके पहले ही डाक्टर ने थाने पर मुखबिरी कर दी और दरोगा के कहने से मुझे अपनी बच्ची को यहां डाल देना पड़ा।'' उसका स्वर भीग गया।

''ओह!'' मानवी के होठों से बस, एक शब्द निकल उसके विचारों में खो गया था।

''कितने वर्ष की है?''

''बस मेरे सीने तक है।'' नाजबीबी ने उम्र बताने के झंझट में न पड़ पहचान के लिए उसकी लंबाई बताई।

''अच्छा, मैं देखती हूं। वैसे इस समय तो कुछ भी कह सकना मुश्किल है। फिर भी...''

''मैं आपके पांव पड़ती हूं, मेम साहब!'' वह मानवी के कदमों में झुक गई थी।

''अरे रे रे...नाजबीबी आप ऐसा मत करिए। उम्र में बहुत बड़ी हैं आप।'' मानवी ने उसे कंधों से पकड़कर उठाना चाहा तो महसूस हुआ जैसे किसी चट्टान को उठाना चाह रही हो।

पीछे खड़े साथ के दोनों आदमी मुसकरा उठे।

''मैं देखती हूं। पूरा प्रयास करूंगी सोना को वहां से निकालने का, क्योंकि इन आदमखोरों के बीच रहने से अच्छा है कि वह आपके पास सुरक्षित रहे।'' मानवी ने सांत्वना दी।

पीछे खड़े दोनों व्यक्तियों को कहानी कुछ-कुछ समझ में आने लगी थी। वे गंभीर हो उठे।

''अभी-अभी एक नेताजी और पुलिसवाले अंदर गए हैं, मेम साहब। हमें

इन चौकीदारों ने डांटकर भगा दिया और उनके सामने कुत्ते की तरह पूंछ हिलाते खड़े थे।'' नाजबीबी ने सामने देखते हुए बताया।

''क्या? नेता? कौन नेता? पहचाना था तुमने?''

''नहीं, मेम साहब। इतनी दूर से हम कैसे देख पाते? सारे पुलिसवाले घेरे थे।'' छैलू ने बेचैनी में कहा।

''चुनाव फिर नजदीक है न। दो ही महीने बाद परचा भरना है। रोटी सेंकने आ गए लोग।'' पीछे खड़े व्यक्ति ने चुटकी ली।

''देखो तो चलकर। कहीं वही साहब न हों जो इस कांड की लपेट में आ रहे हैं? हो सकता है, संवासिनियों को धमकाएं-डराएं!'' दूसरे ने अपना कैमरा सभालते हुए कहा।

''कैसे किसी को यहां आकर संवासिनियों से मिलने की इजाजत मिल गई? आश्चर्य है!'' मानवी बुदबुदा उठी।

''चलिए जल्दी। इस समय आपको अपने फीचर के लिए और हमारे न्यूज के लिए अच्छा मैटर मिलेगा। अवसर अच्छा है। लाभ उठा लिया जाए। अच्छा है, किसी और पेपर का पत्रकार यहां अभी नहीं आया है। जो पहले मारे, वही सिकंदर।'' मानवी का एक सहयोगी उधर लपका।

''मेम साहब, देखिएगा हमारी सोना को।'' नाजबीबी पुनः गिड़गिड़ाई। उसकी आंखों में उम्मीद की ज्योति जगमगा उठी थी।

कैमरावाले आदमी ने हँसकर कहा था—

''अगले वाले चुनाव में आप भी परचा भर दीजिए। इन सबसे ऊबी जनता आपको बंपर वोट से जिताएगी। तब आपको कहीं आने-जाने से कोई रोक भी नहीं सकेगा...इसी नेता की तरह।''

''तुम लोग यहीं रहना। जैसा होगा मैं आकर बताऊंगी।'' मानवी ने जाते-जाते नाजबीबी और छैलू को हिदायत दी। न जाने क्यों इन दोनों के प्रति उसके मन में श्रद्धा उत्पन्न हो गई थी। एक अनाथ बच्ची के लिए ये इतने परेशान हैं और एक वो भी मां-बाप हैं, जिनकी बच्चियां यहां कैसी-कैसी यंत्रणा भुगत रही है, फिर भी वे ले जाने को तैयार नहीं। पूनम के बाप को ही देखे। उसी समय मानवी ने उन्हें पत्र लिखा था, पर किस निष्ठुरता से उन्होंने उसे स्वीकार करने से इनकार कर दिया था। आज जब पूनम उसे नारी उद्धारगृह में देखकर पहचान लेगी और प्रश्न करेगी तो वह क्या जवाब देगी? उस समय उसने कितना आश्वासन दिया था पूनम को...जाते ही तुम्हारे पिताजी को पत्र लिखूंगी...वे आकर तुम्हें जरूर ले जाएंगे। पर...उसने अपना कर्त्तव्य तो किया ही, अब यदि उसके घरवाले ही नहीं ले जाना चाहते तो वह क्या कर सकती है? उसी फीचर के

इटरव्यू के लिए कितनी धमकियां भेजवाई गईं मन्नाबाबू की ओर से। इस वार्डेन ने ही कितना विरोध किया था। डी.एम. के पत्र पर हारकर तैयार भी हुई थी तो इस शर्त पर कि सभी के इंटरव्यू उसके सामने ही लिए जाएं। कोई भी ऐसे सवाल न पूछे जाएं जो लड़कियों को बताने में हिचकिचाहट हो, जैसे उनके घर का अता-पता या पिता का नाम आदि। हुं:, आज सीखचों के पीछे अपना अता-पता और पिताजी जरूर याद आ रहे होंगे रीता देवी को। पुरुष तो शोषण करने में पीछे नहीं ही रहता है, ये भी कनकट्टी कुतिया जैसी उनका साथ देने चली थी!— सोचकर मानवी की भृकुटी तनी हुई थी।

"ओ मेम साहब! अंदर जाने को परमिशन नहीं।" गार्ड ने बाहर ही रोक दिया।

"क्यों? अंदर जो लोग गए हैं, उनका परमिशन?" मानवी का दहकता हुआ प्रश्न जला गया उन दोनों को।

"उनका परमिशन है।" एक ने लापरवाही से कहा।

"उसे जरा दिखाने की कृपा करें, ताकि उसी तरह का हम भी बनवा ले।" मानवी ने व्यंग्य से पूछा।

"ए मैडम, जल्दी यहां से चलती बनो। डिप्टी एस.पी. साहब खुद नेताजी के साथ आए हैं। हमारी-आपकी औकात है क्या कि उन्हें रोक देंगे?" गार्ड गुर्राया।

"आखिर उन्हें इस समय क्या काम आ पड़ा जो यहां मिलने चले आए— यही जानने के लिए तो हमें जाना है अंदर।" मानवी ने एक-एक शब्द पर जोर देते हुए कहा।

"आप इतना बहस क्यों कर रही हैं, मैडम? जाइए, अपना काम करिए। हम औरतों के मुंह नहीं लगते।" बड़ी उपेक्षा से कहा गया वाक्य मानवी को अपमान की पीड़ा दे गया था। कुछ क्षण के लिए वह आहत-सी चुप हो गई थी।

साथ चल रहे उसके सहयोगी मि. बनर्जी ने हस्तक्षेप किया—

"हम लोग पत्रकार हैं!"

"तो जाइए! हम हाथ पकड़कर तो रोकेंगे नहीं। अंदर एस.पी. साहब नाराज होंगे तो आप खुद ही संभालिएगा।" गार्ड ने हारकर उन्हें अंदर जाने की आज्ञा दे दी।

मानवी फोटोग्राफर और बनर्जी के साथ नारी उद्धारगृह के मुख्यद्वार से प्रवेशकर आंगन में खड़ी हो चारों ओर देखने लगी थी। उत्तर की ओर आफिस खुला हुआ था और उसमें चहल-पहल दिखाई पड़ रही थी। बरामदे में पांच-छ: पुलिसकर्मी खड़े थे। कुछ सहमी-सहमी-सी लड़कियां अपने-अपने दरवाजों को

थोडा-सा खोले उसकी झिरी में से बाहर का दृश्य देख रही थीं।

"कहां, मैडम? आप लोगों को किससे मिलना है?" अपनी ओर उन्हें बढ़ते देख एक पुलिसकर्मी ने पूछा तो मानवी ने जवाब दिया—

"हमें यहां के इंचार्ज से मिलना है। चाहे जो भी हो इस समय। हम पत्रकार है। कुछ जानकारी चाहिए।"

"लेकिन इस समय तो सभी लोग व्यस्त हैं। मंत्रीजी आए हैं। डिप्टी एस पी साहब भी साथ ही हैं। कुछ पूछताछ की जा रही है लड़कियों से।"

"कहां?" मानवी ने ऑफिस में झांकते हुए पूछा।

"अंदरवाले कमरे में।" चिढ़े हुए-से उस पुलिसवाले ने जवाब दिया।

"पर इन लड़कियों से तो किसी को भी मिलने की मनाही है, फिर कैसे ये मंत्री महोदय...?" मानवी अंदर ऑफिस की ओर बढ़ी थी। ऑफिस की कुरसी पर सुपरवाइजर श्रीप्रकाश बैठा उपस्थिति पंजिका से एक-एक लड़की का नाम पुकारकर अंदर भेज रहा था। मानवी चुपचाप जाकर उसकी मेज के पास खड़ी हो गई थी।

"सोना रघुवंशी।" उसने पुकार लगाई तो एक दुबली-पतली-सी लडकी सहमी-सहमी-सी अंदर वाले कमरे में चली गई थी।

मानवी चौंक पड़ी। कहीं यही नाज की सोना तो नहीं। उसने ध्यान से देखा। अदर जाते समय सोना की टांगें कांप रही थीं।

"क्या में जान सकती हूं, भाई साहब, कि ये सोना कब आई है यहां?" मानवी ने विनम्रतापूर्वक सुपरवाइजर से पूछा तो उसने चौंककर अपनी दृष्टि रजिस्टर से उठाई और मानवी को देखने लगा। अभी तक वह सोच रहा था कि कोई मंत्रीजी के साथ का ही आदमी खड़ा होगा।

"आप कौन?" उसने जीभ होंठों पर फिराई।

"बस, एक पत्रकार हूं मैं। ये दोनों मेरे सहयोगी हैं। कुछ जानकारी लेना चाह रही हूं आपसे।" मानवी ने अपनी दृष्टि सुपरवाइजर पर टिका दी।

"पूछिए।"

"क्या यह सोना कुछ ही दिनों पूर्व आई है?...जरा इसकी उपस्थिति देखकर बताइए।"

"जी हां। आगे और क्या पूछना है?"

"कुछ वर्षों पूर्व मैं यहां इंटरव्यू लेने आई थी, एक लड़की पूनम का थी— घुंघराले-घुंघराले से बाल लंबी-सी, पतली-सी। गाल पर काला-सा एक बडा मस्सा था।"

"आपको इतना कैसे मालूम? क्यों इतनी जानकारी चाह रही है?"

सुपरवाइजर कुछ घबड़ा रहा था।

"वो इसलिए याद है कि वही सबसे ज्यादा बोल्ड दिखी थी उस समय। अपना घर का नाम-पता वार्डेन की परवाह न करते हुए भी बता दिया था उसने।"

"जब ऐसी लड़कियों को अपने मां-बाप की परवाह नहीं तो वो और किसी की क्या करेंगी?" सुपरवाइजर ने पूनम की बात को दूसरी ओर मोड़ना चाहा।

"पर, क्या आप बता सकते हैं कि वो यहां है कि नहीं?" इस बार बनर्जी ने प्रश्न किया।

उन्हें अपने न्यूज के लिए मानवी के इस रहस्योद्‌घाटन से एक सनसनीखेज रिपोर्ट तैयार करनी थी।

"वो तो अपने प्रेमी के साथ फरार हो गई। आज से डेढ़-दो वर्ष पहले ही। गुमशुदगी की रिपोर्ट थाने में लिखवा दी गई थी।" सुपरवाइजर उनकी खोजबीन से परेशान होकर रजिस्टर में कुछ देखने का बहाना करने लगा।

"क्यों बेटा, तुम यहां कब से रह रही हो?" मानवी ने पास खडी लडकियों में से एक से पूछा।

"जी सात वर्ष से।" उसका दबा-दबा स्वर उभरा था।

"तब तो तुम पूनम को जानती रही होंगी? बिना किसी के डर के बताओ कि क्या पूनम अकेले कहीं जाती थी?"

"जी...मैडम के साथ...पर उस दिन मैडम अकेली लौटी थीं।" वह डरते-डरते बता रही थी।

"ये जो मंत्रीजी यहां अंदर बैठे हैं, जानती हो इन्हें?"

"नहीं, नाम नहीं जानते, पर हमेशा आते हैं।" लड़की के उत्तर से मानवी की छठीं इंद्रिय सक्रिय हो उठी।

"और ये पुलिस अधिकारी?"

"जी, वो भी...मैडम के पास..." उसने बीच में ही अधूरी बात रोक दी और डरी-सी सुपरवाइजर को देखने लगी।

"ऐ भाई साहब, आप उसे बोलने से रोक क्यों रहे हैं?" मानवी झट पीछे पलटी थी तो सुपरवाइजर की चढ़ी त्योरियां देख बोल पड़ी। वह आंखें तरेरकर उस लड़की को कुछ बताने से मना कर रहा था।

"ऐ मैडम, आप व्यर्थ में लड़कियों को भड़का रही हैं?...कहां से दाल भात में मूसलचंद की तरह..." वह भन्नाया-सा बोल पड़ा।

"ऐ मिस्टर! होश संभाल के बात करो...ओ बेटा, अंदर तुमसे क्या-क्या पूछा?" मानवी ने अंदर से बाहर आती सोना की तरफ प्रश्न उछाल दिया।

"जी, किसी को कुछ नहीं बताना है।" सोना भोलेपन में बता गई। उसे

लगा, वह भी इसी जाच-दल के साथ है।

"फोटो खींचो, महेंद्र!" मानवी ने अपने साथी को आदेश दिया और झुककर सोना से कुछ और पूछने लगी।

"ये क्या अव्यवस्था फैला रही हैं, मैडम, आप?" सुपरवाइजर उठकर खडा हो गया था। शोर सुनकर डिप्टी एस.पी. शरण बिहारी भी कमरे से बाहर निकल आया था।

"क्या बात है, श्रीप्रकाश?" डिप्टी एस.पी. ने मानवी और उसके साथियो को गहरी नजर से घूरते हुए कहा।

"देखिए सर, बेवजह ये लोग पत्रकार बनकर घुस आए हैं और लड़कियो को न जाने क्या अनाप-शनाप सिखा पढ़ा रहे हैं।" सुपरवाइजर का साहस बढा था।

"क्या बात है, मैडम? चलिए इस समय यहां से। हम जांच कर रहे है।" बहुत बेरुखी से डिप्टी एस.पी. ने कहा। मानवी ने ध्यान से उसके नेमप्लेट पर लिखा नाम मन ही मन दुहराया।

"जांच कर रहे हैं आप या लड़कियों पर दबाव बना रहे हैं?"

"शटअप! होल्ड योर टंग.." डिप्टी एस.पी. दहाड़ा था।

मानवी ने घायल शेरनी की तरह पलटवार किया—

"बिहेव योरसेल्फ! पत्रकारों को मिलने के लिए मनाही है और मंत्रीजी को आप स्वयं लेकर मिलाने आ रहे हैं? क्या कारण हम लोग जान सकते हैं कि इन लड़कियों से मंत्रीजी क्या जांच-पड़ताल कर रहे हैं? क्या जांच कमेटी के वही चेयरमैन बनाए गए हैं?"

"बस, बहुत हो चुका। अब सीधी तरह यहां से निकल जाइए वरना " गुस्से में खौल उठा डिप्टी एस.पी.।

शोर सुनकर अंदर बैठे मंत्री के साथ के दोनों आदमी बाहर निकल आए थे। मानवी देखते ही पहचान गई थी। ये दोनों वही थे जो हरींद्र के साथ उसके ऑफिस में धमकी देने पहुंचे थे—साहिब और संतोष। इसका अर्थ हुआ अदर मन्नाबाबू ही होंगे। उनके और डिप्टी एस.पी. शरण बिहारी के इर्द-गिर्द संदेह की सूई घूम रही थी, पर अभी तक वे पकड़ से बाहर थे। अगले महीने होने वाले चुनाव को लेकर वे अपनी छवि धूमिल होने से बचाने के लिए ही इस तरह की हरकत पर उतारू हुए होंगे। मानवी का मस्तिष्क तेजी से काम कर रहा था। वह इस समय मन्नाबाबू के आदमियों से नहीं उलझना चाहती थी। उसने बात बदल दी—

"देखिए सर, ये जो सोना है, इसे मैं अपनी जिम्मेदारी पर ले जाना चाहती

हू। डी.एम. साहब के यहां हलफनामा वगैरह देकर। प्लीज इसे यहां से मुक्त कर दीजिए।''

''नहीं, मैं किसी के साथ नहीं जाऊंगी...नहीं जाऊंगी।'' पीछे खड़ी सोना डर के मारे चीख पड़ी।

''नहीं बेटा, मैं तुम्हारी मम्मी के पास ले चलूंगी।'' मानवी अभी समझा ही रही थी कि डिप्टी एस.पी. ने सोना से पूछा—

''तुम इन्हें पहचानती हो?''

''नहींऽऽऽ...'' सोना इस अप्रत्याशित स्थिति से सहमकर रोने लगी थी। सचमुच वह मानवी को नहीं पहचानती थी और चलते समय मम्मी ने मना भी किया था किसी के साथ कहीं जाने से। फिर आजकल नारी उद्धारगृह की तेजी से बदलती घटनाओं और पूछताछ से भी वह बुरी तरह घबड़ा गई थी। उसने मानवी को पहचानने से इनकार कर दिया। डिप्टी एस.पी. को मौका मिला था—

''क्यों मैडम, एक लड़की के अपहरण का चार्ज आपके ऊपर क्यो न लगा दिया जाए? यह लड़की आपको पहचानती नहीं और आप डी.एम. को हलफनामा देकर ले जाना चाहती हैं। क्या इंटेंशन है आपका?''

''हम लोग इन्हें अच्छी तरह पहचानते हैं। ये वही अखबारवाली मैडम है। है न मैडम?'' संतोष और साहिब सिंह एक क्रूर इरादे के साथ मानवी की ओर बढे थे।

''देखिए, मैं कहती हूं आगे मत बढ़िए, वरना...'' मानवी चीख पड़ी थी।

महेंद्र ने मानवी पर झपट्टा मारते दोनों आदमियों की तसवीर झट कैमरे मे उतार ली और पीछे दरवाजे की ओर भागा।

''पकड़ लो सालों को! जाने न पाए। बांधकर ले चलो थाने।'' डिप्टी एस.पी. का आदेश मिलते ही सभी पुलिसवाले बाहर की ओर भाग रहे बनर्जी और फोटोग्राफर की ओर दौड़ पड़े थे। सोना के एक इनकार ने मानवी को चित्त कर दिया था।

''स्साली को ऐसा सबक दो कि फिर जुबान न खोल सके...या ले जाकर राजघाट पुल से इसे भी झटक देना! देख लेंगे हम आगे। जैसे इतनी इनक्वायरी वैसे एक और। नाक में दम कर रखा है इसने कब से।''

मन्नाबाबू की आवाज मानवी के कानों में दूर से आती सुनाई पड़ी थी और उसकी आंखों के आगे सब कुछ अंधेरा और सांय-सांय होने लगा था।

छब्बीस

"आहऽऽ..." मानवी की कराह से नाजबीबी के चेहरे पर प्रसन्नता की लहर जाग उठी थी।

"आपको कहीं दर्द हो रहा है, मेम साहब?" वह मानवी के ऊपर झुक गई थी।

"नहीं, बस पैर नहीं उठ रहा है।" मानवी ने कराहते हुए कहा। उसकी आवाज शिथिल थी।

"पैर पर प्लास्टर बंधा है। डॉक्टर कह रहे थे कि थोड़ा-सा फ्रैक्चर है। बीस-इक्कीस दिन में चलने लायक हो जाएंगी आप।"

"मानवी ने बिना कुछ बोले नाजबीबी और फिर कनखी से बगल वाले बेड पर देखा। समय देखने के लिए उसने अपनी कलाई-घड़ी पर नजर डाली तो हाथ खाली था।"

"वो तो वहीं मारपीट में गिर गया होगा, मेम साहब। हमें भी इतना होश कहां था कि आपका पर्स और सामान बटोरूं। किसी तरह लेकर भागी आपको।"

नाजबीबी बताते हुए बाहर अस्पताल के बरामदे में टंगी दीवार-घड़ी में समय देखने के लिए चली गई। लौटी तो संग में एक नर्स भी थी।

"क्या हाल है? कैसी हो अब?" नर्स ने मुसकराकर पूछा।

"जी, ठीक हूं। थैंक्यू।" मानवी ने भी मुसकराने का प्रयास किया।

"थैंक्यू मुझे नहीं, इन लोगों को दीजिए। आपकी जान बचाने वाले ये लोग हैं। जो स्थिति ये बता रहे थे, उसमें तो आज आपके साथ न जाने क्या हादसा हो जाता।"

"अरे, सब खून के प्यासे हो गए थे। एक तो जैसे टेटुआ दबाने जा रहा था...वैसे ही हम पहुंच गए, नहीं तो...बेसरा माता ने मेम साहब की रक्षा की। बेचारी हमारी खातिर ही यह झगड़ा मोल ली थीं।"

नाजबीबी के चेहरे पर पश्चात्ताप का भाव उभर आया था। मानवी को अच्छा लगा। कम से कम उसके अंदर यह कृतज्ञता का भाव तो है। और जिन तमाम लड़कियों के लिए वह इस तरह का जोखिम उठाने लगी थी, उनके घरवालों

को तो इसकी खबर भी नहीं होगी। होगा भी तो उन्हें अच्छा लगे ही, जरूरी नहीं। पूनम के पिता का व्यवहार वह देख ही चुकी थी।

"एक को तो उठाकर हमने बाहर लोका दिया। छैलू नेताजी को पकड़कर चापे था...तभी तो उस सिपाही ने गोली चलाई।" नाजबीबी मानवी को पूरी घटना की जानकारी दे देना चाह रही थी। नर्स भी पूरी तन्मयता से खड़ी उनकी बातें सुन रही थी।

"क्य, छैलू को गोली लगी है?" मानवी को अपना दर्द भूल गया।

"हां, ये क्या आपके बगल में ही है। दोनों की देखभाल ये बेचारी अकेली ही ..।" नर्स ने बताया तो मानवी ने लेटे-लेटे ही छैलू को देखा। वह शायद अभी होश में नहीं आया था। दाहिने हाथ पर सीने से लपेटते हुए पट्टी बंधी थी।

"कोई खतरा, सिस्टर?" मानवी ने नर्स से पूछा।

"नहीं, वह ठीक है। बस, पसली की हड्डी को छूती हुई गोली निकल गई है। खतरा नहीं है। एक-दो घंटे में होश आ जाएगा।" नर्स खिसककर छैलू को देखने उसके पास चली गई थी।

"कितना बजा होगा?" मानवी ने आसपास की खिड़की से बाहर झांककर समय का अनुमान लगाना चाहा।

"साढ़े चार बज रहा है, शाम का। चाय मंगा दूं?" नाजबीबी ने मानवी का सिर सहलाते हुए पूछा।

मानवी विभोर हो उठी। निद्रा से उठने के बाद व्यक्ति आगे-पीछे की घटनाओं को जोड़कर तारतम्य बना लेता है, पर यदि क्षणांश को भी स्मृति-लोप हो जाए तो काल-चक्र का सूत्र पकड़ना कितना असंभव होगा।

"क्या सोच रही हैं, मेम साहब! हम अपने हाथ से नहीं देंगे। चायवाला आपको पुरवा में देगा।" नाजबीबी उसकी चुप्पी का अपना ही अर्थ लगाते हुए सहजता से बोली।

"अरे नहीं, नहीं, ऐसी बात नहीं...तुम्हारे हाथ से ही मैं चाय पिऊंगी। मै तो सोच रही थी कि अकेले हम दोनों की सेवा करने में तुम परेशान हो जाओगी, क्यो न ..?"

"अरे, मेम साहब की बात! क्या परेशानी? खबर पहुंच गई है। अभी चमेली, अकरम, मंजू, महताब गुरु सब आते होंगे। सेवा की कमी नहीं होने देंगे। जरा बी.एच.यू. दूर है न हमारी बस्ती से। फिर आप तो जानती ही हैं कि महानगरवाले किस तरह झिक्कर-झिकिर रोकते चलते हैं? एक घंटे की जगह तीन घंटे तो लगा ही देंगे।"

नाजबीबी ने मानवी की दुश्चिंता का चुटकियों में हल करते हुए बताया।

मानवी इतने लोगों की उपस्थिति की कल्पना मात्र से सिहर उठी। क्या सोचेंगे आस-पास के लोग? क्या कोई घर का आदमी...? कोई ऑफिस का भी आदमी आ जाता तो वह निवेदन कर लेती कि गांव जाकर अम्मा-बाबूजी को लिवा आए।

आफिस की याद आते ही उसे बनर्जी और फोटोग्राफर महेंद्र याद आ गए थे।

''मेरे साथ वाले दोनों लोगों का कुछ पता चला?'' उसने नाजबीबी से पूछा।

''उन्हीं को भागता देख और आपको साथ न देख तो हम लोग चौंके थे। पुलिसवाले उधर उनके पीछे भागे, इधर हम दोनों गार्ड को धक्का मारते अंदर घुस गए। जरा-सी भी देर होती तो वे आपको जिंदा न छोड़ते, मेम साहब। वो तो हम लोगों का हल्ला सुनकर पूरी पब्लिक जुट आई...पर बड़ा बेकार जमाना आ गया, मेम साहब! सब तमाशा देखते हैं, बस...आगे कोई नहीं आना चाहता।''

''सोना मिली?'' मानवी ने पूछा।

''नहीं, सारी लड़कियां अपने-अपने कमरों में बंद थीं। हम उस हल्ला-गुल्ला में कहां सोना को खोजते! भगवान भोलेनाथ रक्षा करेंगे उसकी। आपसे मिली थी वह?''

''हां। उसको लिवा आना चाह रही थी मैं, पर उसने मुझे पहचानने से इनकार कर दिया और उसी के बाद तो सारी स्थिति ही बदल गई। वे सब कोई बहाना ढूंढ़ रहे थे, मिल गया।''

''अब कैसे मिलेगी, सोना?'' नाजबीबी अधीर हो उठी।

''मुझे ठीक होने दो। मैं डी.एम. से बात करूंगी। सोना को तुम लोगों को देने में बहुत समस्याएं आ सकती हैं। मैं फिर अपने नाम पर ही बात करूंगी।''

''तो फिर कहीं वह पहचानने से इनकार कर देगी तो?'' यह एक अनुत्तरित प्रश्न था।

''एक बार किसी तरह तुम मिलकर उसे समझा देतीं तो मैं कम से कम एक सोना की जिंदगी तो नरक होने से बचा ही लेती।''

''पर मेम साहब, इस कांड के बाद तो वहां और चौकसी बढ़ा दी गई होगी।'' नाजबीबी के स्वर में मायूसी घुल गई थी।

''हल्लो मानवी, कैसी हो?'' रोमेश चड्ढा के साथ ऑफिस के मिश्र और शाही तथा तरुण बनर्जी भी उसे देखने आ गए थे।

"कैसे पता चला कि मैं यहां हूं?" मानवी ने पूछा।

नाजबीबी थोड़ा दूर हटकर छैलू के पास खड़ी हो गई थी।

"अरे भाई, इस घटना के बाद तो तुम मिनटों में स्टार पत्रकार हो गई हो। जिसे देखो, वही चर्चा कर रहा है। शाम वाले पेपर में वही फोटो हम देने जा रहे है जिसमें मंत्रीजी के दोनों आदमी तुम्हारे ऊपर झपट रहे हैं।"

तरुण बनर्जी मुसकराया।

"महेंद्र ठीक तो है? सकुशल निकल गए थे तुम लोग?"

"हां, किसी तरह बचकर निकल पाए।"

"किसी तरह बचे थे बाबू कि भाग गए थे मेम साहब को छोड़कर? अरे, किस बात के मर्द बनते हो आप लोग। एक औरत जात को चार गुंडे मारना चाह रहे थे और आप लोग छोड़कर भाग गए।" नाजबीबी ताली पीटती उन लोगों की बात को बीच में काटती हुई बोल पड़ी।

एक क्षण के लिए एक दुर्भेद्य सन्नाटा-सा खिंच गया था जिसे मानवी ने ही भंग किया—

"नहीं, नाजबीबी! परिस्थिति ही ऐसी रही होगी, नहीं तो ऐसा नहीं होता।"

"अरे, मेम साहब की बात। बड़े मरद बनते हैं सब लोग और कलेजा चूहे-सा। नेताजी, जो चार बिगहा में फैलकर चलते हैं, उनको छैलुआ जो पकड़कर ऐसा गट्टा मुरेरा कि बच्चू को छट्ठी का दूध याद आया होगा। अरे, वो पुलिसवाला गोली न चला दिया होता तो आज अस्पताल में नेताजी और उनके मुर्गा-मुर्गी भरती होते।"

"वो ऐसा है मिश्रजी, अगर आपमें से किसी को एक दिन की भी फुरसत मिल जाती तो मैं चाहती थी कि मेरी एक मदद कर देते आप लोग।" मानवी ने बात का प्रसंग परिवर्तित कर दिया।

"क्या?" मिश्र ने पूछा।

"मैं तो कम से कम अब एक महीने के लिए बिस्तर पर पड़ गई। मेरे अम्मा-बाबूजी को गांव पर खबर करनी थी।"

"कोई टेलीफोन नंबर हो तो दे दो। हम न्यूज पास-ऑन कर देंगे समझाते हुए। दरअसल कल ही मुझे सिस्टर-इन-लॉ की शादी में जाना है।" मिश्रा ने अपनी बेचारगी प्रकट कर दी।

"नहीं, टेलीफोन तो अभी तक मेरे गांव क्या, आस-पास के क्षेत्र तक भी नहीं पहुंचा है।" मानवी निराश हो गई थी।

तरुण बनर्जी और शाही के चेहरों से भी कोई उत्सुकता नहीं दिखाई पड

रही थी। बल्कि वे किसी दूसरी बात में उलझे होने का बहाना कर रहे थे।

"ये मेरा मोबाइल है। तुम स्वयं किसी को सूचना देना चाहो तो दे दो। दो-तीन दिन बाद मैं लौटूंगा तो...यदि जरूरी हुआ तो तुम्हारे गांव चला जाऊंगा।" मिश्र ने अपना मोबाइल फोन उसे थमा दिया।

मोबाइल हाथ में लिए मानवी भइया के पड़ोसी का नंबर याद करने की कोशिश करने लगी थी। एक बार भइया ने नोट करवाया था, पर वह भी तो उसकी डायरी में ही था और पर्स समेत डायरी उस घटना में गायब हो चुकी थी।

"हम लोग चाय पीकर आते हैं, मानवी! कुछ लाना तो नहीं?" शाही ने अपनापन जताते हुए पूछा।

"नहीं।" मानवी पुनः नंबर याद करने लगी थी।

"क्या सोच रही हो, मेम साहब? अभी एक चिट्ठी लिख दो और अपने गाव का पता भी। मैं चमेली और अकरम को देकर भेज दूंगी। वे सब, कही भी होगा, ढूंढ़ लेंगे। आप एकदम चिंता न करिए।"

नाजबीबी के ढाढ़स से मानवी विभोर हो उठी थी। औरों की तरह स्वयं वह भी कैसे इन लोगों की उपस्थिति से कतराती रही है अब तक और जिनकी उपस्थिति को सहज-सामान्य मानकर चलती रही, कितना अंतर है उनमें और इनमें? आखिर क्यों वह भी औरों की तरह ही सोचे इनके बारे में?

एकाएक उसने डी.एम. आनंद का नंबर मिलाया था।

"......"

"हैलो, मैं मानवी।" उसके चेहरे पर सुबह की लाली मचल उठी।

"कैसी हो?"

"अस्पताल में हूं। वहीं से बोल रही हूं।"

"क्या? कैसे?" आनंद की आवाज में एक हड़बड़ाहट थी।

"बस, थोड़ा-सा फ्रैक्चर। नारी उद्धारगृह वाला प्रकरण तो आपने भी पढ़ा होगा। उसमें वही मन्नाबाबू और उसके आदमी भी इनवाल्व हैं। उन्हीं लोगों ने मेरे ऊपर आक्रमण कर दिया। वो तो नाजबीबी वगैरह मौके पर ही थीं कि मैं बच गई, अन्यथा आज आपके पास कोई दूसरी ही खबर..."

"बस, बस! अब बात वापस लो यह!"

"अच्छा, नहीं कहूंगी।" मानवी के होंठों पर एक मोहक मुसकान तैर गई थी।

"इस तरह का रिस्क नहीं लेना चाहिए तुम्हें।" आनंद का गंभीर स्वर गूजा।

"मुझे भी लगता है कि नारी को प्रकृति ने ऐसा बनाया ही नहीं कि वह

अकेले कुछ कर सके। बौद्धिक क्षेत्र तक तो ठीक है, पर शारीरिक रूप से सबलविहीन होते ही वह विवश हो जाती है।''

''नारी अकेले ही क्यों? क्या पुरुष नारी के सहारे के बिना अस्तित्व बनाए रख सकता है? मां के रूप में नारी उसके जीवन की आधार है, तो संकट के अंधेरे में भी पुरुष को किसी ममतामयी, प्रेममयी नारी की ही आवश्यकता महसूस होती है, जिसके आलोक में वह अपना मार्ग ढूंढ़ सके। सच पूछो तो नारी-पुरुष दोनों एक-दूसरे के अर्द्धांश हैं। एक-दूसरे में अपनी पूर्णता, अपनी अर्थवत्ता छिपाए हुए। संपूर्ण होने के लिए दोनों अर्द्धांशों का सम्मिलित आवश्यक होता है। सृष्टि-चक्र इसी पर आधारित है। इसे नकारना अपने अस्तित्व को नकारना है। पर दुःखद है कि न जाने कितनी सदियों पहले से शिव-शक्ति की अवधारणा को महसूस कर अपनी सामाजिक संरचना और उदात्त संस्कृति का निर्माण करने वाले इस देश मे अलगाववाली आंधी की आहट मैं सुन रहा हूं।''

''मैंने भी इसे हृदय से महसूस किया है, आनंद, और एक लंबे समय से महसूस करती आ रही हूं। मंथन करने के बाद इतना ही निष्कर्ष निकाल सकी कि बुद्धि और विवेक के उपयोग में तो नारी पूर्णतः स्वतंत्र हो, पर अपनी सास्कृतिक सीमा का अतिक्रमण न करते हुए। पुरुष का चाहे वह पिता हो, भाई हो, पति हो या पुत्र हो, संबल उसकी आवश्यकता ही नहीं, बल्कि इस देश की संस्कृति को सुरक्षित रखने का एक सशक्त उपादान भी है।''

''देखो मानवी, हम एक पौधे को लगाते हैं, सींचते हैं और बड़ा होते देख हर्षित होते हैं, पर क्या उसी पौधे के छायादार वृक्ष बन जाने पर हम उसकी शीतल छांव से परहेज या दूरी बरतने लगते हैं? नहीं न? फिर एक नारी पुरुष का लालन-पालन कर इस योग्य बनाती है कि वह उसी नारी की सुरक्षा कर सके तो यह बंधन कैसा? हमारी तो पूरी संस्कृति या यूं कहें कि पूरी सृष्टि आदान-प्रदान के भावनात्मक संबंध पर टिकी है, इसीलिए इतनी दीर्घजीवी और अटल रही आज तक। हमारे पीपल और बरगद देवतुल्य पूज्य हैं तो नीम और तुलसी में देवी की परिकल्पना है। हर टीले, चबूतरे और ताल-पोखर के साथ कहानियां जुड़ी है। यानी प्रकृति के साथ हमारा हर क्षण का संवाद है।''

''पर अब सब खंडित होने के कगार पर है! कोई अमूर्त शक्ति तोडना चाहती है हमारी संस्कृति की अभेद्य दीवार।''

''सावधान रहना है छद्मवेशियों से। केवल तुम्हें ही नहीं, बल्कि सपूर्ण समाज को।''

''मैं इन छद्मवेशियों का छद्म उजागर करना चाहती हूं, आनंद। पर अब

अकेले नहीं। आपका और नाजबीबी का सहयोग लेकर।''

''अकेले का परिणाम तो तुमने कई बार देख लिया है। गिन सकती हो तो गिन लो अपने अतीत में बिंधे तीर।'' आनंद ने समझाने का प्रयास किया।

''हां, आनंद! महाभारत में भी विजय हासिल करने के लिए छद्म का सहारा लिया गया था। मैं छद्मवेशियों का व्यूह नाजबीबी का सहारा लेकर भेदूंगी। आप मानसिक रूप से प्रोत्साहित करते रहेंगे न?'' मानवी के निवेदन वाले स्वर मे सकल्प की दृढ़ता थी।

''नाजबीबी तैयार है?'' आनंद का प्रश्न गूंजा था।

''हां, इन सब घटनाओं के बाद वह भी तेजी से सोचने लगी है इस दिशा मे। एक काम करवा सकें तो मेहरबानी। यहां के डी.एम. को फोन कर दें कि नारी उद्धारगृह से सोना को मुक्त कर दें।''

''एक नई सूचना है। मेरा ही ट्रांसफर बनारस के लिए पुनः हो गया है। बहुत जल्दी मैं चार्ज ले रहा हूं। इसी संवासिनी कांड के कारण उस डी.एम. का ट्रासफर हो गया है। तुम तो जानती हो कि किसी भी घटना का सबसे पहला शिकार वहां का प्रशासनिक अफसर ही होता है।''

''सच, आप आ रहे हैं?'' मानवी खुशी से चहक पड़ी।

''मैं नहीं, अर्द्धांश।'' उधर से शरारत-भरी आवाज गूंजी थी।

''जी...रखूं फोन?'' और मोबाइल बंद करते हुए मानवी की उंगलिया थरथरा रही थीं। उसने मोबाइल सिरहाने रखते हुए नाजबीबी की ओर देखा था। वह एकटक उसे ही निहार रही थी।

''क्या सोच रही हो, नाजबीबी?'' मानवी ने गंभीर होते हुए पूछा।

''सोच रही हूं, मेम साहब, कि भगवान ने मुझे हिंजड़ा बनाकर ठीक ही किया। अगर यह न बनाता तो जरूर मुझे औरत बनाता और तब ये सारे अत्याचार मुझे भी झेलने पड़ते।''

''हार मान रही हो क्या, नाजबीबी?''

''अरे, मेम साहब की बात? मेरे आगे-पीछे कौन रोने वाला है जो हार मान जाऊंगी। अरे, बस एक बार मौका मिल-भर जाए तो इन भ्रष्टाचारियों को गिन-गिनकर जूते लगवाऊंगी चौराहे पर और मुंह में कालिख पोतवाकर गली-गली घुमाऊंगी। हमें किस बात का डर है? डरें वो जो सफेद कुरते के नीचे कीचड लपेटे खड़े हैं।''

''इन भ्रष्ट लोगों का यही तिलिस्म अब टूटना चाहिए, और इसके लिए अब तुम्हे आगे आना होगा, तुम्हारी बिरादरी के लोगों को सचेत होना होगा। शायद तुमसे

भयभीत होकर इस तरह के भ्रष्ट लोग सुधर जाएं। तुम्हें इस बार मन्नाबाबू के विरोध में परचा भरना होगा। नए डी.एम. साहब जल्दी ही आ रहे हैं। वे हमारी मदद करेंगे। सोना भी वापस आ जाएगी। मैंने सारी बातें कर ली हैं उनसे।'' मानवी के चेहरे पर एक दृढ़ संकल्प तैर रहा था।

''जैसा कहोगी, मेम साहब, वैसा ही होगा। जो भी काम होगा, मैं जनता की भलाई के लिए करूंगी, क्योंकि अपने तो आगे-पीछे कोई नहीं है जिसके लिए दूसरों की रोटियां छीनूंगी और अपना घर भरूंगी। जरूरत पड़ी तो भ्रष्ट लोगों के खिलाफ हथियार भी उठाऊंगी। हर गंदगी को जड़ से साफ कर दूंगी। दुनिया में शांति रहे, और क्या चाहिए किसी को? बस, मेम साहब, मुझे आप अपनी तरह थोड़ी बुद्धि और कलम की ताकत भी थमा दीजिए। सहारा दिए रहिए, फिर देखिए...''

मानवी चुपचाप घटित हो रहे इस परिवर्तन को देख रही थी। खिड़की से बाहर सांझ के धुंधलके में अपूर्ण चंद्रमा उजास फैलाने को तत्पर था।

●●●